

जैनेन्द्र के उपन्यासो
का मनोविज्ञानपरक
शैली-तात्त्विक अध्ययन

जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक शैली-तात्त्विक अध्ययन

[राजस्थान-विश्वविद्यालय की 'पी-एच०डी०' उपाधि हेतु
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० लक्ष्मीकान्त शर्मा



पूर्वोदय प्रकाशन
नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक	पूर्वोदय प्रकाशन (स्वतन्त्राधिकार) पूर्वोदय प्रा० लि० रजिस्टर्ड कार्यालय ७/८ दरियागन नई दिल्ली ११०००२
मूल्य	पतालीत रुपय
प्रथम सस्वरण	दिसम्बर १९७५
©	डा० लक्ष्मीकान्त शर्मा
मुद्रक	युवा मुद्रण ७ पू वजीरपुर इण्डस्ट्रियल कॉम्प्लेक्स दिल्ली ११००५२

JAINENDRA KE UPANAYASO KA MANOVIGYANPARAK
SHAILEETATTVIK ADHYAYAN
(The Psycho Stylistic Study of Jainendra's Novels)
by Dr LUXMI KANT SHARMA

वात्सल्यमयी जननी की
पुण्य-स्मृति मे,
जो इसे देखकर बहुत सिहाती !

—कान्त

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं अपने लिखने में स्वराचार के दोष से मुक्त नहीं हूँ। जो गलत आया, मैंने स्वीकार किया है और वाक्य जसा बना बनने दिया है। प्रेमचन्दजी ने एक बार मुझे कहा था 'जनार्दन हिन्दी में तो चलो तुम चाहे जो लिख दो। साभ' लिखो कि 'सभा लिख दो पर यह मनमानी तुम्हारी उदू में नहीं चल सकती। मैं उदू की बात नहीं जानता। लेकिन वह भाषा अरिद्र है जो जिदगी का साथ देने के बजाय उस पर सवारी बसती है। जो हा, अपने अज्ञान को, अपने से उतारकर मैं अपने से अलग नहीं रख सका हूँ।'

—जनार्दन

अनुक्रम

प्राक्कथन

पष्ठ सख्या

- १ प्रस्तुत शाध की आवश्यकता एव औचित्यम् ।
- २ सन्निप्त रूपरेखा ।
- ३ वृत्तगता चापन ।

अ १—११

प्रस्तावना

अ १३—३०

- १ मनोविज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन से अभिप्राय तथा उसका महत्त्व ।
- २ जनेद्र के उपयासा म मनोविज्ञानपरक शली तात्त्विक अध्ययन की सभावनाए ।
- ३ शली-तत्त्व के अध्ययन का इतिहास और उसम मनोविज्ञान प्रक्रिया के स्वरूप-दशन का निरूपण ।
- ४ जनेद्र के उपयासो पर हुए अध्ययनो का ऐतिहासिक क्रमानुसार पूण विवरण ।
- ५ इस अध्ययन की अपर्याप्ततामा पर प्रकाश तथा इस अनुसधान का महत्त्व ।

परिच्छेद—१ जनेद्र के उपयास एक सर्वेक्षण

१—१६

- १ परख २ सुनीता, ३ त्यागपत्र ४ कल्याणी,
- ५ सुन्ददा, ६ विवत, ७ यतीत, ८ जयवधन,
- ९ मुक्तिबोध और १० अनन्तर ।

परिच्छेद—२ क्या शली

२०—३१

- १ जनेद्र के उपयासा के शुद्ध क्यागा का विवरण ।

- १ इन कथागा का मद्भावना का मूत्र और उनकी नवनीय मनाभूमि ।
- २ प्रत्येक कथागा क प्रयाग का दृष्टि म मनाभूमिया का स्वरूप (मूत्र कथागा क पल्लवन की प्रक्रिया और मनाभूमिया) ।
- ४ कथागा की प्रतिपादन-गता विविध वग ।
- ५ प्रतिपादन गला का मनाभूमि ।

परिच्छेद—१ वरुण गती

३२—४६

- १ वरुणात्मक म्यता का विवरण और वर्गीकरण—
प्राकृतिक वरुण म मवधिन म्यल स्थान पशु पक्षी पवन मरिता प्राण मन्त्रा ऋतुए धाति ।
- २ इनम प्रत्येक वग क वरुण का गली ।
- ३ इन वरुण-गिनिया म प्रत्येक की मनाभूमिया का अध्ययन ।
- ४ इन वरुणा म प्रयुक्त भाषा-गिनिया का वग धार उनकी मनाभूमि ।

परिच्छेद—४ सभापण तथा सवाद

४७—६६

- १ (क) सवाद (ख) सभापण ।
- (क) १ सवादा क वग । २ सवादा क प्रत्येक वग का प्रतिपादन गली । ३ इन गलिया की मनाभूमिया । ४ सवादा की इन गलिया म प्रयुक्त भाषा गलिया का विवरण और उनकी प्रेरक मनाभूमिया ।
- (ख) १ सभापणा क वग । २ सभापणा क प्रत्येक वग की प्रतिपादन-गला । ३ इन गलिया की मनाभूमिया । ४ सभापणा की इन गलिया का विवरण और उनकी मनाभूमिया ।

- २ चतन और अचतन की प्रक्रियागत स्थिति में जन द्र के उपयोग की भाषा गली उद्धरण एवं निवचन ।
- ३ सामान्य निष्कर्ष ।

परिच्छेद—८ परामानसिक स्थिति और भाषा गली

१४०—१६०

- १ परामानसिक स्थिति से तात्पर्य ।
- २ (क) परामानसिक स्थिति में अवधान में जुग में विचार ।
(ख) व्यक्तिगत अचतन और समष्टिगत अचतन का घात प्रतिघात ।
- ३ (क) जनेन्द्र के उपयोग में परामानसिक स्थिति का निष्कर्ष उद्धरण एवं निवचन ।
(ख) परामानसिक स्थिति की प्रक्रिया में भाषा का गठन ।
- ४ सामान्य निष्कर्ष ।

परिच्छेद—९ गण्य शक्तिपरक अनुसंधान प्रतीक योजना

१६१—२६८

- १ गण्य शक्तियों का पारिभाषिक विवेचन ।
- २ गण्य शक्तिपरक अनुसंधान परख से अन्तर तक ।
- ३ (क) गण्य शक्तियों में भेदापभेदा की तालिका ।
(ख) परिगणना-तालिका ।
- ४ प्रतीक-योजना सद्धातित पष्ठभूमि ।
(क) प्रतीक की पृष्ठभूमि
(ख) प्रतीक की ध्याख्या
(ग) प्रतीक की अभिव्यक्ति में भाषा गली का स्वरूप
(घ) प्रतीक का महत्त्व
(ङ) प्रतीक का वर्गीकरण
(च) प्रतीक और गण्य शक्तियाँ

(छ) जनार्दन का प्रतीक विधान ।

- ५ प्रतीक के उदाहरण एवं प्रतीकाय परम स
अनंतर तक ।
- ६ सामान्य निष्कर्ष ।

परिच्छेद—१० शोध निरूपण प्रमुख निष्कर्ष	२६६—२८७
१ शोध-कार्य का सक्षिप्तीकरण	
२ प्रमुख निष्कर्षों का आवलोकन एवं उपसङ्घिगत विवेचन ।	
परिशिष्ट—१ सदाशय ग्रन्थ-सूची ।	२८८—२९२
परिशिष्ट—२ शाली के सम्बन्ध में परम्परागत धारणाएँ ।	२९३—२९४

प्राक्कथन

किसी भी जीवित साहित्यकार पर शोध-काय करना खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि उसकी साहित्य रचना का क्रम आगे भी चलते रहने की संभावना है। ऐसी स्थिति में हम अपने निष्कर्षों को अंतिम रूप नहीं दे सकते। पहले अनुसंधान के क्षेत्र में यह मायता थी कि तीन सौ वर्ष पुराने साहित्यकार पर ही शोधकाय हो सकता है। इस मायता को वर्तमान युग ने भुंटा दिया है और अब ऐसे सभी साहित्यकारों पर शोध-काय सम्पन्न होने लगा है, जो परिपक्वता एवं विकास की चरम सीमा को स्पष्ट कर चुके हैं। चूँकि जनेन्द्र अब इस स्थिति में आ गये हैं इसलिए उन पर शोध-काय करना मुझे सवतोभावेन समीचीन ही प्रतीत हुआ। यो भी जनेन्द्र-साहित्य पर लगभग एक दर्जन से ऊपर पुस्तकें निकल चुकी हैं। उनके उपन्यासों की विस्तार से अनेक प्रवचन चर्चा हुई है। अब आवश्यकता इस बात की थी कि उनके उपन्यासों पर एक ऐसी दृष्टि से अनुसंधान किया जाये जो उनका सर्वाधिक सबल अंश समझा जाता रहा है। मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक अध्ययन के सन्दर्भ में मैं जनेन्द्र के उपन्यासों पर एक विशेष दृष्टिकोण से शोध-काय सम्पन्न किया है। यही इस अनुसंधान की इयत्ता है और यही इसका औचित्य।

जनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक अध्ययन नामक यह प्रवचन मैं डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के निरीक्षण में रहकर प्रस्तुत किया है। निर्वैयक्तिक विषय प्रतिपादन तथा तथ्यपरक अनुसंधान का जो प्रतिमान उन्होंने मेरे सम्मुख रखे थे उनका यथाशक्य परिपालन करने की मैंने चेष्टा की है। विषय की रूपरेखा और पल्लवन की प्रक्रिया के लिए मुझे डा० सत्येन्द्र का मार्ग निर्देशन प्राप्त हुआ है, जिनके प्रति आभार प्रकट करने के लिए मुझे कोई शब्द सशुभ प्रतीत नहीं हो रहा। प्रवचन में मुझे दो घोड़ा पर सवारी करनी पड़ी है 'मनोविज्ञान और शली-तत्त्व'। दो घोड़ा की सवारी का परिणाम

साध जानन हो है गुण का गुण यहा है कि मैं बिना पत्र गाय घानी घनिम मजिन तर पत्र पाया है यद्यपि पत्र गाने की प्रतिपत्त मभाजना था । मरा साध रिपय एर नयी दिगा का उमाचन करता है घोर यह यह है कि गनी तत्त्व क माध्यम म हम रिमा ग्यटा र मानम-नाम म प्रवण करे घोर वहा म नय-नय तथ्या का उगनन कर । यह प्रणानी जिगी म तो नया हा है विश्व साहित्य म भी अभा इम रिगा म अधिर काम नहा हुमा है । इम दृष्टि म वचन फेर उपयागा का अध्ययन प्रस्तुत रिया गया है । अय विश्वा भाषाघा म भी कुछ छुट्टुट्ट प्रयास हुमा है पर उनका प्रामाणिक धानन घोर मूयावन अभी मुनभ नही है ।

मर शोध-नाय म गनी-तत्त्व न माडा का काम रिया है इगतिग विभिन्न उपयागा म मुने ध्यापर रूप म उद्धरण देन पर है घोर तव उनक साधार पर कुछ निष्पत्त निराने गय है । आवश्यकतानुसार इन उद्धरणा का निवचन भी करना पडा है । या जनेत्र की औपयामिक मृष्टि हमार मागन एव नयी प्रभा म आनामिन हा उठी है । गाय-नाय की वनानिरता एव तथ्यपरकता म भी गृजनात्मर आलाचना के लिए कुछ-न-कुछ गुजाइग रहती है जहा भी एमा अवसर मिना है मैने उसका भरपूर उपयाग रिया है । मरा विद्वाम है कि विगुद्ध गाय काय और विगुद्ध आलाचना की सीमा रखाए एक-दूगरे म मिलनी है घोर जब मैं इम कथन की पुष्टि डा० नगत्र के एक निगध म पाता हू तो मरा प्रसन्नता एक गहरी आत्मिक एव बौद्धिक परिश्रुति म परिणत हो जाती है आलाचनात्मक प्रतिभा क बिना मैं उत्कृष्ट अनुसंधान की कल्पना नही कर सकता । सत्य गाय के तीन सस्थान हैं—तथ्य-मग्रह विचार और प्रतीति । उपलब्ध तथ्य का विचार म परिणत त्रिय बिना ज्ञान की सिद्धि सभव नही है और विचार को प्रतीति म परिणत त्रिय बिना सत्य की सिद्धि सभव नही । तथ्य को विचार रूप देने क लिए भावन की आवश्यकता पडती है और विचार का प्रतीति म परिणत करन के लिए दगन अनिवाय है—और ये दोना ही साहित्यालाचन के अन्तरग तत्त्व हैं । अत उत्कृष्ट साहित्यिक आलोचना साहित्यिक अनुसंधान का उत्कृष्ट रूप है । (आस्था क चरण डा० नगत्र पृ० ६३) इस तथ्य का मैने यथामति निर्वाह करने का भरसक प्रयत्न रिया है वहा तक सफर हुमा हू विज्ञजन ही बता सकेंगे ।

अध्ययन के अभिप्राय की स्पष्ट करन की चेष्टा की गई है और यह बतलान का प्रयत्न किया गया है कि उपयामालोचन में उसका क्या महत्त्व है। यदि भी लेखक जो कुछ लिखता है उसमें उनका स्वभाव मस्कार एवं रुचि अरुचि प्रतिबिम्बित होनी हैं। उसकी अभिव्यजना अथ लेखकों की तुलना में कुछ विगिष्ट एवं व्यक्तिपरक होगी है। जब हम यह कहते हैं कि सामान्य अभि व्यक्ति में भिन्न जो विगिष्ट अभिव्यक्ति होगी है वही गली-तत्त्व का मूलाधार है, तो इसमें यही अभिप्राय है कि हम किसी लेखक की अभिव्यजना के उन सूक्ष्म तत्वों का सधान करें, जो कि उसने गली-तत्त्व को प्रभावित एवं नियंत्रित करते हैं।

जनेन्द्र के उपयासा में मनोविज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन की समावनाएँ अपरिशील हैं। एक प्रकार से यह भी कहा जा सकता है कि जनेन्द्र के कृतित्व का यही सर्वाधिक सबल अंग है। जनेन्द्र के परवर्ती उपयासों में भी जबकि उनकी औपयासिक बला क्षीण होती गयी है उनका शली-तत्त्व काफी मुखर रहा है, या दूसरे रूप में हम यह भी कह सकते हैं कि उनके इधर के उपयासा का यदि कुछ मूल्य अवशिष्ट रह गया है तो उनकी जनेन्द्रीय शली ही है जो कि दान एवं मनोविज्ञान में रुचि रखनवाले पाठक के लिए अब भी आमनरणकारी है।

गली-तत्त्व के अध्ययन का इतिहास आरम्भ हुआ था निवचन के सदन में, पर अब हम उसका प्रत्येक विधा के सदन में उपयोग कर रहे हैं वल्कि आज तो मनोविज्ञान प्रक्रिया के स्वरूप दर्शन में भी उसका उपयोग हान लगा है। किसी भी लेखक की मनावज्ञानिक प्रवृत्तियाँ उसके लेखन में प्रतिबिम्बित हुए बिना नहीं रह सकतीं। उसकी अतन्त्र विषय वस्तु तक पहुँचने के लिए शली तत्त्व ही एक प्रामाणिक सोपान है।

जनेन्द्र के उपयासा का अध्ययन विभिन्न कोशों से प्रस्तुत किया गया है। किसी ने उनके उपयासों का तात्त्विक विश्लेषण किया है तो किसी ने मनोविज्ञान के आधार पर उनके उपयासा का परीक्षण किया है किसी अन्य ने औपयासिक विकास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में उनकी दान का मूल्यांकन किया है। प्रस्तुत प्रबंध में उनके उपयासा का मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत करन की चेष्टा की गई है। यह दिना एक प्रकार से अब तक अछूती थी। निश्चय ही इस अध्ययन की एक सङ्कुचित परिधि है और इसके कृति कार के व्यापक रूप का चित्र हमारे सामने नहीं आ पाता फिर भी इस अध्ययन में एक ऐसा सूत्र हमारे हाथ लग जाता है जिससे हम जनेन्द्र की प्रतिभा के सर्वोत्तम अंग का आवलन प्रस्तुत कर सके हैं।

प्रस्तावना के उपरान्त प्रथम अध्याय में जनन्द्र के उपयोग का सर्वोक्षण प्रस्तुत किया गया है । इसमें स्थूल रूप में उनके उपयोग का इतिवृत्त और प्रयोजन स्पष्ट करने की चप्टा की गई है । सर्वोक्षण में तपोभूमि' के विवरण को हमने जानबूझकर नहीं लिया है क्योंकि स्वयं जनन्द्र इस अर्थना उपयोग नहीं मानते । उनके वृत्तिव का बहुत कम अंग इस रचना में आ पाया है । अन्तिम उपयोग मुक्तिबोध और अन्तर का विवरण अप्रशाश्रुत विस्तार से दिया गया है क्योंकि इन वृत्तियों का विवेचन मृत्याकन अभी अधिक नहीं हुआ है । सर्वोक्षण में एक स्थूल रूपरेखा ही प्रस्तुत की जा सती है । अधिक अन्तरण विद्वलपण साभिप्राय छोड़ा गया है क्योंकि परवर्ती अध्यायों में विभिन्न लिप्याएँ एक कारणों में जनन्द्र के उपयोगों का नया जोड़ा प्रस्तुत करने की चप्टा की गई है ।

द्वितीय अध्याय में प्रत्येक उपयोग के कथानक के ढांचे को अत्यन्त सश्लिष्ट रूप से निरूपित करने की चप्टा की गई है और उनमें मनोवैज्ञानिक हतुओं को आकार चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया गया है । विभिन्न उपयोगों के कथानकों में मूल में जा लेखकीय मनाभूमि रही है उस स्पष्ट करने की चप्टा की गई है । इनमें मूल कथाशा के पल्लवों की प्रक्रियाएँ एक मनोभूमियाँ स्पष्ट करने में लेखक के शीप-यासिक अन्तर्लोक में प्रविष्ट होने की चप्टा की गई है । इन कथाओं की प्रतिपादन-शली के जो भी विविध वग हैं, उनकी मनोभूमियाँ को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । इस प्रकार उपयोगों के मूल स्रोत तक पहुँचने का यह एक विनम्र प्रयास है ।

तृतीय अध्याय में जनन्द्र के उपयोगों की वणन शली का प्रतिपादन है । आरम्भ में वणनात्मक स्थला का वर्गीकरण एक विवरण प्रस्तुत किया गया है और इसी सत्तम में प्राकृतिक वणनों से संबंधित स्थला पशु पक्षियाँ पर्वत, सरिता सागर इत्यादि का तथा प्रात साध्याएँ रात्रि की शलीपरक भंगि माध्या का स्पष्ट करने के साथ-ही साथ विभिन्न ऋतुओं के वणन-क्रम को भी विद्विष्ट किया गया है । प्रत्येक वग की वणन शली की जो भी मनोभूमियाँ रही हैं उनका सधान करने की चप्टा की गई है और अंत में इन वणनों में प्रयुक्त भाषा शलियों का प्रतिपादन है और तब प्रत्येक उपयोग के सद्भ में उनकी विनसित होती हुई भाषा शली का स्वरूप निरूपण है ।

चतुर्थ अध्याय में सभापणों एक मवादों का तात्त्विक विवेचन है उनका वर्गीकरण है और फिर प्रत्येक वग की प्रतिपादन शली एक मनोभूमियाँ को गल्लवद्ध करने की चप्टा है । यही क्रम सभापणों के सद्भ में भी दोहराया गया है अर्थात् सभापणों का वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रतिपादन-शली एक

उनकी मनोभूमिया का स्पष्ट करते हुए कुछ निष्पन्न निकाले गये हैं। इस प्रकार जनेन्द्र के सवादा एव सभापरणो का एक विस्तृत शोधपरक चित्र हमारे सामने आ जाता है। विभिन्न उदाहरणों द्वारा तार्किक विवेचन को सचित्र (इलुस्ट्रेटेड) रूप देने की चेष्टा की गई है।

पंचम अध्याय के अंतगत शली एव मनोवेग की विभिन्न परिभाषाएँ देते हुए जनेन्द्र के उपयासों में उनके रूप तथा स्थिति का विवेचन किया गया है। शली-तत्त्व के विवेचन में हमने भारतीय काव्य शास्त्र में इसका जो भी रूप उपलब्ध था उसकी सक्षिप्त रूपरेखा देते हुए पाश्चात्य विचारकों के व्यापक विश्लेषण की चर्चा की है और शली के सवमाय रूप की स्थापना करने का प्रयत्न भी किया है। परख' से लगाकर अन्तर' तक शली के जो भी मनोवेगात्मक रूप मिलते हैं उनको न केवल यहाँ उद्धृत ही किया गया है बल्कि उनका विवेचन एव निवेदन भी किया गया है।

षष्ठ अध्याय में शली के विचारगत रूप का विवेचन है। इसमें यह बताने की चेष्टा की गई है कि विचार—चाहे वे हल्के-फुल्के हो या भारी भरकम दाशनिक्—किस रूप में शली को प्रभावित एव नियंत्रित करते हैं। इसी तथ्य का अध्ययन सभी उपयासों को दृष्टि में रखकर यहाँ प्रस्तुत किया गया है। विचार-तत्त्व की दृष्टि में जनेन्द्र के उपयास पर्याप्त बोधिल हैं किन्तु उनकी स्थिति उस नारियल के समान है, जो ऊपर से कठोर होते हुए भी अपने पक्ष में मधुर एव प्रवाही रस को धारण किये रहता है। जनेन्द्र की वैचारिक रेखाएँ बड़ी सम्पन्न हैं, उनमें आत्म अनारम से लगाकर विश्व की सभी ज्वलन्त समस्याओं पर किसी न किसी रूप में विचार है। उनके परवर्ती उपयासों में सामयिक राजनीति की गतिविधियाँ एव वसन्तिक जीवन का सङ्कट, नयी पीढ़ी के सदम में पर्याप्त रूप में प्रस्फुटित हुआ है। जा लेखक आरम्भ में नर-नारी के अतद्बद्धा में निमग्न रहा था और जिसने क्रान्तिकारियों के अद्भुत जीवन की भाँकी दी थी, वही सवहलीय सरकार, कामराज-योजना गांधीवाद इत्यादि के विचार प्रपंच में भी उलझा है और उसने एक व्यापक मानवीय संदेश देने की चेष्टा की है।

सप्तम अध्याय में मन के तीन स्तरा—चेतन अचेतन और अचेतन—की व्यापक संदम में समीक्षा की गई है। विभिन्न मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों का प्रामाणिक संदम देते हुए यह बतलाने की चेष्टा की गई है कि चेतन और अचेतन की प्रक्रिया में जनेन्द्र के उपयासों की क्या स्थिति है और उनकी भाषा शैली का क्या स्वरूप है। स्वभावतः यह पक्ष भी जनेन्द्र के उपयासों का अत्यन्त समृद्ध रूप प्रस्तुत करता है। उनके सभी उपयासों से व्यापक रूप में उद्धारण

१। हृण यह स्पष्ट किया है कि ध्यान और ध्यानधन का अन्तर्गत सिद्धांत य म धनुषि हास है और फिर सिद्ध रूप म पुणित-यन्त्रिय हास है । अध्याय क ध्यान म ध्यान रूप म सिद्धियों का सूत्रबद्ध किया गया है ।

ध्यान अध्याय म जग क ध्यान पर परामातमिह स्थिति का विवचन किया गया है और यथाचित ध्यान तथा समन्वित ध्यान क प्रभावा का ज्ञान क विभिन्न उपयोग म सूत्रों की ध्यान की गई है । परामातमिह स्थिति म ज्ञान का ध्यान नवीन परिष्कार का धारण करता है और फिर फिर ध्यान गहा पर शोभा है इसका व्यापक विवचन परम समगाकर ध्यान पर स्पष्ट रूप म रखा किया गया है । परामातमिह स्थिति क निष्पन्न म भा जनेद्र की दन कम महत्वपूर्ण नहीं बनी जा सकता ।

तब अध्याय म जनेद्र क उपयोग म ध्यान स्थिति क जो भी भंगभंग मितन है उसका विस्तृत धनुषधात किया गया है । उनके उपयोग क विस्तृत पर पर जो भा प्रभाव उभे मय है उनक स्वभाव का प्रभाव-याचना क ध्यान म स्पष्ट किया गया है । ध्यान-स्थिति पर धनुषधात म वाच्य ध्यान हमारा मवन रहा है भा प्रभाव-याचना क निष्पन्न एक विवचन म मनाविधान क विभिन्न सम्प्रदाया म हम ध्यान प्राप्त हुआ है । यह अध्याय एक प्रकार म प्रत्येक का मर रूप कहा जा सकता है । इसका ध्यान पूरे प्रबंध म समग्र एक निष्पन्न जगह करता है । तात्त्विकता क द्वारा ध्यान-स्थिति क विभिन्न भंगभंग का विवचन रूप म समझने की ध्यान है । अध्याय क ध्यान म ध्यान स्थिति का परिष्कार करके उसकी मर्यादा का निर्धारण एक धानुषधित रूप म स्पष्ट करने की ध्यान की गई है । सम्पूर्ण विवचन क उपरान्त नवनान रूप म कुछ सूत्रवान् निष्पन्न निवचन मये हैं ।

ध्यान अध्याय म साध-साध क व्यापक प्रकार म स तात्त्विक रमाया एक सिद्धांत का ध्यान करने की चर्चा की गई है एक साध की उपलब्धि का रसा कित करने की चर्चा की गई है । इसका साध-ही साध जनेद्र की ध्यान-स्थिति म जो भी ध्यान परिलभित हुई है उनका भी तत्त्व भाव म निष्पन्न किया गया है । एक प्रकार म यह अध्याय संपूर्ण प्रबंध का लघु रूप है । इसका ध्यान म हम उन निष्पन्नों क भी ध्यान कर सकते हैं जो कि हमारी धनुषधात-यात्रा के दौरान हम उपलब्ध हुए थे । एक वाक्य म कहना हा तो यही कहें कि जनेद्र मनोविज्ञानपरक गली-तरव के हिन्दी म न केवल प्रवक्तव प्रलोना हा है बल्कि उनकी दन ध्यान म एक धनुषधित भी प्रमाणित हुई है । सभी महाननाया क साथ बुद्ध-न-बुद्ध ध्यान ता लगी ही रहती हैं । ऐसी स्थिति म जनेद्र उनका कस बच सकते थे ? इतिहास का निष्पन्न एक साहित्य

सगाकर आकार चित्रों के आकल्पन तक मैं उनकी प्रेरणामयी उपस्थिति भरा सम्बल रही है। एक गान ही इस विद्यार्थी की गरिमा का प्रकट कर सकता है, और वह है कि इस सम्पूर्ण गोध अभियान में वह भरा गतिचालक (डाइरमा) रहा है। मन और तन दाना से ही मैं प्रभावी हूँ—मरा प्रभाव दीघमूत्रता के तटों का सहज संस्पर्श कर लेता है पर तन को यह गतिचालक नियमाण रखे रहा और मन को डा० उपाध्याय की निर्वोचकित्व एवं वनानिक गोध प्रणाली आवृष्टि किये रही। इन्हीं गहन प्रभावा से घिरा हुआ मरा मन और तन जो तथ्य उत्खनन कर पाया है, वह प्रस्तुत शोध प्रबंध के परिधान में आपके सम्मुख हैं।

मेरे पारिवारिक जनो का इस गोध-यात्रा के दौरान अनेक कठिनाइयाँ एवं असुविधायाँ का सहना पड़ा है। वे मेरे काय के कारण न तो कहीं जा सके और न मनारजन के उपकरण ही जुग सके। यदि मेरी जीवन-मिथिनी पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुझे मुक्त न रखती तो यह काय असंभवप्राय था। कुछ तो अपने साहित्यिक-सांस्कृतिक अभियानों के कारण और कुछ अपनी सीमित सामर्थ्य के कारण मैं अपनी गृहस्थी पर कम ही ध्यान दे पाता हूँ पर मेरी सहायिणी ने इन सम्पूर्ण दायित्वा का वहन बड़ी धार्यता एवं बुगलता से सम्पन्न किया है। यदि इनके प्रति मैं कुछ आभार प्रकट करूँ तो यह उठ प्रीतिकर न होगा इस लिए गीन ही रहता हूँ। मेरे परिवार के प्रत्येक सदस्य न इस काय में कुछ न-कुछ और किसी न किसी रूप में इस प्रकार हाथ बटाया है कि उसका स्मरण करते ही मैं स्वयं गौरवाचित हाता हूँ। विशेष रूप से सुपुत्री कुसुम की प्रतिभा एवं कलात्मक चेतना मेरे लिए अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है उसने लेखन और साज सज्जा दोनों में बड़ा योग दिया है।

अन्त में अपने मित्रा विशेषकर जयपुर के अपने आतिथेय श्री चम्पालाल राणा का किन गानों में आभार प्रकट करूँ जिनको मौके-वमौके में अपनी आकस्मिक उपस्थिति से चमत्कृत विस्मित करता रहा हूँ। श्रीमती राणा ने अपनी अस्वस्थता के बावजूद कभी मुझे यह महामूस नहीं होने दिया कि मैं बाहर का कोई व्यक्ति हूँ, उनके परिवार की अंतरंग सदस्यता का फल मुझे समय-समय पर मिलता रहा है। बंधुवर मुकुल ने मुझे सदैव इस काय के लिए प्रोत्साहित किया है। उह जब मैं फोन पर सूचिन किया कि अब मेरा गोध प्रबंध समाप्ति के निकट है तो वे बड़ उल्लसित हुए और कहने लगे डा० सूयकांत की तो हम खा बैठे अब डा० लक्ष्मीकांत हमारे बीच हैं (या हाग) यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। मित्रवर श्री मूलचंद सटिया का यह निरायक वाक्य भर लिए बड़ा प्राणप्रद सिद्ध हुआ कान्तजी पूरे तो

ब्रह्म ही होता है, आप पूणता के चक्कर में पद बिना अपना काम पूरा कर डालिये। अन्तरंग मित्र श्री गाविन्द श्रीमाली ने प्रबन्ध को देखकर बड़ा सन्तोष प्रकट किया और मुझे भाग बढ़ने की प्रेरणा दी। मेरे इन विद्वान् मित्र का सन्तोष बड़ा महंगा है, इसलिए मैं इनके मूल्य को किसी भी प्रकार कम नहीं भाँक सकता।

स्वभावतः पुस्तकाधिकारी पुस्तक-दान में कृपण होते हैं (सामाजिक सन्तुलन के लिए यह आवश्यक भी है) परन्तु श्री जयदेव गर्मा ने (दयानन्द कालेज के पुस्तकाध्यक्ष) इस सब में जा औदायपूर्ण रुत अपनाया, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। सब्धी अम्बादत्त पंत नगेन्द्रकुमार, रामजीलाल रामदत्त दशबन्धु कठस्थले जगदीश कु० मुक्ति श्रीवास्तव आदि अपने एम० ए० के प्रिय विद्यार्थियों से समय-समय पर जो सहायता मिली है उसका लिए मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना ही कर सकता हूँ। श्री रतनलाल बसल ने टक्का-काय में जो तत्परता दिखाई है उसका लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अपने अन्तरंग सहयोगी प्रो० विजयकुमार श्याम प्रो० राम जसवाल एवं प्रो० आम्प्रकाश अग्रवाल का प्रबन्ध की साज-सज्जा के लिए और प्रा० जय प्रकाश गुप्त का कुछ व्यावहारिक सुझावों के लिए मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री माधवप्रसाद गर्मा और वाणिज्य मकाय के डा० के० एन० गुप्ता से समय-समय पर जो प्रोत्साहन मिला है उसके लिए मैं उनका अतीव कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त भी अनेक मित्रों सहकर्मियों एवं विद्यार्थियों से मुझे जा मोन सद्भावना मिली है उससे मेरी क्लान्ति का परिहार हुआ है और मैं उत्साहपूर्वक अपने पथ पर आगे बढ़ सका हूँ।

सबसे बाद में (किन्तु यह न समझा जाय कि इसका किसी भी प्रकार का महत्त्व है) मैं आदरणीय जनद्वजी का पुण्य स्मरण करता हूँ जिनकी कट्टी, सुनीता मृणाल, कल्याणी सुखदा, भुवनमोहनी अनिता चन्दी इला, नीलिमा अमरा आदि के साथ मैं हँसा-खेला हूँ और जिनके सत्य, विहारी हरिप्रसन श्रीकांत प्रमाण डा० असरानी कांत लाल, हरीश, जितेन नरेण, कुमार जयवन्धन आचार्य सहाय प्रसाद ठाकुर, वीरेस्वर आदित्य प्रकाश आदि अनेक अजीब पात्रों के साथ मैंने चेतन भवचेतन मनोवर्गगत और विचारगत महा तक कि परामानसिक स्थितियों के अनेक आड़े तिरछे चित्र अपने शोध के कमरे से विभिन्न कारणों एवं आयामों में लिये हैं और उन्हें आपका विचाराय प्रस्तुत किया है। जनद्वजी के उपयास-लाभ का जो भी विवरण विश्लेषण एवं निवचन में कर पाया हूँ उसमें जनद्वजी से विभिन्न समयां एवं स्थानों में हुई मेरी वार्ताएँ बड़ी फलप्रद सिद्ध हुई हैं। उनकी गली में कुछ ऐसी सन्नाह

कता है कि मैं अपने ध्यान का उदय नही उठा सका हूँ। यह प्रभाव भी मरी वापस लाना एक अभिप्रेरणा म कहा नहीं मुगर हुआ है।

जननी के ध्यानका भी मैं कम भूत करता हूँ, जिन्हे मर पय का मुगम एक व्यस्तता बनाया है। सर्वाधिक ऋणा हूँ मैं डा० दरराज उपाध्याय का ज्ञान धनी समापारण धारण एक जीवन्ता म जननी के उपाया का पर्यायान्त किया है। डा० रामरान भन्नागर का गुननी हूँ पुन्त न भी मरी गाने का वाता वा बना है धार पय का मुगम एक प्रगण बनाया है। साहित्य विज्ञान म आन्तर्य पर पुष्पन सामग्री जुगतर मित्रवर डा० गणपतिना गुण न मर माग का मुगर बनाया है। उनका गल-स्थितिया के पारलानि विवरण म मैं विचार रूप म सम्भावित हुआ है। डा० रमा कुन्त मय न (धा० हजारीप्रसाद के उपायाका के विवरण के सम्भ म) उपायाकापन एक साथ के जो नय प्रतिमान गठे किए है उनका एक वगानि दलि मुन प्राप्त हुई है और जननी के उपायाका के मनाविज्ञानिक अनुशा का धारण विप्रा द्वारा प्रकृत करने की प्रणालि मिला है।

यह एक बात भी अत्यन्त ही है कि विभिन्न प्रध्याया के उदय-परिचयन म मुझ जननी के उपायाका का पुन-पुन पढ़ना पडा है (उपमग १० बार)। उन पर जो प्रभूत ध्यानचता एक गाथ-वाय हुआ है उमका भी बग मतकता म अनुमान्त किया गया है। तथा पर इन ध्यानचरा म मरी अमहमति रहा है वही मैं अपने मन का विनम्रतापुन प्रतिपादन किया है। महमति की स्थिति म उनका मन का सोझी बना धारण की बात कहा गई है। वस्तुतः गाथ-वाय एक सामूहिक प्रयत्न का पत्र हाता है। एक अनुमधाता जिम स्तर पर पहुच जाता है, वहा म दूसरा अपना गाथ अभियान धारम्भ करता है और विचार रतना अथवा तथ्या का धारणित करने की चला करता है। इस सम्पूर्ण प्रयत्न म मैं कहा तब सफल हुआ हूँ यह मर कहन की बात नहीं है इस सबध म तो विनयना का निणय ही मुझ गिराधाय हागा।

ध्याना करता हूँ कि इस गाथ-वाय म मनाविज्ञानपरक गली-तात्त्विक अध्ययन का पय प्राप्त हागा और गाथ हा हिन्दी मसार का इस सन्ध म विभिन्न कृती साहित्यकारा के अध्ययन मुलभ हा सकेंगे। यह डा० सत्यद की गाथ-परिपाजना का प्रथम पुष्प है अत यह उह ही समर्पित है। यह प्रवध १० नगरी और १० त्वराज उपाध्याय के मूधय ध्यानचका का मन्ताप एक सराहना परीक्षक के रूप म प्राप्त कर सका यह मर लिय विषय प्रसन्नता का विषय है।

यह सयोगजय पुष्पक हा है कि मेरा गाथ-वाय जा कि गाधीवाग तत्व

चिन्तक उप-यासकार पर है गाधी गतवापिकी के पावन अवसर पर पूरा हुआ है। इति शुभम् ।

२ अक्टूबर गाधी गतवापिकी, १९६६

लक्ष्मीकान्त शर्मा
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
दयानन्द वाचज अजमेर

प्रस्तावना

१ मनोविज्ञानपरक शैली-तात्त्विक अध्ययन से अभिप्राय और उसका महत्त्व

हम ससार में जितने भी काय सम्पन्न करते हैं उन सबके पीछे कोई-न कोई मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि होती है। कोई भी काय करने से पूर्व हम उसके बारे में सोचते हैं और तब उसे कायरूप में परिणत करते हैं। उप-यास-लेखन के सन्दर्भ में शैली-तत्त्व हमारे लेखन का बाह्य रूप है बाह्य होते हुए भी उसमें हमारे अन्तर की 'योजना' रहती है। जब कोई उप-यासकार कुछ लिखन बढता है तो उस प्रकट करने का उसका अपना एक खास तरीका होता है। इसी खास तरीके को 'शैली' तत्त्व कहा जा सकता है। बफन ने कहा है कि 'शैली ही व्यक्तित्व है। इसका यही तात्पर्य है कि प्रत्येक उप-यासकार की शैली में उसका व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति रहती है। जो कुछ हम लिखते हैं उस पर हमारे व्यक्तित्व की छाप रहती है। चस्टरफील्ड ने 'शैली' को 'विचारों का परिधान' बताया है।' विचारों के इस परिधान में लेखक की मानसिक प्रक्रिया, स्वभाव और संस्कार अपने आपको व्यक्त करते हैं। इसी विचारों का परिधान वह लेखिके या व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति। इस प्रकार मनोविज्ञानपरक शैली-तात्त्विक अध्ययन से अभिप्राय यह है कि हम किसी भी रचनाकार के शैली-तत्त्व का जब अध्ययन करें तो यह पता लगाने का प्रयत्न करें कि उसकी लेखन शैली में उसकी कौन सी मानसिक कृष्ण, स्वभाव एवं संस्कार अपने आपको व्यक्त करते हैं। विचार और रूप एक दूसरे से गहन रूप में संबंधित हैं। विचार एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जो कि किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर प्रतिक्रियास्वरूप मन में प्रकट होती है। जब किसी विचार को हम शब्दों की सीमा में बाँधने लगते हैं तो शैली का स्वरूप हमारे सामने उभरने लगता है। लेखक की अभिव्यक्ति में जो प्रचलित सभिन रूप हाता है वही शैली का

मूलाधार है ।

मनोविज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन का आज के युग में बड़ा महत्त्व है क्योंकि वचारिक प्रक्रिया को विभिन्न विज्ञान भाषा शास्त्र एवं सौंदर्य शास्त्र की जटिल प्रक्रियाएँ प्रभावित कर रही है । इस प्रभाव का क्षेत्र एक ओर बहुत विशाल है तो दूसरी ओर बहुत सूक्ष्म भी है । व्यक्ति का मन बड़ा संवेदनशील है उसमें प्रत्येक घटना की कुछ-न कुछ प्रतिक्रिया होती है । जब हम किसी उपन्यासकार के शली-तत्त्व का अध्ययन करते हैं, तो उसके मन के चेतन, अचेतन एवं अचेतन में जो भी मानसिक प्रभाव सन्निहित होते हैं, उनकी बुनावट को उधेड़कर देखने का प्रयत्न करते हैं । शली-तात्त्विक अध्ययन का परिणामस्वरूप हम बड़ी सुगमता से लेखक के मन के संस्कारों को उसका शली के माध्यम से प्रकट होत हुए देखते हैं और तब उनका सुगमतापूर्वक विश्लेषण भी कर सकते हैं । इससे नये-नये तथ्या की प्राप्ति होगी और हम लेखक के मनोलोक का सहज ही में विश्लेषण कर सकेंगे ।

चतना जिस प्रकार विभिन्न शारीरिक प्रतिक्रियाओं में अपनी अभिव्यक्ति करती है उसी प्रकार हमारे विचार भी हमारी दैनिक क्रियाओं में प्रतिफलित होने हैं । जब काद भी लेखन अपनी कथा का ताना बाना बुनता है तो उसे प्रकट करने के लिए एक विशेष प्रकार की शली की आवश्यकता होती है । उस कथा के रूप में उसके विचार भावनाएँ एवं कल्पनाएँ अपने आपको पात अनात रूप में प्रकट करते हैं । आत्मा और शरीर में जिस प्रकार घनिष्ठ संबंध है उसी प्रकार लेखक के मनाविज्ञान और उसकी शली में भी अविभाज्य संबंध है । उसकी रचना का जो भी रूप हम प्रत्यक्ष में दिखाई देता है उसके मूल में कुछ अतः प्रेरणाएँ काय करती हैं । इन अतः प्रेरणाओं का संचान ही मनो-विज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन का उद्दिष्ट है । रमणीय काया में रूप की जा लहर उस दीप्तिमान् करती हैं, वही लहरें सूक्ष्म रूप में वचारिक काया को भी कचन की तरह निखार देती हैं ।

२ जनेन्द्र के उपन्यासों में मनोविज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन की सम्भावनाएँ

हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पवतन का श्रेय प्रायः जनेन्द्र को दिया जाता है । उनके उपन्यासों में शली-तत्त्व भी संवथा एवं संवदा मुखर रहा है । ऐसी स्थिति में जनेन्द्र के उपन्यासों का मनाविज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन अपरिशील सम्भावनाओं से पूर्ण है । उनकी वचारिक प्रतिक्रियाओं को उनके उपन्यासों के शली-तत्त्व में हम स्पष्ट रूप से मुखरित होता पाते हैं । टा०

देवराज उपाध्याय की मायता है कि जनेन्द्र के पात्र 'कम रत' के स्थान पर चिंतन रत अधिक हैं। इसका स्पष्ट कारण स्वयं इन उपाध्यायों के स्रष्टा की जीवन स्थिति और वचारिक परिणति रही है। जो आदमी सोचता अधिक है और काम नाम-भात्र का ही करता है उसके चिंतन और लेखन में एक प्रकार से उसकी कमण्यता का अभाव की परिपूर्ति देखी जा सकती है। जनेन्द्र के मनो लोक में ऐसे ही पात्रों की अवतारणा होती है, जो कि चिंतन की रेखाओं से आप्लावित हात हैं और जिनके जीवन में काम का विशेष महत्त्व नहीं है। परख के सत्यधन से लगाकर अनंतर के विचारक प्रसाद तक ऐसे ही पात्रों की भरमार है। जनेन्द्र के नारी पात्र अधिक मुखर एवं क्रियाशील हैं। उनके ही हाथ में पुरुष पात्रों की नियति का सूत्र रहता है। यही कारण है कि कटो सुनीता मृगाल, अपरा इत्यादि अपने अपने उपाध्यायों के मानसिक स्थितिज पर एक प्रमुख प्रभावशाली पात्र के रूप में मंडराती रही है।

जब हम जनेन्द्र के उपाध्यायों का मनोविज्ञानपरक शली-सांत्विक अध्ययन प्रस्तुत करने की सोचते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि के सर्वाधिक सशक्त तत्वों का ही अध्ययन प्रस्तुत करने की मनाभूमिका हमारे शोध प्रबंध का विषय बनेगी। जनेन्द्र के उपाध्यायों को समझने एवं उनका मूल्यांकन करने में और उनके पात्रों के बशिष्ठ्य का निर्धारण करने में एक नयी ऐतिहासिक भूमिका का निर्माण हो सकेगा। अब तक हिंदा के रचनाकारों का अध्ययन इस पीठिका पर नहीं हुआ है अतः यह एक नया पथ है और एक नये पथ के निर्माण का दायित्व भी गायबर्ता की परिधि में आ जाता है। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर हम इस बात का भी पता लगा सकते हैं कि छायावाद ने न केवल हिंदी कविता को ही समृद्ध किया, बल्कि उसका प्रदेय क्या साहित्य के निर्माण में भी काफी उज्ज्वल रहा है। प्रेमचंद के परम्परागत उपाध्यायों का जनेन्द्र ने एक नयी दिशा प्रदान की और बाह्य लोक से हटकर पात्रों के जीवन का अंत प्रयाण को और उमूख किया। इससे यही प्रकट होता है कि बाह्य घटनाचक्र की अभिव्यक्ति से हमारा उपाध्यायकार सन्तुष्ट नहीं हो सकता, उसे अपने पात्रों की मानसिक सम्पदा का भी लेखा जोखा प्रस्तुत करना होगा।

जनेन्द्र के सम्पूर्ण लेखन में सहज वार्ता शली का स्वाभाविक उभेप है। डा० देवराज उपाध्याय ने इसी बात को दृष्टि में रखकर अपनी निम्न मायता बड़े सटीक शब्दों में प्रकट की है 'जनेन्द्र की रचना में सबत्र यही चर्चितमक शैली और भाषा पायी जाती है। उनकी पुस्तकों को पढ़ते समय मालूम होता है माना लेखक आपसे बातचीत कर रहा है। उस बातचीत में कही कुछ गरमी

भी आ जाती है पर ठीक उमी सहज और स्वाभाविक ढंग से जैसे हम और आप कभी-कभी बातचीत करते रहते हैं।^{१२}

अपने कथन के समय में डा० उपाध्याय ने ब्याख्या के प्रथम अनुच्छेद का लिया है। जब कभी उधर में निकलता है मन उत्साह हो जाता है। वाग्विनी ता करता है कि फिर उधर जाऊँ है क्या? लज्जित बनार। सच बात यह है कि अगर मैं इस तरह एक एक राह मून्ता चूँ तो फिर खुशी रहने के लिए लिंगा किधर और कौन रोप रहे जायगे? या सब दूरे जायगा। पर स्वना नाम जित्नी का नहीं है—जित्नी नाम चयन का है।

सबसे जनद्र की यहा भाषा और गनी है। उन् से घणा नहीं अग्रजी से परहज नहा ममृतन म दुराव नहीं। उनक यहाँ भेत्भाव की वृत्त नहा। केवन शन है ता स्वाभाविकता की सहजता की और बोधगम्यता की।^{१३}

मरा अनुभव ता यह है कि जनेन्द्रजी की लेखन गली प्याज का व्यक्तित्व धारण किए हुए है, जिसकी परतों पर परतें तोलते जाते हैं और अदर से अत्यंत ही स्निग्ध एवं उज्ज्वल रूप जैसे निकलता है वस ही जनेन्द्र भी बात में से यान निकालते हैं और वह बात बड़ी गहरी और सटीक भी होती है। जनद्र के चिन्तन और लेखन की यह एक महान प्रक्रिया है। जनद्र के मनो विज्ञानपरक गनीतात्त्विक रूप ने हिन्दी-उप-याम का धारा का बहुत दूर तक प्रभावित किया है। उनक इस तत्त्व का अत्यंत ही परिष्कृत रूप हम अनेक के नदा के द्वीप में मिलता है। नये उप-याम-शर यद्यपि जनद्र के प्रभाव को नकारते हैं फिर भी उनकी लेखन गनी और गिन्य विधान में अज्ञान रूप से जनद्र का प्रभाव मुखरित हो उठता है। अपने कथन के समय में घमबीर भारतीय राजेन्द्र यादव कमलदेव और गिवाणी के उप-यामा को प्रस्तुत करना चाहेंगे। गनी-तात्त्विक अध्ययन की सम्भावनाओं में जनद्र से लगाकर अत्याधुनिक उप-यामकारा तक एसी प्रच्छन्न धारा चली है जिसे सहज पर जाकर उसका विनयण एवं वर्गीकरण किया जा सकता है और इस दृष्टि से हम अपने ग्राह-काय का नवीन उपलब्धिया में अनुप्राणित कर सकते हैं। यहाँ यह बात भी विस्मृत नहीं की जा सकती कि समय के साथ-साथ जनद्र का गनी-तत्त्व अपना चरम सामा तक पहुँचकर जीवन्तता के प्रभाव में क्षीण हुआ है और उसकी इधर का परिणति कुछ-कुछ चिन्ताजनक भी हो चली है।

२ डा० देवराज उपाध्याय जनेन्द्र के उप-यामा का मनावनात्मक अध्ययन
पृ० ६३।

३ वही।

३ शैली-तत्त्व के अध्ययन का इतिहास और उसमें मनोविज्ञान प्रक्रिया के स्वरूप-दशन का निरूपण

शैली तत्त्व के अध्ययन की प्रवृत्ति अधिक प्राचीन नहीं है। उपन्यास के सद्भ में तो इसका विवेचन नितांत आधुनिक प्रवृत्ति है। सद्धातिक आलोचना के ग्रन्थों में इसका पथक विवेचन तो नहीं मिलता किन्तु रस के साथ शैली को भी समाविष्ट कर दिया गया है। सर्वप्रथम 'साहित्यालोचन' में डा० श्याम सुन्दरदास ने रस और शैली' शीपक प्रकरण लिखा और उसका विस्तार से विवेचन किया। डा० दास की मायता है कि 'रस' साहित्य का भाव पक्ष है और 'शैली' उसका कला-पक्ष। भारतीय साहित्यशास्त्र में रीति और वृत्ति का विशद विवेचन मिलता है। इस रीति और वृत्ति को शैली की पूवजा कहा जा सकता है, किन्तु विस्तार एवं पथकता से इसका विवेचन तभी से आरम्भ हुआ, जब से हम अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य के ससग में आये।

शैली-तत्त्व का विवेचन, निबन्ध के सद्भ में अधिक हुआ है। 'हिंदी गद्य शैलियों के विकास' से लगाकर गद्य मीमासा^४, हिंदी साहित्य में निबन्ध^५ आदि पुस्तकों से नवीनतम 'साहित्य विज्ञान'^६ तक इसी प्रक्रिया का पल्लवित रूप मिलता है। क्या-साहित्य के सद्भ में भी इसकी चर्चा गौण रूप में हुई है, किन्तु इधर शैली तत्त्व को कलाकार की अंतःरात्मा में प्रविष्ट होने का एक प्रामाणिक साधन माना जाने लगा है। जब हम किसी उपन्यासकार के शैली तत्त्व का जिज्ञा करते हैं तो उसके मनोलोक में प्रविष्ट होने का यह एक महत्त्वपूर्ण सोपान सिद्ध हुआ है। इसकी सहायता से उसकी अंतश्चेतना की परता पर-परत खुलती जाती है और हम शब्द चयन वाक्य रचना पद वियोग एवं मुहावरों के प्रयोग से यह बतलान में सफल हो पाते हैं कि अमुक रचनाकार का कसा स्वभाव एवं सस्कार है। उसकी रुचियाँ और अरुचियाँ उसकी लेखन शैली में तीव्रता के साथ अभिव्यक्त होती हैं। जब विलियम हैजलिट कोई निबन्ध लिखता था, तो रोमन साम्राज्य को गाली दिये बिना उससे नहीं रहा जाता था। इसी प्रकार चार्ल्स लव भी अपनी सौम्य एवं परिष्कृत रुचि को नितांत व्यक्तिकता के माध्यम से प्रकट करता था। ए० जी० गार्डिनर जब 'अल्फा ऑफ द प्लाऊ' के नाम से लिखता था, तो उसकी शैली का ज्ञापक

४ हिंदी गद्य शैली का विकास डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा।

५ हिंदी गद्य मीमासा डा० रमाकांत त्रिपाठी

६ हिंदी साहित्य में निबन्ध प्रो० ब्रह्मदत्त शर्मा।

७ साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचंद्र गुप्त।

साहित्य रसिका का मुग्ध कर देता था ।

हिन्दी साहित्य का सन्भ म यही बात नयना की गगा और 'मनदूरा और प्रेम का नगर' सरदार पूर्णसिंह के सवध म वही जा सवता है । आरभ म जनेद्र की निबन्ध रचना का लय उनाकर यही कहा गया था कि व हिन्दी के विनियम है। किन्तु हैं क्याकि उनम बुद्धि-तत्त्व अधिक् प्रधान रहा है । गग तत्त्व एव व्यक्तित्ता की पुत्र सियारामशरण गुप्त के निबन्धा म पायी गई । इस लिए उन्हें हिन्दी का चाल्म लम्ब बताया गया । इसम पूव चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के निबन्धा एव कहानिया म भी एक विशिष्ट यकिनत्व की अभिव्य जना मिलती है । इधर कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर कुट्टिचातन (अनेय) और विद्यानिवास मिश्र के निबन्धा को लेकर भी गली-तत्त्व की बात प्राय सुनी गई है ।

कथा साहित्य के सन्भ म गली को महत्त्वपूर्ण स्थान सवप्रथम जयशंकर प्रसाद ने दिलवाया । उनकी कहानिया और उपन्यासा म एक विनिष्ट गद्य काव्यात्मक गली का अनुगमन किया गया है । इहीके कुछ वाक्य पौथ्य यचन शर्मा उग्र न भी गली की सनसनाहट और ताम भाम स साहित्य-पाठना को चमत्कृत किया था । उग्र जी के बाद सभवत जनेद्र ही हिन्दी-कथा-साहित्य म एक गलीनार के रूप म अवतरित हुए । इनके कुछ ही वाद गही से प्रेरणा लेकर अनेय न भी अपनी पथक गली का निर्माण किया । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी न वाणभट्ट की आत्मकथा म सस्कृतनिष्ठ कथा गली का स्वर मुखर किया । शिवानी के नये उपन्यासा म एक आर हजारीप्रसादजी की सस्कृत निष्ठ गली का तो दूसरी आर निहायत ही बालचाल की गली म जनद्र का असर दखा जा सकता है । उनका व्यग्य यगपान की चुभती हुई फतिया का स्मरण करात है । निमल वमा उपा प्रियम्बटा धमवीर भारती राजेन्द्र यादन मनू भण्डारी कमलेश्वर मोहन राकेश आदि दजना कथाकारा म श्रव गली का विनिष्ट रूप प्रतिबिम्बित हान लगा है ।

गली-तत्त्व ने किसी कलानार के मनोलोक म पहुँचने का एक सुगम साधन प्रस्तुत कर दिया है । किसी भी लेखक का गद यचन उसकी वाक्य

८ जनेद्र के विचार सम्पादन प्रभाकर माचवे । प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई ।

९ भूठ-सच सियारामशरण गुप्त । प्रकाशक साहित्य सदन चिरगाव भासी ।

१० उग्र जी की श्रेष्ठ कहानियाँ विनोप रूप स मरी माँ गीपक कहानी ।

रचना एवं मुहावरो की अभिव्यक्ति से तथा विराम चिह्ना के प्रयोग से हम उसकी मनोरचना का सहज ही अनुमान लगा लेते हैं। निराला जब कोई कविता या कहानी लिखते थे तो उसका रचना विचार इतना पृथक् होता था कि हमें यह अनुमान करने में कोई कठिनाई नहीं हाती थी कि यह सिक्का निराला की ही टकसाल में ढला है। आनुवशिश्री के, मूदम अध्ययन के इस युग में जहाँ शरीर विज्ञान के नये-नये तथ्या पर प्रकाश पड़ा है, वहीं शैली-सर्व के अनुसंधान की अधुनातन प्रवृत्ति ने एक नये रहस्य-लोक के द्वार खोल दिए हैं। मनोविज्ञान की नयी-नयी उद्भावनाओं ने इस शैली-तत्त्व को और भी अधिक मुखर किया है। इसी सन्दर्भ में डा० गुलाबराय इस प्रकार लिखते हैं—'मनुष्य क्षणिक मनोदशाग्रा (मूडस) का समूह-सा दिव्यायी देता है और अवचेतना का द्वार खुल जाने से मानसिक जीवन और भी सबुल हा गया है।'

पश्चिम में जेम्स जायस^१, बर्जीनिया वुल्फ^२ के उपयोगाने ने मनोवैज्ञानिक शैली की दृष्टि से घूम मचा दी थी। अर्नेस्ट हेमिंग्वे, और डी० एच० लारेन्स ने आन्तरिक मनोवृत्तियाँ की भलक दिखाकर मानव-जीवन को जब क्षेत्रवाद दिया, तभी से मनोवैज्ञानिक शैली को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा। योरोप और अमेरिका में इन कलाकारों का मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आलोचकों में एफ० एल० ल्यूकस ने आर्न स्टाइल नामक ग्रन्थ लिखकर साहित्य जगत् में शैलीतत्त्व की प्रतिष्ठा की। इसी दृष्टि में फ्रैंक उपपासो का मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। भारतीय साहित्य में अभी प्रहृ एक नयी दिशा समझी जाती है और इसी के, सन्दर्भ में जैनेन्द्र के उपयोगाने पर प्रस्तुत अध्ययन एक विनम्र प्रयत्न है।

यह बात अब निर्विवाद ममभी जाने लगी है कि किसी साहित्यकार के शैली-तत्त्व से ही हम उसके मनोलोक में प्रवेश कर सकते हैं और उसकी सूक्ष्म सम, अंतवृत्तियों का उत्खनन किया जा सकता है। प्राधुनिक युग में जिस प्रकार भौगोलिक सर्वेक्षण एवं उत्खनन द्वारा प्राचीनतम सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का अनुसंधान किया जा रहा है, उसी प्रकार स्रष्टा के शैलीतात्त्विक अध्ययन के द्वारा उसके मनोविज्ञान का सर्वेक्षण किया जा सकता है और यह बात साम्या जा सकता है कि वे कौन सी मूल-प्रवृत्तियाँ हैं जो लम्बक को साहित्य रचना के लिए उत्प्रेरित करती हैं और मृज्ज के क्षणों में किसी भी लम्बक की

११ काव्य के रूप डा० गुलाबराय (प० १८४, चतुर्थ संस्करण १९५८)।

१२ मूलसिद्ध जेम्स जायस II (1911)।

१३ मिस्त्र, डलोवे बर्जीनिया वुल्फ। (1925)।

कल्पना एवं मनोवेगा को परवान चढ़ाती हैं। शून्य क्रिया के द्वारा जिस प्रकार हम मानव शरीर की विवृतियाँ एवं सौष्ठव का परिज्ञान कर सकते हैं, उसी प्रकार मनोविज्ञानपरक शलीतात्विक अनुसंधान भी एक प्रकार की साहित्यिक शून्य क्रिया है जिसके द्वारा हम रचना विधान व अन्तःसूत्रा का अन्वेषण कर सकते हैं। नय जीवन-मूल्या की तन्मय शलीतात्विक अध्ययन किसी दिन एक प्रमाण अस्त्र प्रमाणित हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम पर्याप्त सजगता एवं निष्ठा व साथ इस नया दिशा में अग्रसर हों।

८ जनेन्द्र के उपन्यासों पर हुए अध्ययन का ऐतिहासिक प्रमानुसार पूरा विवरण

जनेन्द्र के सम्बन्ध में सबसे प्रथम लिखने का श्रेय सम्भवतः डा० प्रभाकर माचवे को है। उन्होंने सबसे प्रथम जनेन्द्र के निबंधों को लेकर एक पुस्तक प्रकाशित की 'जनेन्द्र के विचार'। इस पुस्तक की भूमिका इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसमें न केवल जनेन्द्र के विचारों का दोहन ही किया गया है, बल्कि उनकी विगिष्टताओं की संभावनाओं का एक पूर्वाभास भी इस भूमिका में प्रस्तुत किया है। यही पुस्तक बाद में किंचित् संपोधनों एवं परिवर्धनों के साथ 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' के नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के सिलसिले में कुछ लोगों ने प्रभाकर माचवे के काम को ठीक वसा ही महत्वपूर्ण बतलाया जैसा कि डॉ० जानसन के सदम में बास्वेल ने किया था। हालाँकि यह बात स्पष्ट है कि जनेन्द्र जानसन नहीं हैं और यह भी उतना ही स्पष्ट है कि प्रभाकर माचवे भी बास्वेल की तरह जीवनीकार नहीं बन सके।

इस पुस्तक की भूमिका में माचवेजी ने जनेन्द्र के शली-विगिष्टय व संबन्ध में इस प्रकार विचार व्यक्त किए हैं 'उनके साहित्य में सबसे प्रथम और विशेष गुण, उनकी भावरम्य सहज वात्सलाप-शली के अन्तर्गत उनकी विचार प्रवृत्तता है। उनके विचारों का चाहे प्रत्याख्यान हम करें पर यह तो हम कदापि कह ही नहीं सकते कि वे पाठक या श्रोता के मन में विचार लहरियाँ नहीं उठाते सहजता उनके विचार का उत्स है। वही उनके विचारों की श्रुतुल और प्रवृत्तता का अर्थ है, और वही अन्तर्गत अर्थ है। जनेन्द्र ऐसी सुलभ हैं जो पहली से भी अधिक गूढ़ हो, वे इतने सरल हैं कि उनकी सरलता भी ब्रह्म लगे। वे इतने निरभिमान हैं कि वही उनका अभिमान है।'

। यद्यपि उपर्युक्त बात जनेन्द्र के निबन्धा के सबध म कही गयी है, पर यही बात प्रकारान्तर से जनद्र के उपयास-लेखन म भी केन्द्र बिन्दु बन गयी है ।

-जनेन्द्र के प्रथम उपयास 'परख' के प्रकाशन पर और उसके साय-ही-साय कुछ कहानिया के लेखन के सबध म स्वर्गीय प्रेमचन्द ने 'हस म लिखा था "उनम अन्त प्रेरणा और दाशनिक् सकोच का सधप है, इतना हृदय को मसो सने वाला इतना स्वच्छद और निष्कपट, जस बधनो मे जकडी हुई आत्मा की पुकार हा ।, उनमे साधारण सी बात को भी कुछ इस ढग से कहने की शक्ति है जो तुरन्त आकषित करती है । उनकी भाषा म एक खास लोच, एक खास आत्मा है ।'" प्रेमचन्द के प्रस्तुत उद्धरण मे भी उनक शली-तत्व, उसके लोच एक आदाज की बात कही गयी है ।

- जब साहित्य सन्देश ने अक्टूबर नवम्बर, १९४० म अपना 'उपयास अक' प्रकाशित किया, तो जनेन्द्र पर स्वर्गीय नन्ददुलारे वाजपेयी और प्रभाकर माचवे ने अपने विचार प्रकट किये थे । वाजपेयीजी ने अपने निबन्ध म जहा एक और जनेन्द्रजी के उपयास लेखन की कुछ असगतियों की ओर हिंदी-पाठको का ध्यान आकषित किया था वही प्रभाकर माचवे ने उनकी कुछ विशेषताओं पर सबप्रथम अपने विचार जाहिर किये थे । इन निबन्धा मे जनेन्द्र की 'यूनताओं और उपलब्धियों का समझने का एक प्रारम्भिक प्रयत्न है । इसका बाद सबत् १९६७ म हिन्दी उपयास " पर एक सुलभी हुई पुस्तक शिवनारायण श्रीवास्तव ने प्रस्तुत की । जनेन्द्र की उपयास-कला पर इसमे विशद विवेचन है । इस पुस्तक म 'परख' से लगाकर सुनीता तक ही जनेन्द्र की उपयास-कला का विवेचन हो पाया है । श्रीवास्तवजी ने जहा उनक रचना-सौष्ठव की प्रशंसा की है वहीं उन्होंने उनकी भाषा मे आने वाले अंग्रेजीपन की शिकायत भी की है । भाषा की दुर्बलता पर भी उन्हें आपत्ति है । अपनी पुस्तक के नये संस्करण म उन्होंने अपने अध्ययन को अद्यतन बनाने की चप्टा की है पर फिर भी उनके विवेचन की परिधि मे जनद्र का संपूर्ण औपयासिक कृतित्व नहीं आ पाया ।

भाचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास मे जनेन्द्रकुमार, के 'सपोभूमि' और 'सुनीता' का नामाल्लख मात्र ही मिलता है । कुलजी ने वतमान उपयासो के भेद के प्रसंग म चौथे सूत्र के अन्तगत यह लिखा है 'अन्त वृत्ति अथवा नील वचिष्य और उसका विकास अम अकित करने वाले, जस,

१५ 'हस वष-सख्या ४ । (सरस्वती प्रेस, बनारस) ।

१६ हिन्दी-उपन्यास शिवनारायण श्रीवास्तव । प्रकाशक । सरस्वती मंदिर, काशी ।

प्रेमचन्दजी का गबन जनेन्द्र का तपोभूमि, 'सुनीता ।' ' इससे अधिक
 आचार्यप्रवर और कुछ न लिख पाए ।

१९४१ म ही श्री बिनोयचर व्यास ने उपन्यास-बला नामक पुस्तक
 प्रस्तुत की । इसम हिन्दी उपन्यास पर भी एक अध्याय है, किन्तु इस अध्याय
 म जनेन्द्र का कोई उल्लेख नहीं मिलना । श्री नरोत्तम नागर ने प्रगतिशील युग
 के आरम्भ म जबकि उस पर फायड क मनोविश्लेषण का भी अत्यधिक प्रभाव
 पड रहा था एक पुस्तक लिखी 'गुतुरमुग-पुराण । इस पुस्तक म जनेन्द्र के
 आरम्भिक उपन्यास का कुत्सित मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । कुत्सित'
 में इसनिष्ठ कहा कि नागरजी अपनी बात को इतने अडिग विश्वास के साथ
 कहते हैं कि वहा उगार चिन्तन एव मनन के लिए कोई गुजाइश नहीं रह
 जाती । एसा प्रतीत होना है कि यह कृति लेखक क विकृत मानस की उपज
 है । यद्यपि इस मनोविश्लेषण म भी कुछ सत्याग या अद्वैतत्व हो सकते हैं पर
 फिर भी यह कुत्सित समाजशास्त्रीय प्रयत्न की हा तरह कुत्सित मनोविश्लेषण
 (बलार साइका एनेलिसिस) कहा जा सकता है ।

जनेन्द्र क उपन्यासो पर सबसेप्रथम पुस्तक^{१७} श्री रघुनाथसरन भालानी की
 मिलती है । इहाने अपनी एम०ए० की परीक्षा म लघु प्रबंध के रूप म जनेन्द्र
 क उपन्यासो का विवेचन किया है । यह वास्तव म जनेन्द्र के उपन्यासो को
 समझने का प्रारम्भिक प्रयत्न कहा जा सकता है । किन्तु इस पुस्तक म सात
 उपन्यासो पर ही विचार किया जा सका है । लघु प्रबंध होने के कारण इसकी
 कुछ सीमाएँ भी रही हैं । इस पुस्तक की विशेषता यही है कि स्वयं उपन्यास
 कार के निकट-सम्पर्क म रहकर श्री भालानी ने अपने सुलभे विचार व्यक्त
 किए हैं ।

जनेन्द्र पर पहली व्यवस्थित एव सर्वांगपूर्ण पुस्तक डा० रामरतन भटनागर
 लिखित जनेन्द्र साहित्य और समीक्षा^{१८} है । इसम विस्तार से इनके उप
 न्यासो का विवेचन किया गया है । इसका प्रकाशन-काल सन् १९५८ है अत
 स्वाभाविक ही था कि इसम १९५६ स प्रकाशित 'जयबधन तक ही विचार हो
 सका । डा० भटनागर ने बडे परिश्रम क साथ उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व का

१७ हिन्दी-साहित्य का इतिहास (प० ५४२, पाचवाँ सस्क० स० २००६) ।

१८ जनेन्द्र और उनके उपन्यास रघुनाथसरन भालानी (प्रथम सस्करण
 १९५६) ।

१९ जनेन्द्र—साहित्य और समीक्षा रामरतन भटनागर (साहित्य प्रकाशन
 दिल्ली) ।

विवेचन किया है और उनके दृष्टिकोण में सत्र व्यापकता की ही प्रधानता रही है। जनेन्द्र की प्रतिभा के विभिन्न आयामों को उन्होंने सफलता के साथ दृढ़ बद्ध किया है। इस पुस्तक में जनेन्द्र के मनोविज्ञान और शली पर भी अलग अलग अध्याय हैं किंतु शली-सत्त्व के विवेचन में उन्होंने बड़ी सक्षिप्तता से काम लिया है। केवल साढ़े-तीन पन्नों में ही उन्होंने शली के प्रकरण को निबटा दिया है। मनोविज्ञान वाले अध्याय में भी वे अधिक विस्तार में नहीं गये हैं, फिर भी जनेन्द्र की औप-यासिक सभावनाओं पर अत्यंत ही स्वच्छ शली में उन्होंने सूत्र-बद्ध विचार प्रस्तुत किये हैं। आत्मा की जाती है कि अपनी पुस्तक के नये संस्करण में वे 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' पर भी अपना सुलभा हुआ मत प्रकट कर सकेंगे।

इसके बाद श्री सत्यप्रकाश मिलिंद के संपादन में 'जनेन्द्र' व्यक्तित्व और कृतित्व शोधक पुस्तक प्रकाशित हुई। यह पुस्तक कुछ-कुछ अभिनन्दन-ग्रन्थ की शली में सम्पादित की गयी है इसलिए इसमें आलोचनात्मक स्वर गौण हो गया है। इस पुस्तक में भी जनेन्द्र की प्रतिभा के विविध पक्षों का उद्घाटन है—यहीं गभीर रूप में, तो कहीं बचकाने ढंग से। इस पुस्तक में कुछ निबंध सस्मरण-आत्मक भी हैं और कुछ अत्यन्त सक्षेप में श्रद्धाजलि की टोन में लिखे गए हैं। श्री सत्यप्रकाश मिलिंद ने एक प्रकार से इस पुस्तक में जनेन्द्र के साहित्यिक प्रयत्नों का पत्रकारीय सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है, किन्तु स्वयं उनकी भूमिका बड़ी उच्चर है और उनका निबंध भी सस्मरण की सीमा से आगे नहीं बढ़ पाया है। गम्भीर काटि के लेख इस पुस्तक में कम ही हैं।

श्री बाकेबिहारी भटनागर ने साहित्यकार अभिनन्दन ग्रन्थमाला में 'जनेन्द्र' व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक शोधक से एक पुस्तक सम्पादित की है। इसका प्रकाशन काल जनवरी १९३५ है। यह पुस्तक तीन खण्डों में विभाजित है १ जीवन और व्यक्तित्व, २ मूल्यांकन ३ सृजन। इस पुस्तक में जनेन्द्र के उप-यासों पर डा० रामरतन भटनागर का एक सक्षिप्त-सा निबंध है, जिसमें केवल 'व्यक्ति' तक ही औप-यासिक विवेचना की गई है। यह निबंध भी एक प्रकार से परिचयात्मक सा ही है। अन्य निबंधों का सबंध जनेन्द्र की प्रतिभा के अन्य रूपों से है, किन्तु ये बहुत बखनदार निबंध नहीं हैं यहाँ तक कि स्वयं सम्पादक महोदय ने भी कोई विशेष सयोजकीय निबंध प्रस्तुत नहीं किया है। मिलिंदजी या भटनागरजी अपनी पुस्तकों के भूमिका रूप में यदि विस्तृत एक

समीक्षात्मक मनोवैज्ञानिक विचारों से था। तो पुस्तक का मुख्य बड़ मकसद था।

डॉ० देवराज उपाध्याय द्वारा विगिनत मन्दागम पुस्तक जनैत्र क उपचागा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन ' विषयगत' है। यह पुस्तक म एर विगिनत धाराधनात्मक निबन्ध है। मयप्रथम मनोवैज्ञानिक उपचागा की धारागा का गण्ट किया गया है और बनचागा गया है कि विगिनो उपचागा की मुमता म हिनी उपचागा म करा बनिया है। दुमर निबन्ध म जैत्र क उपचागा और उाक इच्छिबाल पर विचार किया गया है। तीमरे और चौथ निबन्ध में ममगा जैत्र क उपचागा की भागा और टेकनीक पर बन्त है। मुमम हुग विचार प्रस्तुत किए गए हैं। पाँचवें निबन्ध में जैत्र के कथा-माहित्य पर मन्दागमनिक इच्छि म विचार किया गया है और अन्तिम निबन्ध म विगिनार क माय जैत्र क उपचागा क मनोविज्ञान की बर्षा की गया है।

डा० उपाध्याय की अय पुस्तका की तरह ही दुम पुस्तक म भी जनैत्र क उपचागा का मनोवैज्ञानिक एक विव-मन्म म दगा-बग्गा गया है। उपाध्याय जी क विवधन की मबम बड़ी विगपता है उाका अग्रजी और मग्न-माहित्य का अगाय अध्ययन और उासे धानोर में जनैत्र की उपसथिया एक पुनताधों पर विचार करना।

उनकी धानाधना-धारी की मबम बड़ी विगपता है गगी जीवन्ता एक हास्य विनोप्रियता। हिनी और मनोविज्ञान के नेत्र म उनकी देन अग्रतिम है किन्तु उनकी मन्दागमधों का सर्वोत्तम रूप अभी प्रनीतिन है। डा० उपाध्याय जनैत्र क उपचागा म मग्न-बान के दान करते हैं किन्तु डा० गलेगन न धपनी पुस्तक हिनी उपचागा-माहित्य का अध्ययन" म हुग मायता का बहें विगिनार के माय प्रतिबान किया है और उनका निरूपण है कि जनैत्र क उपचागा म ऐम मग्न-बान का अध्ययन नहीं मिलता।

डा० देवराज उपाध्याय न ही अयन पाथ प्रबध (प्रवागन-बय १९५३) धाधुनिक हिनी-बधा माहित्य और मनोविज्ञान' में जनैत्र क उपचाग और मनोविज्ञान पर एक अध्याय प्रस्तुत किया है। इम पाथ प्रबध म स्थान-स्थान

- २१ जनैत्र क उपचागा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन डा० देवराज उपाध्याय पूर्वोक्त्य प्रवागन दिल्ली।
- २२ हिनी उपचाग-माहित्य का अध्ययन डा० गलेगन (प० ३०३ प्रथम संस्करण सन् १९६२ प्रवागन राजपान एण्ड मम दिल्ली)।
- २३ धाधुनिक हिनी कथा-माहित्य और मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय (साहित्य भवन इलाहाबाद द्वितीय संस्करण १९६३, यह पाथ प्रबध १९५४ में स्वीहित हुआ था।)

पर जनेद्र के उपन्यासों की ओर उनसे वसिष्ठ्य की चर्चा आयी है, किन्तु शली तत्त्व की दृष्टि से उन्होंने अधिक विचार नहीं किया है। नवीनतम पुस्तक 'जनेद्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' में भी उनकी भाषा शली पर केवल नौ-दस पृष्ठ लिखकर चलता कर दिया गया है, जो कि अपर्याप्त है। यों उनका शोध प्रबंध अत्यन्त विस्तृत एवं विचारोत्तेजनापूर्ण है और इससे भालोचकों को एक नयी दिशा भी प्राप्त होती है।

सन् १९६० में डा० सुपमा धवन ने अपने शोध प्रबंध 'हिन्दी उपन्यास' में मनोविरलेपणवादी उपन्यासों के अन्तर्गत जनेद्र की औपन्यासिक स्थिति पर बड़ा ही सुधरे रूप में विचार प्रस्तुत किये हैं। उनका यह विवेचन 'व्यतीत' तक ही हो पाया है, क्योंकि बाद के उपन्यास उनकी विवेचन की परिधि के बाहर थे। प्रत्येक उपन्यास का परिचय और उसकी मूल समस्या का विवेचन, उसकी उपलब्धियाँ एवं व्युत्पत्तियाँ—इस दृष्टि से इस शोध प्रबंध का विशेष महत्त्व है। शैली-तत्त्व की दृष्टि से केवल कुछ सन्त मिलते हैं, अधिक विवेचन नहीं।

सन् १९६२ में डा० गणेशान का शोध प्रबंध 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन' प्रकाशित हुआ, यद्यपि इसका लेखन और स्वीकृति-व्यय १९५८ है। इस प्रबंध में पाश्चात्य उपन्यासों के विरुद्ध परिप्रेक्ष्य में डा० गणेशान ने हिन्दी उपन्यास-साहित्य की मौलिक विवेचना की है। वे यद्यपि अहिन्दी भाषी हैं, फिर भी उनकी लेखन शैली कहीं भी केवल अंग्रेजी शब्दों को लेकर नहीं चलती, सभी पारिभाषिक शब्दों के उन्होंने उपयुक्त हिन्दी शब्दान्तर भी दिये हैं। उनके प्रबंध में एक अध्याय है 'उपन्यास में मनोविज्ञान'। इसी अध्याय के अन्तर्गत जनेद्र के उपन्यासों की चर्चा करते हुए उन्होंने डा० देवराज उपाध्याय की गैस्टाल्टवादी मान्यताओं का खंडन किया है। डा० गणेशान का पाश्चात्य उपन्यासों का अध्ययन अत्यन्त गहन है इसलिए उसके भालोक में सभी दृष्टियों से तुलना करते हुए उन्होंने हिन्दी उपन्यास-साहित्य की मौलिक विवेचना प्रस्तुत की है। कहीं-कहीं यह तुलनात्मक विवेचना पाश्चात्य उपन्यासों के गहन मान्तर में विलीन होती-सी प्रतीत होती है। इस प्रबंध में भी शली-तत्त्व की दृष्टि से विशेष विवेचन नहीं है, यद्यपि उसके संकेत यत्र-तत्र मिलते हैं। वचारिक दृष्टि से इस प्रबंध का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इससे हिन्दी उपन्यासालोचन के नये क्षितिज उद्घाटित होते हुए प्रतीत होते हैं।

डा० रणवीर राय का 'हिन्दी-उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास'

२४ हिन्दी-उपन्यास डा० सुपमा धवन (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ३१)।

२५ हिन्दी-उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास डॉ० रणवीर राय।

एक सुलभा हुआ शोध प्रबंध है। इसमें चरित्र चित्रण और उसके विकास की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास पर विचार किया गया है। इसी सदन में डा० राधा ने जनद्वज की विभिन्न पात्रों की चरित्र रेखाओं को प्रस्तुत किया है। चूंकि मनोविज्ञानपरक गलीतास्त्रिक अध्ययन उनके विषय की परिधि से बाहर था इसलिए इस सदन में कोई विचार नहीं हो सका है।

डा० सुरेश सिन्हा ने 'हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिवर्तना' विषय पर अपना ग्राह्य प्रबंध प्रस्तुत किया है। इसमें केवल जनद्वज की औपचारिक नायिकाओं पर ही विचार है। इसी प्रकार डा० प्रतापनारायण टण्डन ने हिन्दी उपन्यास का विकास और नतिक्ता डा० श्रीगारायण अग्निहोत्री ने हिन्दी उपन्यास-साहित्य का 'गास्त्रीय विवेचन' डा० इन्द्रा जाग ने 'हिन्दी-उपन्यासों में लोक-तत्त्व', डा० प्रेम भटनागर ने हिन्दी-उपन्यास बल्लभ परिप्रेक्ष्य आदि विषयों पर अपने अपने ग्राह्य प्रबंध प्रस्तुत किए हैं। इन सभी प्रबंधों में अपनी अपनी दृष्टि से जनद्वज के उपन्यासों पर विचार किया गया है, किन्तु अपनी सीमित परिधि के कारण इनमें मनोविज्ञानपरक गलीतास्त्रिक पर कोई विचार नहीं हो सका है, अथवा यत्र-तत्र कुछ संकेत एवं टिप्पणियाँ ही लिख दी गई हैं।

उपाधिपरक ग्राह्य प्रबंधों के अतिरिक्त भी हिन्दी उपन्यास पर विवेचना हुई है। इस प्रकार के ग्रंथों में डा० सुरेश सिन्हा द्वारा लिखित हिन्दी-उपन्यास उद्भव और विकास डा० मकगनलाल गर्मा द्वारा लिखित हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा महेंद्र चतुर्वेदी द्वारा लिखित हिन्दी उपन्यास एक सर्वभरण डा० प्रतापनारायण टण्डन प्रणीत हिन्दी-उपन्यास उद्भव और विकास आदि दजना ऐसे ग्रंथ बाजार में मुलभ हैं जो कि उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों की आवश्यकता-पूर्ति के प्रयत्न मात्र हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी उपन्यास पर तीन दिशा प्रेरक आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। एक है नमिचंद्र जन द्वारा लिखित अपूर्व साक्षात्कार दूसरा है, डा० इन्द्रनाथ मदान द्वारा लिखित आज का हिन्दी उपन्यास और तीसरा है डा० रामचंद्र मिश्र द्वारा लिखित हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यामी। अपूर्व साक्षात्कार में चर्च के बहुचर्चित उपन्यासों की मूलखण्डों की दृष्टि से मौलिक विवेचना की गयी है। जनद्वज के जयवधन पर भी इस पुस्तक में एक निबंध है। इनका निष्कर्ष है 'मानवीय अनुभूति की क्षीणता के कारण जयवधन अपनी सभावनाओं को साकार नहीं कर सका—अज्ञानावृत्ति के रूप में जयवधन अतंत ऐना भरस्यल है जिसमें भाव और विचार की आवश्यक और सभावनापूर्ण धाराएँ क्रमशः सीमाहीन बालू में लुप्त होकर मरी

चिका मात्र रह जाती है।" इस पुस्तक में एक अध्याय है 'रूप, शिष्य और भाषा', इस अध्याय में लेखक ने बहुत ही संक्षेप में भाषा के अन्तर्गत शली-तत्त्व पर भी विचार किया है। दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक है 'आज का हिन्दी-उपन्यास' जिसमें प्रेमचन्द के 'गोदान' से लगाकर निमल वर्मा के 'वे दिन तब एक नयी दृष्टि से विचार किया गया है। इस पुस्तक में जननन्द के 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' पर लेखक ने इन उपन्यासों की राह से ही गुजरने का प्रयास किया है। लेखक का निष्पक्ष इस प्रकार है इनकी राह से गुजरने पर मुझे यह भी लगा है कि हिन्दी-उपन्यास को अभी तक अपना मुहावरा ही नहीं मिल सका है। इतना कहा जा सकता है कि हिन्दी-उपन्यास अपने मुहावरे की खोज में सतन्म अवश्य है।" मनोविज्ञानपरक शली-तत्त्व की दृष्टि से इस पुस्तक में भी विवेचना नहीं के बराबर है। रामदरस मिश्र की पुस्तक 'सर्वेक्षण-माला' के अन्तर्गत प्रस्तुत की गयी है। उन्होंने अपनी पुस्तक में विभिन्न उपन्यासकारों के प्रतिनिधि उपन्यासों की चर्चा की है। जनेन्द्र के कबल दो उपन्यासों 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' की ही विवेचना की गयी है। शली-तत्त्व पर विशेष चर्चा नहीं है हा, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रवृत्तियों पर संक्षिप्त एवं सारगर्भ विवेचन अवश्य है।

शिवदानसिंह चौहान द्वारा लिखित 'हिन्दी-साहित्य के अस्सी वर्ष - में भी जनेन्द्र के उपन्यासों का प्रगतिशील दृष्टिकोण से संक्षिप्त विवेचन मिलता है। डा० भोलानाथ के 'हिन्दी साहित्य' (१९२६ स. ४७) में भी जनेन्द्र के उपन्यासों का उल्लेख आया है। इसी प्रकार डा० रामगोपालसिंह चौहान के 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य' (१९४७ से १९६२) में भी जनेन्द्र के परवर्ती उपन्यासों पर परिचयात्मक ढंग से विचार किया गया है। डा० गणपतिचन्द्रगुप्त के 'हिन्दी साहित्य का वनानिक इतिहास' में भी जनेन्द्र के उपन्यासों की संक्षिप्त आलोचना मिलती है। अन्य इतिहास-ग्रन्थों एवं पत्रिकाओं में भी जनेन्द्र के उपन्यासों के उल्लेख मिलते हैं किन्तु मनोविज्ञानपरक शली-तत्त्व दृष्टिकोण से कहीं भी व्यवस्थित विचार नहीं हुआ है। सन् १९६५-६६ में प्रसिद्ध त्रमासिक 'पत्रिका आलोचना' का 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य विशेषांक' श्री शिवदानसिंह चौहान

- २६। अधूरे साक्षात्कार नेमिचन्द्र जन, पृ० १०५।
 २७। आज का हिन्दी-उपन्यास डा० इन्द्रनाथ मदान, ('अपनी बात' में स-
 प्रथम संस्करण १९६६)।
 २८। हिन्दी-उपन्यास एक अन्तर्दृष्टि डा० रामदरस मिश्र, (राजकृष्ण
 प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण १९६८)।

के सम्मानकत्व में पाच शृणों में निवृत्ता । यह एक विज्ञान एवं योजनोद्देश्य प्रयत्न था । इसके दूसरे शृण में उपयाम की विधा पर डा० मुन्टर निबन्ध प्रकाशित हुए हैं डा० रामगोपालमिह चौहान का 'स्वानुमानर हिन्दी कथा-साहित्य' शीपक व अन्तगत 'जीवन-संघास और युग व केन्द्रीय प्रश्नों का स्थापन' और डा० रणवीर राधा का 'हिन्दी-उपन्यास और स्वप्न विश्लेषण' । 'पुनर्मुन्यावन' व अन्तगत डा० गायानराय न मुन्टा की व्यवस्थित आलाचना की है । पहले निबन्ध में 'सुखदा' की चर्चा आयी है दूसरे निबन्ध में प्रथमगत शृण में 'कन्याश्री' और मुन्टा का विश्लेषण दगाया गया है । डा० गायानराय न अपने निबन्ध में विषय-भेद गिल्पविधान और भाषा की दृष्टि में मुन्टा पर विचार किया है । इसमें भाषा-शैली के संबंध में केवल एक मतिपत्र अनुच्छेद मिलता है । उनका निष्पन्न द्रष्टव्य है 'जनद्र की भाषा की यह विशेषता इतना प्रायामित है कि यह कहीं-कहीं अभिव्यक्ति की विलक्षणता मात्र प्रतीत होती है पर मूलम अवनाचन में स्पष्ट है कि जनद्र की भाषा मस्तिष्क की भाषा है जो उपचास व विषय व संवधा अनुकूल है । भावानुष्पता मस्तिष्कता सगीकता नाटकायना और अयगमत्व की दृष्टि में 'मुन्टा की भाषा सराहनीय है ।'

डा० दवीगकर अवस्थी द्वारा संपादित विवेक व रग' में जयवधन पर यशपाल का सुचिन्तित एवं विस्तृत निबन्ध है 'पकड के बाहर का संघास । यशपाल न प्रस्तुत निबन्ध में 'जयवधन' 'पयाम की वैचारिक रमाशों का स्पष्ट करते हुए कुछ निष्पन्न निकाल हैं जो इस प्रकार हैं

१ 'जयवधन' की कहानी पाठक का विश्वास पान योग्य नहीं बनी । पहला कारण तो उसमें पृष्ठभूमि का नितान्त कमी है । वह वार्तालापों की शायरी मात्र है । (वात्तानास विश्वासयोग्य राचक कहानी नहीं बना सकत ऐसा नहीं कहा जा सकता है ।)

२ कहानी में विश्वास और राचकता उत्पन्न न कर सकन का कारण पात्रों का निर्बाँव और प्राय एक सा जाना है ।

३ जयवधन पढ़ने के श्रम का उसकी भाषा और भी कठिन कर देता है । भाषा नामात्रिक अभिव्यक्ति का साधन है । उसे मुलम और सुवाच बनाय रखने व कारण हा व्याकरण की आवश्यकता हुई है । भाषा व अय प्रयोगों और नियमों की अवहलना यह और चरति की उच्च सतता-मात्र है । यदि नागरिकता के साधारण नियमों—'दाहरणत मडक पर चलने के नियमों का

पालन सामाजिकता के नाते आवश्यक है, तो भाषा के नियमों की ही अव-
हेलना क्यों की जाय ?^१

। इधर विश्वविद्यालयों में जैनेन्द्र के उपयासों पर लघु प्रबन्ध के रूप में पुन
कुछ प्रयास हुए हैं। इन पत्रिका के लेखकों के निर्देशन में रमेशचन्द्र मिश्र ने
'जैनेन्द्र के श्रौच-यासिक नारी-यासों का मध्यवर्गीय महिला जीवन पर प्रभाव'
विषय पर अपना लघु प्रबन्ध इसी वर्ष प्रस्तुत किया है। इस लघु प्रबन्ध में गहरी
ग्रन्तदृष्टि के साथ जैनेन्द्र के उपन्यासों का मध्यवर्गीय महिलाओं पर जो प्रभाव
पड़ा है उसका सर्वोत्तम किया गया है। शली-तात्त्विक अध्ययन इस प्रबन्ध की
परिधि से परे रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इसी अनजानी एवं अछूती दिशा की ओर बढ़ने का
मैंने एक प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से न केवल भारतीय भाषाओं के धरातल
पर बल्कि विश्व साहित्य में केवल फ्रेंच उपन्यासों का एकाकी अध्ययन ही
सुलभ है। फ्रेंच उपन्यासों से भारतीय पाठक एवं विद्वान् अधिक परिचित
नहीं हैं इसलिए इस दिशा में जो कार्य हुआ है वह हमारे लिए अधिक सहा-
यक सिद्ध न हो सका।

५ इस अध्ययन की अपर्याप्तताओं पर प्रकाश तथा

इस अनुसंधान का महत्त्व

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में जनद्र के उपन्यासों के मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक
अध्ययन की रेखाएँ सुस्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है। स्वाभाविक ही है कि
इस प्रकार के अध्ययन में जनेन्द्र के उपन्यासों की अग्र विशेषताओं एवं यून-
ताया पर प्रकाश नहीं डाला जा सका। हमारे वाय का पथ सकीर्ण है और
हम एक सुनिश्चित पथ से ही, शोध प्रक्रिया के माध्यम से, कुछ निष्कर्ष निकाल
सके हैं। ऐसी स्थिति में जनेन्द्र के उपन्यासों की वचिश्यमयी भूमिमात्रा की
ओर हम दृष्टिपात नहीं कर सकते, यद्यपि अध्ययन की इस प्रक्रिया में मन
अनेक बार उन समस्याओं की ओर भी उन्मुख हुआ है, किन्तु हमने प्रयत्नपूर्वक
अपनी सुनिश्चित दिशा की ओर ही अपने चिन्तन को क्रियाशील रखा है।

किसी भी उपन्यासकार का मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक अध्ययन इस
दृष्टि से किया जाता है कि उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम से उसकी मानसिक
प्रवृत्तियों तक हम पहुँच सकें और यह पता लगाने की चेष्टा करें कि उस लेखक

के क्रिया-कलाप का अंतिम प्रयोजन या हतु नया है। विचार-तत्त्व और शैली एक-दूसरे में अविच्छिन्न रूप में जुड़े हैं। गद्य में जम अथ मरा रहता है वस ही शैली के परिधान में उसके विधाता का मूल आशय निहित रहता है। गद्य और अथ आत्मा एवं शरीर की ही तरह अविभाज्य हैं। इसी प्रकार जब हम किसी लेखक का शैलीनात्विक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं तो उसके मनोविज्ञान का समझने में भी धेरी मुविषा रहती है। किसी भी उपयामकार की शैली में उसकी मानसिक प्रवृत्तियाँ व मूल विचारों का सघन क्रिया जा सकता है। जब वपन न शैली ही व्यक्तित्व है कहा था तो उसका यही अभिप्राय था कि हम लेखक की शैली में उसमें व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब देखें। इस दृष्टि में हमारे साहित्यकारों के चरित्र पर विचार करने की मन्ती प्रावश्यकता है, क्योंकि इसमें नया-नयी शिगाद्या का उभाचन हागा और हम उनकी साहित्यिक मृष्टि का अर्ध्दी तरह हृदयगम कर सकेंगे। जिस प्रकार मृष्टि में हम किसी अद्भुत शक्ति का अप्रत्यक्ष हाय देखते हैं, उसी प्रकार किसी रचनाकार की शैली से हम उसके व्यक्तित्व की रेखाओं को उसके स्वभाव और सत्कारों को तथा रचना के प्रयोजन को मलीमांति समझ सकते हैं।

मनाविज्ञानपरक शैलीनात्विक अध्ययन शाध-काय की एक नयी शिगा है। मलिन इसमें जोखिम भी बहुत है। अपने पय का स्वयं निर्माण करना होता है। और कभी-कभी तो इस नयी दिशा की पथरीली चट्टान पर चितन की धारा को काफ़ी ऊँचे से छोड़ना होता है ताकि शोध क्रिया की ऊर्जा उत्पन्न हो सके। प्रस्तुत शाध प्रबन्ध में जनद्र से शैली-तत्त्व के माध्यम से ही उनमें मनाविज्ञान का शब्द करने की चेष्टा की गयी है। यदि नय गाधवता इस दिशा की श्रा उमुख है तो व विभिन्न कविता, कहानीकारों उपयामकारों एवं नाटककारों का शैलीनात्विक अध्ययन प्रस्तुत कर सकते हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० सत्यद्र न मनोविज्ञानपरक शैलीनात्विक अध्ययन का एक गाध-परियोजना के रूप में परिवर्णित किया इसी योजना का यह प्रबन्ध प्रथम पुष्प है।

शागा की जाती है कि इस शिगा में आग बकर सबप्रथम हिन्दी के इती उपयामकारों का शैलीनात्विक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकेगा।

जैनेन्द्र के उपन्यास एक सर्वेक्षण

१ परख (१९२६)

परख हिन्दो का पहला मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। कट्टो सत्यघन विहारी, गरिमा आदि प्रधान पात्रों के मानस की गहराई में पँठन पर हम वहाँ एक सघन दृष्टिगत होता है। यह सघन हृदय और बुद्धि का है। हृदय यहाँ व्यक्ति स्वातंत्र्य का तथा बुद्धि सामाजिक रूढ़ियों की प्रतीक है। सत्यघन एक आदर्शवादी युवक है। कालत उसने पास करली है लेकिन शुरू नहाँ की क्योंकि उसके विचार में कालत में देश के सत्यानास के अलावा कुछ भी घरा नहीं है। नगर के कोलाहल से दूर गाँव में वह एक सीधी सादी सभ्यता के व्यर्थ आडम्बर से अदृशी गवई किशोरी की प्रतिमा को अपने मानस में प्रतिष्ठित कर लेता है। तभी एक दिन विहारी अपनी बहिन गरिमा के विवाह की बात निश्चित करने में पहुँचता है। बुद्धि का एक भँटका लगने पर सत्यघन गरिमा से विवाह करने का सहमत हो जाता है उधर सत्यघन की प्रेरणा में विहारी व कट्टो विवाह-सूत्र में बंध जाते हैं। यह परिणाम दृष्टि न होकर आत्मिक है। जिस कट्टो को उसने अपने ही हाथ से दूर फेंक दिया था उसके महान त्याग का अनुभव (४० हजार के नोट हाथ में देना) उसके मन को कवाटने लगता है। विहारी और कट्टो भी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। विहारी एक वृषक का जीवन व्यतीत करने किसी गाँव को प्रस्थान कर जाता है। कट्टो अपने गाँव जाकर बच्चियों को पढ़ाने का काम सम्हाल लेती है।

परख की कथा क्रमिक एवं सुसंगठित है। कट्टो से लेखक की आत्मिक

जिज्ञासा को तृप्ति मिलती है। सत्यधन व्यावहारिक जगत की यथायता को प्रतिबिम्बित करता है। सत्यधन की दुबलता कटटो के चरित्र का और निखार देनी है। इसके विपरीत बिहारी जो कि नायक नहीं है अपन जीवन म सिद्धाता की इत्ता लिए हुए है। कटटो और बिहारी के परिणय म लेखक ने एक नवीन भावना नूतन आदश प्रस्तुत किया है। भौतिकता को भेदकर आत्मिकता की गहराई म पँठकर परख के सप्या ने जिस का निरूपण किया है उसके साथ सौन्दय और मगल स्वत खिच आए है। दोना म अपन स्व का दान ही है सेवन कुछ नहीं।

२ सुनीता (१९३५)

जनेद्र के प्रथम उपयास परख म पात्रा के मानसिक विश्लेषण का प्राधाय होने पर भी औपयासिक तत्वा की अवहेलना नहीं की गई परन्तु सुनीता म मनोविश्लेषण को ही अधिक महत्व देकर लेखक दाशनिक बन बठा है। सिद्धात-स्थापन के मोह मे पडकर उसने पात्रा को कठपुनलिया की भाति नचाया है। इस उपयास का केन्द्र हरिप्रसन्न है उसी को लेकर सब घटनाए घटती हैं। वह एक क्रांतिकारी है जो अपन मित्र श्रीकान्त के आमन्त्रण पर उनकी गृहस्थी मे जाकर रहने लगता है। यही निरूपम रूपसी सुनीता से उसका परिचय प्रगाढता म परिणत हो जाता है। इसी बीच श्रीकान्त कायवश कही बाहर चला जाता है तब हरिप्रसन्न सुनीता का अद्वरानि के समय अपने दलवाला के सानिध्य म ले जाने का उपक्रम करता है जिससे कि वे उससे नत्री के रूप म प्रेरणा ले सक। ऐसे समय हरि का दमित काम अनायास ही फूट पडता है। वह अपने कतव्य को भूलकर सुनीता को समूची पा लना चाहता है। सुनीता क निवसन सौन्दय दशन स हरि की दमित वासना गात हाती है और वह सुनीता को उसके घर पहुचाकर सदा के लिए पलायन कर जाता है। सुनीता जिसन पति के आग्रह से हरि की इच्छा के सम्मुख आत्म-समपण किया था, पूववत् पति के प्रेम की पात्री बनी रहती है।

सुनीता म जनेद्र का लक्ष्य कहानी कहना नहीं है अत पात्र भी कम हैं सुनीता हरिप्रसन्न और श्रीकान्त। इसम कथा के सहज विकास का उतना ध्यान नहीं रखा गया जिनना पात्रा के मानसिक विश्लेषण का। हरिप्रसन्न को हम एक साथ ही शिल्पी, कलाकार दाशनिक और क्रांतिकारी के रूप म पाते हैं किन्तु उसकी वास्तविक आकाशा का पता अन्न तक नहा चलता। क्रातिवारी हरिप्रसन्न और उसके दल का उल्लेख होने पर भी उनके क्रिया-कलाप की कोई स्पष्ट रूपरेखा उपयास म नहीं है। रवि बाबू के धरे-बादरे के सदीप

तथा हरिप्रसन्न का लक्ष्य एक ही है—एक ओर देश और दूसरी तरफ पराई स्त्री का प्रेम, परन्तु दोनों के बाय और माग भिन्न हैं। सदीप शक्तिशाली खलनायक है पर हरिप्रसन्न में शक्ति का स्फुरण नहीं है। भारतीय सभ्यता एक सस्कृति में जनेद्र ने ही इस प्रकार का यह पहला उदाहरण प्रस्तुत किया है, जहाँ एक मित्र ने दूसरे मित्र के जीवन को सहज करने के लिए अपनी स्त्री को साधन बनाया हो। सुनीता की दृष्टि पति पर बराबर है, परन्तु प्रेमी पर नहीं है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। इससे विपरीत घरे-बाहरे की विमला सदीप से हटकर अपने पति निखिलेश के प्रति एकनिष्ठ हो जाती है। परन्तु सुनीता हरिप्रसन्न की काम हिंसा को शांत करने की चेष्टा जी जान से करती है।

श्री नन्ददुलारे बाजपेयी के मत में सुनीता और हरिप्रसन्न का व्यवहार कृत्रिम भाव प्रवणता के माध्यम से वासना का उद्ग्रेक करता है जो उपयास की भूमिका के वक्तव्य के प्रति स्वयं एक चुनौती है। पात्रों की मानसिक विकृतियाँ पर आध्यात्मिकता का आवरण चढ़ाया गया है। सुनीता के पात्रों की असाधारणता केवल एक आवरण के कारण है वह आवरण है एक अस्पष्ट भावात्मकता और गोपनीयता का। मैं उसे सच्चा आदर्शवाद नहीं कह सकता।^१

जनेद्र के अपने शब्दों में 'निस्सदेह, जो 'घर और बाहर' में है, वही सुनीता में भी है।—वही समस्या है। अनजाने ऐसा नहीं हो गया है जान बूझकर ऐसा हुआ है। किन्तु घर और बाहर की समस्या तभी तो बनी जब कि वह जगत की समस्या है। उसे उस रूप में रवि बाबू से पहले भी लिया गया। उन्होंने भी लिया है और पीछे भी लेंगे। घर को बाहर के प्रति निरभिलाषी एक विमुख हाँकर ही अपने को निष्पक्ष करना होगा। पर मेरे मन को समाधान नहीं मिला। मैंने 'सुनीता' में अपनी बुद्धि के अनुसार दुस्साहस पूर्वक भी समस्या को टेलकर आगे बढ़ाया है। असल में घर और बाहर में परस्पर सम्मुखता ही मैं देखता हूँ।^२

नरोत्तम नागर 'शुतुरमुग पुराण' लिखकर यह दिखाते हैं कि दमित इच्छाओं का विस्फोट ऐसी ही कृत्रिम प्रणालियों से होता है जिन्हें जनेद्र जी रहस्यात्मक रूप देकर छिपाना चाहते हैं। वास्तव में उपयास की मूल

१ हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ० १६१-६२ प्रथम संस्करण हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

२ साहित्य का श्रेय और प्रेय पृ० ११३, ११४, ११५, ११६ द्वितीय आवृत्ति १९६१।

समस्या स्वच्छ प्रेम और विवाह व्यक्ति एवं समाज के सघप की है। उसमें ममभौत का संगीत नहीं विद्रोह का व्यंग है। सुनीता' में नरक न नारी के तन-मन के द्वन्द्व का प्रमूढ क्रिया है विवाह-बंधन के मातृ रहकर नारी क्या अपनी प्रेममयी मूल प्रकृति का कुण्डल नहीं कर रही है? उप-यास में सामाजिक प्रतिबंधों के साथ ही नारी-नर के सहज आकर्षण का भी निखान का प्रयत्न किया गया है। मनाता के लिए घर भी महत्व रखता है और बाहर भी पति भी और प्रेमी भी। इस प्रकार प्रेम के रूप में व्यक्ति और विवाह के रूप में समाज के सघप की समस्या का उठाकर बिना स्पष्ट समाधान के उस वही छाड़ दिया गया है।

३ त्यागपत्र (१९३७)

'त्यागपत्र' एक नारी के अतृप्त जीवन की कथा कहाना है जो सम्भवतः एक सच्ची घटना के आधार पर लिखी गई है। इस उप-यास के प्रधान पात्र हैं प्रमाद और उनकी बुद्धि मणाल। वास्तव में प्रमाद तो एक हृष्टा व कथाकार है जो अपनी बुद्धि मणाल की जीवन-कहानी कहता है। मणाल बचपन में ही माता पिता में वंचित होकर अपने भाई के संरक्षण में रहने लगी है परन्तु भाभी के कठोर एवं कड़े अनुशासन के सम्मुख वह प्रसन्नचित्त व हसमुख बालिका अपने आप में मिमटी सी सहमा-सी रहती है। उस सहज स्नेह की भन्क अपने भतीजे प्रमाद में मिलती है वह उसके सुख-दुःख का साथी है उसी के साथ वह अपने जी की बातें कह पाती है। अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने के समय उसने अपनी सहली नीला के भाई में प्रेम हो जाता है इस प्रेम की टोह लगन ही उसकी भाभी उस निष्ठापूर्वक पीटती है और फिर एक वृद्ध व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दिया जाता है। जीवन का प्रकृत उमंग का स्वाद रखने एवं उनकी सहज अभिव्यक्ति न कर पाने से उसका जीवन अतिशय दुःखमय हो जाता है। स्वभाव से सरल हान के कारण वह एक दिन अपने प्रेमी के एक पत्र का उल्लेख पति में कर देती है जिससे वह अत्यधिक विस्मयित हो जाता है और चरित्रहानता का आरोप लगाकर उस घर से बाहर निकाल देता है। एमी म्युनि में वह एक कोयल के व्यापारी के चंगुल में फँस जाता है पर कुछ समय बाद वह भी उसे छोड़ देता है। तब उस आश्रय मिलता है निम्नतम स्तर के लोगों के बीच जहाँ उसे घातक रोग जकड़ लेता है। उसकी एना हा शारीरिक अवस्था में उसके पास आ पहुँचता है उसका भतीजा प्रमाद जो उस अपने घर में चले जाने का आग्रह करता है। लेकिन मणाल उमक पास न जाकर उमक बहू-सा धनराशि का महामता चाहती है जिसके द्वारा अपने आस-पास के

पतित लोगों का कुछ उद्धार कर सके। वह गुम्रा की कुछ सहायता तो करता है, लेकिन फिर अपने व्यवसाय के चक्कर में पड़कर उसकी कभी खोज-खबर नहीं लेता। इन्हीं परिस्थितियों में मणाल का देहावसान हो जाता है और तब प्रमोद आत्मग्लानि से आक्रान्त हो जजी से त्यागपत्र द देता है।

उपन्यास की सभी घटनाएँ मणाल के जीवन के इन्हीं गिद घूमती हैं। वह एक अतृप्त और अभुक्त वासना लिए हुए है, जो उसके जीवन में एक अद्भुत गति एवं शक्ति का संचार करती है। बूढ़े पति और कोयले वाले से उसका समझौता जीवन पर एक तीखा व्यंग है। जनेन्द्र का जीवन-दर्शन गांधी नीति में परिलम्बित होता है। मनोविश्लेषण की शब्दावली में यह आत्मपीडन है। सचमुच जो शास्त्र में नहीं मिलता वह ज्ञान आत्मव्यथा में से मिल जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में आत्म व्यथा में जीवन की शक्ति का मूल स्रोत माना गया है। कष्ट में आनन्द की भावना पाना अहिंसा है। अनिच्छा से विवाह होने पर पति की दासी बने रहना अहिंसावाद या गांधीवाद का दूषित रूप है। श्री नन्द दुलारे वाजपेयी के मतानुसार उपन्यास का दोष मणाल के चरित्र की अति रजना और अस्पष्टता है।

'त्यागपत्र' की शली में यज्ञता और तीखापन है जो कभी कभी असह्य हो जाता है। मणाल का कोयले वाले के साथ भाग जाना खटकता है और अस्वाभाविक जान पड़ता है। मणाल में असाधारणता है। डा० नगेन्द्र की दृष्टि में जनेन्द्र की गैली सचेत है जागरूक है। सर एम० दयाल का जजी से त्यागपत्र उपन्यास शिल्पी का अद्भुत कौशल है। वास्तव में त्यागपत्र एक भयानक और हृदय को त्रस्त कर देने वाली जीवन की दुखान्त विभीषिका के रूप में उपस्थित किया गया है। उसके चरित्र की मूल भावना उसके अपने गल्ल में मिल जाती है मैं समाज को तोड़ना फोड़ना नहीं चाहती हूँ। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में स्वयं ही टूटती रहूँ।

यह सामाजिक विधान पर तीखा व्यंग तो है पर इससे व्यक्तिगत कुण्ठा का समाधान नहीं होता। मणाल और प्रमोद की अभावता खोज और निराशा, हताश मन स्थिति की उपज और ह्लासो-मुख सञ्चति की दन है। मानसिक रोग अम्बस्या तथा विकृत समाज का वरदान है। इसकी भावी प्रस्तुत उपन्यास में मिलती है। यह मध्यवर्गीय सामाजिक समस्या के आधार पर खड़ा किया गया है जिसमें व्यक्ति पाश्चात्य गिना के प्रभाव के कारण प्रेम की चरम परिणति विवाह में देखना चाहता है परन्तु समाज उसके इस अहिंसावाद के

माम म बराबर बाधा ही उपस्थित करता है। विषम विवाह घबरा विषम प्रेम उपयाम की मूम गमम्पा है।

४ कल्याणी (१९३९)

कल्याणी की कहानी म परिस्थितिया व बाधन म जकड़ो हुई एक नारी का करण प्रान्त मुनाई दता है। कल्याणी घमरानी डाक्टरनी है तथा उनके पति मि० घमरानी डाक्टर हैं। कल्याणी का उद्धार मन इच्छा के बाधन म न बाधकर शुन वानावरण म पनपना चाहना है। डाक्टर घमरानी म इच्छानी सम्कार बना इत्ता म जड जमाय हुए हैं। वह चाहता है कि श्रीमती घमरानी धारण शृष्टिणा बने कल्याणी स्वय भी शृष्टरमी बन कर रहना चाहता है, परन्तु शृष्टमी की धारिया स्थिति उनम परिश्रम की धारणा करती है। उनकी समस्या यह है कि उनका विवाह और शक्तिरी पनात्व एव निजत्व परम्पर कम निभे डाक्टरों के गिनमिते म उह अछे-बुर मउ प्रकार क माता क सम्पक म धाना हाता है। डा० घमरानी पत्नी क प्रति बड मजक एव मन्ह पीड रहत है। एक आ वार कल्याणा पर दुःखरिचना का धारण उगाकर वह उन्हें निःश्यापूवक पात भी है किन्तु विवाह म बाधकर उमका मर्यादा का मानकर चनन क प्रयत्न म कल्याणी पति क निमम अत्याचार का प्रतिवाद न करती हुई, मूक भाव म सब सहन कर रनी है। पति उह घर की धारिक सम्पन्नता का साधन बनाए रखना चाहत है। पर मायहा उनका स्वतंत्र धारण उहें सहन नहा है। पति की इच्छा क सम्पुग धपन निजत्व का बरवम श्वाय रखन क प्रयत्न न उनके जीवन का अनिष्टाय उन्ममय बना दिया है। धपन जीवन क समस्त असन्ताप वना एव सन्ताप को लिए वह सना क लिए मूक हा जाना है।

प्रस्तुत उपयाम म जनद्र आधुनिक नारी की समस्या का लकर चन है। कल्याणी विनायत म शक्तिरी पाम करव आती है और पति क माय रहकर डाक्टरा करती है। उमके सम्मुख एक और विनायती बभब विनाम और शिशा ससृति की नौनिक चकाचौध है और दूसरी और भारतीय गृहमी का प्राचीन प्राण्य। इन गता विराधी आदनों की विषमता क मघष म विमन हुए वह स्वय समाप्त हा जाती है। कल्याणी क जीवन की समस्या उनक धपन गन्ता म मिन जाना है विवाह स पहन में शुन थी। विवाह विना में गृह मवता थी। मरा बाक मुभम उठ मकता था। विवाह स स्त्री पत्नी बनती है। पत्नी यानी शृष्टिणी। पत्नी स पहन स्त्री कुद्य नहीं हाता बस वह कया हाती है। पर में कुद्य थी। निरी कया न थी शक्तिरी थी। अब सवान है मरी गादा और मरी

डाक्टरों, मरा पत्नीत्व और निजत्व ये परस्पर कैसे निभें ?' इससे स्पष्ट है कि उसका व्यक्तित्व दुविधाग्रस्त है और उमका चरित्र अस्पष्ट है।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है 'जनेन्द्र अपने पात्रों का सुस्पष्ट व्यक्तित्व नहीं देते, न उनके जीवन के सुख दुःख को सुलभे हुए रूप में हमारे सामने रखते हैं। इससे होता यह है कि उनके पात्र एक बड़ी हृदय तक रहस्यवादी बने रहते हैं। पात्रों का व्यक्तित्व और उनकी समस्या ही ठीक तरह से समझ में नहीं आती। यह अस्पष्टता जो तो उनके प्रायः सभी उपन्यासों में है पर 'व्यापन्न और बल्याणी' में इतनी बड़ी हुई है कि पाठक किसी निष्णय पर पहुँच ही नहीं पाता।'

५ सुखदा (१९५२)

'सुखदा' में क्रांति की कथा वर्णित हुई है परन्तु यह सच है कि उसमें क्रांति का गौरव प्रबल नहीं हुआ है। सुखदा एक सम्पन्न घराने की लड़की में पली लड़की है। उसका विवाह उसके माता पिता के स्तर से थोड़ा उतरकर एक सहृदय व्यक्ति से होता है। आर्थिक दृष्टिकोण के वषय के कारण पति पत्नी में मनोमालिन्य बढ़ने लगता है। सुखदा का नौकर गंगासिंह एक दिन काम छोड़कर चला जाता है और उसके दूसरे-तीसरे दिन वह पत्रों में उसके चित्र देखती है कि वह एक क्रांतिकारी है और गिरफ्तार कर लिया गया है। उसके कारण देश में एक बिजली दौड़ जाती है। सुखदा का जीवन भी सहमा एक नई दिशा पकड़ लेता है और वह क्रांति की ओर मुड़ पड़ती है। पति के प्रति विवृण होकर वह सावजनिक जीवन में प्रविष्ट होती है जहाँ वह हरीश के सम्पर्क में आती है जो उसका मन में यह भावना उत्पन्न करता है कि नारी एक शक्ति है और देशाद्वार के लिए उसका सहयोग अनिवार्य है। इसी सिलसिले में वह हरीश के साथी लाल के सम्पर्क में भी आती है जो उसके सौंदर्य के प्रति आकर्षित है, किन्तु उसके सबध में बलवालों की अचढ़ी धारणा नहीं है। सुखदा लाल के प्रेम में विभोर हो उठती है परन्तु वह उसे छोड़कर चला जाता है। इसी बीच हरीश दल भंग करने का निश्चय करते हैं—कारण है गांधीवाद। हरीश अपने मित्र कात् को, जो कि सुखदा का पति भी है प्रेरित करते हैं कि वह उन्हें गिरफ्तार करवा के पुलिस से ५००० रुपये का इनाम ले ले। कात् यत्रचालित-सा ऐसा करके रुपए लाकर सुखदा को दे देते हैं। पति के इस व्यवहार से सुखदा के मन को इतना भयकर आघात पहुँचता है कि वह

उहे छाडकर अपनी मा के पास चली जाती है और फिर धयग्रस्त हाकर अस्पताल म पहुच जाती है ।

इस प्रकार 'सुखदा का समस्त वातावरण नराश्य और कुटा की भावनाआ स आनात है । यथाय स यह बहुत दूर है—सामाजिक यथाय स भी और वयक्तिक यथाय से भी क्योकि न यह भमाज क प्रति सच्चा है न व्यक्ति क प्रति । जीवन कही उसम है ही नही । जनेद्र की रचनाआ म अन्तजगत की क्या है । सुखदा की अतृप्ति और लालसा ने ही उसके सभी कायों की गति को निर्दिष्ट किया है । इस प्रकार वह भाव-जगत् की नायिका है कमजगत् की नही । पात्रा की दृष्टि स यह उपयास निष्फल है । इन पात्रा का स्वतंत्र अस्तित्व है ही नही व तो कवन अपने नियन्ता के निर्णय म परिचालित होत हैं । इस उपयास के पास न केवल विलक्षण हैं वरन् वे जीवित हाड मास के ही नही हैं । वे केवल अमृत विचार हैं जिनके आधार पर कुछ घटनाआ को खडा कर लिया गया है । नराश्य के इन पुजारिया व सम्मुख अधकार है निविड अधकार ! पर अधकार मे जीवन कब पनप सका है ? इसीलिए क्या वह उचित नही है कि वे प्रकाश म आयें जहा जीवन है उद्दाम जीवन दुदम नीय स्फूर्ति—जीवन की यह लो कब बुझी है ?

६ विवत (१९५३)

सुखदा की कहानी स बहुत कुछ मिलती-जुलती कहानी विवत की है । जितेन एक अग्रेजी पत्र के संपादकीय मे काम करता है । भुवनमोहिनी एक धनी मानी व्यक्ति की लडकी है । भुवनमोहिनी को जितेन स प्रेम है और वह उससे विवाह करना चाहती है । परन्तु आर्थिक वयम्य को लेकर दोना म भगडा हो जाता है और मोहिनी उससे विवाह करने से इनकार कर देती है । तत्पश्चात उसका विवाह धरिस्टर नरेणचंद्र से सम्पन्न हो जाता है और दूसरी ओर जितेन क्रान्ति की राह पर चल पडता है । माहिनी क विवाह क चार वण बाद अकस्मात जितेन एक क्रान्तिकारी के रूप म एक मल ट्रेन को उलटकर उसके घर गरण लेन के लिए आता है । वह घायल हुआ है और कुछ दिन मोहिनी के घर रहकर उसकी सेवा-सुधूषण स स्वास्थ्य लाभ करता है । जाते समय वह उसके आभूषण ने जाता है जिहे कि उसके साथी बचकर नकद बनाने का सुभाव प्रस्तुत करते हैं पर वह सुभाव प्रस्तुत करता है कि भुवन माहिनी को उडा लाया जाए और उसम पचास हजार रुपए लेकर उसके आभूषण लौटा दिये जाय । माहिनी को पकडकर सान पर वह उसक सामने पचास हजार रुपयो की माग करता है परन्तु वह ऐसा करने म असमथता जताती

है। फिर अपने प्रेम के वशीभूत होकर जितेन के पर पकड़कर उन्हे चूमती है और उससे दया की याचना करती है। इसमें जितेन इतना द्रवित हो उठता है कि अपने समस्त दल के भरण-पापण का भार मोहिनी पर छाड़कर स्वयं पुलिस को आत्मसमर्पण कर देता है।

यह एक पराक्रमी पुरुष की कहानी है जो अपराध की राह पर चल पड़ता है। इसमें विपत्ति विवाह अथवा विफल स्नेह के आघार पर मानवीय भावों का मूर्ख विश्लेषण किया गया है। उपन्यास के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि अपराध व्यक्ति के स्वभाव का नहीं है। मानो वही दबाव है, प्रिय है विवत है जिसके कारण स्वभाव विभाव को अपना लेता है। सामाजिक दबाव, मानसिक दबाव मानसिक प्रिय भावात्मक विवत ही स्वभाव को विकृत बना देते हैं।

'विवत' में भारतीय धार्मिकारियों का वर्णन है परन्तु धार्मिकारियों का जो जीवन उनका जो दर्शन जनेन्द्र ने प्रस्तुत किया है वह हमारे ज्ञात इतिहास से मेल नहीं खाता। यह उपन्यास कालातीत और काल निरपेक्ष है। काल निरपेक्षता उपन्यास का गुण कदापि नहीं हो सकता क्योंकि उसका सबसे बड़ा बल मानवता है और मानव-जाति निरपेक्ष नहीं हो सकती। जनेन्द्र जीवन की ऐहिक समस्याओं की चिन्ता नहीं करते उनके लिए भाव-जगत् ही चिरतन समस्या है।

७ व्यतीत (१९५३)

'व्यतीत' आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई कहानी है जिसमें नायक जयन्त के अतीत अनुभवों को वाणी दी गई है। हृदय तथा बुद्धि आदेश भावना जगत् और व्यावहारिक जगत् के संघर्ष में निरन्तर जूझते रहने के बाद जयन्त के हाथ लगती है केवल जीवन की व्यथता की भावना। इस जीवन की घोर असफलता उसे जड़ बना देती है। अपने जीवन की परिस्थितियों से परास्त होकर वह यह मानने का विवश हो जाता है कि 'जीवन व्यथ भार ही है। क्यों वही उसे कभी देखे खा नहीं सका, ताकि कुछ पा जाता और या भटकता न फिरता। लेकिन सुनता हूँ दूसरा भी जन्म है। अब तो उसी में आस है।' जयन्त के सम्मुख न कोई बतमान है और न ही भविष्य विगत की स्मृतियों का सहारा वह जी रहा है। आर्थिक विपन्नता उसे कितना निष्क्रिय बना देती है, यही भावना उसके मन को धुन की तरह खाती रहती है। वह कवि है उसमें

भावना की गहराई है लेकिन उसके भाव-जगत् की आत्मावाप्ति व्यावहारिक जगत् की यथायता से मेल नहीं खाती जिसके फलस्वरूप अपने जीवन से निराग होकर वह समाज और उसकी व्यवस्था पर तीखे व्यंग्य कमता है।

वह अनिता और चन्द्रकला (चंद्री) को लेकर उलझन में पड़ जाता है। चन्द्रकला से विवाह करने का निश्चय भी हो जाता है। अनिता से उसका गहरा स्नेह है। इसी उधेड़बुन में पड़कर वह पतालीम वष द्विता चुकन पर जीवन की व्यथना का बाध पाता है जो चारा आर में उसकी गिरा गिरा का बैधकर उसे जजर कर देती है। हिसाब की दुनिया में कवि का जीवन असंगत है। चंद्री से उसका विवाह हो जान पर अनिता के उछाह की सीमा नहीं रहती। लेकिन चंद्री जयन्त पर पूरा अधिकार चाहती है इसी कारण जाना में दुराव पदा हो जाता है। अनिता का प्रेम और चंद्री में विवाह विषम विवाह का समस्या को उपस्थित करता है। जयन्त अंत में स्वयं का निपट अक्लाना पाता है जब दाना उसके जीवन से चल देती हैं तो वह अनुभव करता है आत्मा अकेला आता अकेला जाता है बाकी बीच का भमला ही तो है। चला भमला कटा रह साफ हुई आग उसका अंत भी माफ दीखता है।^१ जीवन की व्यथना की भावना धनी हो जाती है जो जयन्त की जीवन-कहानी का सार है उप-यास का सार है और आधुनिक सम्यता एवं समृद्धि का परिणाम है। क्यानक गिथिल हाते हुए और चरित्र चित्रण क्षीण हान पर भी व्यथना का भाव लेखक के मन को जकड़ रहता है और यही बार-बार उभर कर सामने आ जाता है।

८ जयवधन (१९५६)

जनेन्द्र की औप-यासिक सृष्टि में जयवधन एक भिन्न व्यक्तित्व रखने वाला उप-यास है। इसमें पचास साल बाद के भारत का एक कल्पना चित्र जय और इला की कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस उप-यास को एक विगुद्ध राजनीतिक उप-यास कहा जा सकता है क्योंकि देश की राज-व्यवस्था और शासन-स्तरीय गतिविधि पर तात्त्विक चिन्तन और विश्लेषण प्रस्तुत करना ही इस उप-यास का मुख्य विषय है। यह उप-यास डायरी गली में लिखा गया है और डायरी लिखन वाला है विलवर गोल्टन हूस्टन। डायरी गली और दीघकलेवरता की दृष्टि में यह उप-यास जनेन्द्र के उप-यासा में एक पृथक अस्तित्व रखता है। इस प्रयाग के प्रति स्वयं लेखक के मन में गंका है जयवधन पाठक के पास आता रहा है पर वह नहीं सकता कितना वह

उपनाम सिद्ध होगा। प्रयोग की दृष्टि से इसे अभिनव कहा जा सकता है। कृतु चित्रण की अविश्वसनीयता के कारण यह उपनाम उस ऊँचाई को प्राप्त ही कर सका जिसका दावा प्रकाशक ने किया है। बेग्रेन, ग्रुएन, मॉलरा जू जहा चुक गये, ज्या पाल सात्र जहा रह गये—वही से अगले सापान का आरम्भ है जनेत्र की यह कालजयी कृति—जयवधन ।'

इस उपनाम की कथा का केन्द्र बिन्दु है—राष्ट्राधिप जयवधन। अथ ममुख बिन्दु हैं—आचार्य स्वामी चिदानन्द, तथा एलिजाबेथ जिसे संक्षेप में लेजा भी कहा गया है। ये भिन्न भिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। आचार्य गांधीवाद का स्वामी चिदानन्द भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ की हिंदूवादी नीति का नाथ और लेजा वामपंथी—विशेष रूप से साम्यवादी विचारधारा का। जयवधन में नेहरू के व्यक्तित्व का आभास है और आचार्य में गांधीजी की रीति नीति देखी जा सकती है। हर पार्टी जयवधन को अपदस्थ करने की चेष्टा करती है। जयवधन की आर्थिक सामाजिक वदेशिक नीतियों तथा शासन व्यवस्था से उनका कहाँ क्या और किन बातों पर विरोध है और उनकी नीतियाँ क्या हैं?—इनका कहीं भी बखान स्पष्ट रूप से उपनाम में नहीं आया है। विरोध का जो स्पष्ट उल्लेख हुआ भी है, वह इला और जयवधन के संबंध को लेकर ही। इला आचार्य की पुत्री है और जयवधन की प्रेमिका। दोनों साथ साथ एक ही महल में रहते हैं लेकिन विवाह नहीं करते क्योंकि आचार्य की अनुमति उन्हें प्राप्त नहीं है। दोनों का प्रेम वासनाविहीन (प्लेटानिक) प्रेम का आदर्श है। मिस्टर हूस्टन को सभी पात्रों का विश्वास प्राप्त है। जयवधन विभिन्न दलों के सदस्यों को एकत्रित कर उनके सम्मेलन में उद्युक्त शासन व्यवस्था का भार सौंप कर बिना बताये एकाएक सब-कुछ छोड़कर चला जाता है और वह कहा जाता है कि जब तक सम्मेलन कोई निष्णय नहीं कर पाये आचार्य के निर्देशन से शासन का संचालन हो। अतएव वह इला से विवाह भी कर लेता है किन्तु विवाह के अगले ही दिन उसे भी छोड़कर पलायन कर जाता है। इस प्रकार जयवधन भी जनेत्र के अथ उपनामों की तरह प्रेमी पात्रों की परम्परा में ही आ जाता है—स्त्री से प्रेम करना और उस पाने के समय छोड़ कर भाग जाना।

इस प्रकार यह उपनाम कला की दृष्टि से तो उपनाम बन ही नहीं पाता क्योंकि इसकी कोई कथा नहीं जिसके सघ में पात्रों का चरित्र, कथा की घटनाएँ और विचार उभरे हों। चरित्र जस है वैसे ही बने रहते हैं—लेखक के हाथ की निर्जीव कठपुतली-सं। उनमें चरित्र निर्माण का अभाव है।

क्या अत्यन्त नीरस है और अस्पष्ट उलझे हुए दार्शनिक स्तर के राजनीतिक चिन्तन में पाठक उलझ कर कुछ भी निष्कर्ष नहीं निकाल पाता। चिन्तन की दृष्टि से भी यह कोई मौलिक कृति नहीं कही जा सकती क्योंकि इसका सारा चिन्तन पुराना है राज-व्यवस्था के ट्रस्टीशिप का चिन्तन। अन्त में बिना किसी निश्चय के बीच में ही ग़ासन भार को छाड़कर जयवधन के चन्द जाने में उपन्यास का अन्त तो कही भी नै जाकर नहीं छोड़ना। प्रस्तुत उपन्यास भविष्य की ग़लत तस्वीर तो पेश करता ही है वर्तमान का भी सही चित्रण नहीं कर पाता।

ऐसा प्रतीत होता है कि जनेद्रजी के लिए उपन्यास एक विवर्गना है जिसके अपने विचारों के प्रकाशन के लिए उसकी लोकप्रियता के कारण अपनाते हैं। समसामयिक समस्याओं के प्रति उपन्यासकार में जागरूकता है और वह उन्हीं समस्याओं को अपने ढंग से विवेचित करता है। इस प्रकार उनके उपन्यास में कथ्य ही प्रधान है पर उस कथ्य के परिधान के लिए वे अधिक चिन्ता नहीं करते। सहज और जटिलता दोनों ही उनमें हैं। यदि कोई सहजता को सराहता है और जटिलता में उलझ जाता है तो लेखक की बला से।

श्री यशपाल ने जयवधन पर विस्तार से विवेचन किया है और इसकी वार्थारिक असंगतियाँ पर भरपूर प्रकाश डाला है। अपने निबंध के अन्त में वे जयवधन की भाषा-शैली पर इस प्रकार लिखते हैं— जयवधन पढ़ने के श्रम को उसकी भाषा और भी कठिन कर देती है। भाषा सामाजिक अभिव्यक्ति का साधन है। उसे सुलभ और सुबोध बनाये रखने के लिये ही व्याकरण की आवश्यकता हुई है। भाषा के अर्थ प्रयाग और नियमा की अवहलना अहम् और स्वरति की उच्छ्वलता मात्र है। इस अतिम वाक्य में अपनी किंचित् असहमति प्रकट करना चाहता हूँ। यहाँ भाषा के नियमा की बात बड़ी कठोरता से कही गई है और उस पर अह् और स्वरति का भी आरोप लगाया गया है। आंगिक रूप से यह वाक्य जनद्र में हो सकती है किन्तु इसका यह मतनव नहीं है कि कोई लेखक भाषा में नय प्रयोग न करे। यदि भाषा को सामान्य अभिधाथ में लभ्याथ एव व्यग्याथ की ओर ले जाना है तो लेखक को बहुत-कुछ छूट देनी ही होगी। भाषा के सबंध में जनद्र एक प्रयोक्ता रहे हैं और उन्होंने हिन्दी गद्य को एक नयी उठान एव निखार दिया है। ऐसा स्थिति में उन पर अह् और स्वरति का आरोप लगाना समीचीन

प्रनीत नहीं हाना ।

६ मुक्तिबोध (१९६५)

मुक्तिबोध' जनद्वजी का साहित्य ध्रुवादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास है । इसका कथानक सीधा सरल और सपाट है चूँकि सहाय अपनी कहानी को आत्मकथात्मक ढाली में कहते हैं इसलिए उनका जीवन चिन्तन, मनन एवं काम के माध्यम से सर्वाधिक सुखरूप हुआ है । वे चिन्तन, मनन के अधिक निकट हैं, काम उनमें स्वतः स्फूर्त नहीं है । कभी वे ठाकुर द्वारा कभी नीलिमा द्वारा और एकाध अवसर पर राजश्री एवं भानुप्रताप द्वारा परिचालित दिखाए गए हैं । सहाय का जीवन आड़ी तिरछी रेखाओं में प्रभावित नहीं होता । उनका सुस्पष्ट जीवन-गान है । वे गांधीवाद से भी हल्के रूप में प्रभावित हैं । राजश्री पूरे प्रयत्नों में पति की अनुगता है वह जहाँ मतभेद भी रखती है वहाँ भी वह पूरी छूट देती है कि वे अपनी मनचीती करें । वह पति को प्रेरणादात्री प्रेयसी तक स्वयं टेलकर पहुँचाती है । उधर नीलिमा में भी अद्भुत मर्यादा-बोध है, वह सहाय के चाहने पर भी उन्हें गराव नहीं पिलाती क्योंकि पहली बार उन्हें पिलाकर वह अपने सिर पर पाप माल नहीं लिया चाहती । सहाय का लडका वीरेश्वर, उनका तीव्र आलोचक है वह उनके खोलले धादशवाद पर डट कर प्रहार करता है । इधर कुंवर भी अपने स्वसुर साहब के प्रताप एवं प्रभाव का लाभ उठाना चाहता है और इसीलिए वीरेश्वर के प्रति सदैव बनता है । उसके मन की भूल और महत्वाकांक्षा को वह खूब समझता और उसी के माफ़त वह सहाय का प्रभावित करना चाहता है, पर सहाय हैं जो उसे हाथ तक नहीं रखने देते और बड़ी निममता एवं बेलागपन का परिचय देते हैं । अजति के आसू उह पिघला नहीं सकते उसकी गलबहिया उह प्रभावित नहीं कर पाती क्योंकि वे मिनिस्टर बनने वाले हैं और ठाकुर न उह समझा रहा है कि वे कुंवर के जाल में न पने क्योंकि य दिन बड़े निर्णायक हैं ।

कुल मिलाकर यह एक पारिवारिक कहानी ही लगती है जिससे पति-पत्नी के सम्बन्ध मित्र मित्र के सम्बन्ध, पिता-पुत्र एवं पुत्री के सम्बन्ध एवं स्वसुर जामाता के सम्बन्ध और सर्वोपरि रूप में प्रेयस प्रेयसी के सम्बन्ध के बारे में लेखक अपना मतव्य प्रकट करना चाहता है नीलिमा के पति दर ऊपर-ऊपर या बाहर-बाहर ही रहे ह उनका व्यक्तित्व कहीं भी नहीं उभर पाया है । वे एक-दूसरे (पति-पत्नी) से आजाद हैं । यह क्या लेखक के द्वारा आगामी मानवीय सम्बन्धों की भूमिका है ?

। काम-न काम इतिवृत्त के साथ जनेन्द्र के उपन्यास आरम्भ होते हैं और प्रबुद्ध

वृत्ति है और कि इसे उपयास कहने में पाठक का जिनकी कठिनाई होती है उतनी ही समीक्षक को उहापोह की अनुभूति होती है। ऐसी वृत्तियों से जनेद्र अपने उन आलाचकों की चुनौती को ही नकारात्मक रूप में अंगीकार कर रहे हैं जिनका यह कहना है कि क्याकार जनेद्र चुक गए हैं और हर प्रौढकसाकार की तरह वे अपने आपका दुहरान लग हैं यद्यपि इस वृत्ति में औसतन नए उपयासकार को भी बरी नहीं किया जा सकता।

यहां प्रश्न यह उठता है कि हर क्याकार अपने आपको दोहराता क्या है? इस प्रश्न का स्पष्ट ही यह उत्तर दिया जा सकता है कि हमारे क्याकारों को जीवनानुभूति बहुत ही सीमित एवं सङ्कुचित होती जा रही है। जीवन के विराट प्रसार से एव बहुरंगी वविध्य से उनका सम्पर्क नहीं रहा। नया उपयासकार यह सोचता है कि होटल और रेस्तरा की दुनिया में सारा हिन्दुस्तान सिमट आया है! जनद्वी फोन और ट्रक-काल बरके ही आधुनिकता से अपना सान्निध्य सिद्ध करना चाहते हैं। प्लेन में उड़कर और वातानुकूलित रूम में बैठकर उन्हें आधुनिकता की अनुभूति हो जाती है। आवृ पवत पर इन पात्रों का जो सगम हुआ है वहां के जीवन की भलक इस उपयास में लगामात्र भी नहीं है। आवृ के प्राकृतिक अचल की छवि और परम्परागत कला की भावी भी इस उपयास में विरल है। एसा प्रतीत होता है कि बनानी के स्थान और राज्यपाल के राजकीय निवास तक ही आवृ का जीवन सीमित हो गया है। आवृ राड का भी प्रासंगिक रूप में ही जिक्र आया है। यह कहा जा सकता है कि जो लेखक मन की सूक्ष्मवृत्तियों का चितेरा हो उस जीवन में इन बाह्य आयामों से क्या प्रयाजन है किन्तु इस उत्तर से हमारी चेतना को समाधान नहीं मिलता। सूक्ष्म चिन्तन में भी चारों ओर का परिवर्ण एक स्वामाधिक दीप्ति ला सकता था और तब उपयास का चित्र अधिक विन्वसनीय भी होता। किन्तु जनेद्रजी तो ट्रक काल पर बम्बई, कलकत्ता ननीताल और माउंट आवृ का जोड़ देते हैं। इस प्रकार इस उपयास में जीवन का एक सतही चित्र अपनी सम्पूर्ण वचारिक कृत्रिमता को लेकर उभर आता है और पाठक कदम-कदम पर बोर' हान के सिवाय और कुछ नहीं कर सकता। मुझे पूरा विन्वास है कि जा लाग दिल-बहलाव के लिए उपयास पढने हैं वे तो इसे चार-पाच पृष्ठ पढकर ही छाड देंगे और जिन पाठकों को जनेद्र की मनस्विता एवं विचारशीलता में आस्था है वे भी धीरे-धीरे के पहाड को छाती पर रखकर ही इस औपयासिक कातार को पार कर सकेंगे। जनेद्र का औपयासिक गिल्प एवं उनका मनोविश्लेषण अब एक ऐसी सीमा पर आ गये हैं, जहां जीवन की ऊणता का सबया अभाव है एवं वचारिक ऊहापोह ही, जो कि

अनेक स्थलों पर कोरा याग्विलास ही धनकर रह गया है, पाठक को झुंभलाहट तक की स्थिति तक पहुंचा देता है।

यदि हम जनेद्र के संपूर्ण औपन्यासिक परिप्रेष्य को दृष्टि में रखकर विचार करें, तो धनतर में कोई नवीनता नहीं है। जनेद्र जिस बात का आरम्भ में ही कहते आ रहे हैं उनकी ही एक पुनरावृत्ति प्रस्तुत उपन्यास में मिलती है। आरम्भ में जब लेखक पत्नी से विदा होकर अपरा के साथ रूपे में यात्रा करता है तब पाठक का कोतुहल कुछ उद्दीप्त होता है किन्तु ही अपरा आबू पर्वत के जीवन में जब परिचारिका एवं सेविका के स्तर पर उतर आती है और अंत में यही नारी जब आदित्य के साथ ग्रहमदावाद और बम्बई की ओर उड़चलती है, तो उसके इन तीनों रूपों में कोई अंतर्धारा प्रवाहित होती हुई नहीं लगती। यो मुझे यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि अनन्तर में जो नारीपात्र पाठक को सर्वाधिक प्रभावित करता है, वह अपरा ही है, पर उसके चरित्र में तारतम्य का अभाव है और उसके व्यवहार में सगति की जगह असगति ही अधिक प्रबल है। अपरा जैसी असामान्य नारी के लिए इस प्रकार का आचरण कोई बहुत विस्मयकारी बात तो नहीं है, किन्तु उसके व्यवहार में यह बात पुनः पुनः रेखांकित होती है कि वह एक खडिब व्यक्तित्व की नारी है और जीवन को भोगने के लिए या जैसे जीवन को 'सामान्य' बनाने के लिए वह कृतसकल्प है। जहां तक स्वयं लेखक का प्रश्न है उसकी पत्नी और पुत्री का प्रश्न है जामाता का प्रश्न है इन सब पात्रों को असामान्य बनाने में अपरा की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। हमारे समाज में एक स्वेच्छाचारिणी नारी को लेकर जो भी प्रति क्रियाएँ व्यक्त हो सकती हैं उन्हीं की अभिव्यक्ति रामेश्वरी और उसकी पुत्री चारु के व्यवहार में मुखरित हुई है।

अपरा की तुलना में बनानी एक सशक्त नारी पात्र है। वह जिस निष्ठा से शांतिधाम की योजना को कार्यान्वित करना चाहती है उससे एक प्रबल आदर्शवाद की अभियोजना होती है, किन्तु आज के इस यथाशक्तकुल युग में उसके आदर्शवाद का क्या मूल्य है? अतएव उसका आदर्शवाद भी समझौता करता हुआ-सा प्रतीत होता है और तब हम सोचने लगते हैं कि हमारी राजनीति, हमारा धर्म, सभी सुविधा पर आश्रित हैं और कि अधचक्र इतना प्रबल है कि वह अपने गुजल्क में किसी को भी नहीं छोड़ता। आदित्य के अधचक्र में विचारी बनानी का आदर्शवाद छटपटाता-सा प्रतीत होता है और यह भी कितना प्रबल व्यंग्य है कि उसे आर्थिक सहायता एवं सहानुभूति एक ऐसी नारी से मिलती है जिसको स्वयं बनानी कोई बहुत अच्छा नहीं समझती और जिसको स्वीकार करने में भी उसे निष्कल-सी महसूस होती है। यह बनानी के व्यक्तित्व

इनके सम्बन्ध भी सूक्ष्ममात्र रह हैं उसका कोई विस्तृत विवरण हम नहीं मिलता। पाठक या श्रोता की कल्पना पर ही उसे छोड़ दिया गया है। अपरा और आदित्य के संबन्ध को लेखक न रहस्य के ताने बाने से बुना है। अपरा के शरीर पर पडे हुए काले दाग क्या आदित्य की अतृप्ति के परिचायक हैं, और क्या इससे यह सोचा जाए कि अपरा एव आदित्य के सम्बन्ध मानसिक ही थे? यही कारण है कि वह एक प्रबल आत्मविश्वास के साथ रामेश्वरी और चारू के सामने आइ और उनकी आगावागो एव सदेहा को निराकृत कर सकी। अपरा जसी यथायवादी नारी की अन्तिम परिणति लेखक के आदर्शवाद म ढक सी गई है और उसके जीवन की ललक की क्या इस ही अन्तिम परिणति माना जाए? इस सम्बन्ध म लेखक मौन है और सम्भवत वह पाठक को भी मौन के परिवेश मे बन्दी किया चाहता है।

अन्त म हम 'अनन्तर' के उद्देश्य को चारू के उस वचन म ह्पायित हुआ पाते है जिसम वह अपनी मा रामेश्वरी को जो कि चित्रलिखित सी अवस्था मे पहुच गई थी उसको सहज बनाने के लिए चारू ने उपयास के अन्त म इन शब्दो म मार्मिक अपील की है

'अम्मा, इसने सीधे आकर मुझसे कहा कि उनको मैं प्यार करती हूँ। इसके लिए सजा देना चाहो तो सजा दो, माफी दे सको तो माफी दे दो। तुम्हारे वह पति हैं इसलिए प्यार तुम्हारा फज हो सकता है। मेरा फज नहीं है, फिर भी प्यार है। इसलिए शायद पाप हो। ता मैं सजा के लिए तुम्हारे पास आ गई हूँ। कहती हूँ कि तुम, या तुम्हारी मा, अपने हाथ स मुझे जहर तक दें तो उसी क्षण खाकर मैं मर सकती हूँ। मैं तो नहीं दे सकी मा तुम चाहो तो द दो। और चाहो तो माफ कर दो।' इसा क्षमादान म 'अनन्तर' की परि समाप्ति अनुगु जित होती है और यही मानवीय प्रेम सकीण शारीरिक सीमाआ से ऊचा उठकर आत्मिक जगत म प्रवेश करता है। रचनाकार वा अपरा के सृजन म और 'अनन्तर' के तानेबाने म यही सदेश है। किन्तु अन्त मे मैं यह कहना चाहूंगा कि नेमिचन्द्र जन के गणो म यह जीवन के साथ अधूरा साक्षात्कार है और कि इसकी अनुभूति अत्यन्त क्षीण है। सुनीता, त्यागपत्र जसी सबल कृतियो वा स्रष्टा अनन्तर म क्या अपनी औपयासिक साधना कासमाधि लेख लिखने जा रहा है? और वह भी औपयासिक आत्मकथा के रूप मे।

परिच्छेद—२

कथा-शैली

जनेद्र के उपन्यासों में शुद्ध कथाशैली का विवरण इन कथाशैली की
उद्भावना का मूल और उसकी लेखकीय मनाभूमि

१ परल

कथानक का ढाँचा

'परल' का प्रमुख पात्र सत्यधन छद्म-आदावादी है व्यवहार में जिसका
भौतिकता की आरम्भ है। गवई किशोरिका बट्टा के प्रति जमम आकर्षण
का उन्मत्त हाना है किन्तु परिस्थितियों समर्पिता बट्टा को छाड़ मित्र विहारी
की बहन गरिमा से उसका विवाह सम्पन्न होता है। वह बट्टा के लिए अपने
स्थान पर विहारी का विकल्प प्रस्तुत कर स्वयं पत्नी भाङ्कर अलग हो जाता
है। फिर गरिमा के साथ उसका वैवाहिक जीवन भी आर्थिक कारणों से टूट
बन गया है। इधर विहारी और बट्टा भी विवाह-सूत्र में बंधते हैं किन्तु यह
परिणय दृष्टि में न होकर आत्मिक है। अतः आर्थिक रूप से विपन्न सत्यधन
का चानास हजार के नोट लेकर बट्टा अपने महान् त्याग का परिचय देती है
और जमम अभिभूत सत्यधन और विहारी अपना अपना जीवन जीते हैं।

रूप

'परल' का मूल अभिप्राय एक नायिका प्रधान उपन्यास की परिकल्पना है।
गवई किशोरिका बट्टा के विभेद में सत्यधन का छद्म-आदावादी अपना नकार
हाना के लिए विवश होना है और अन्ततः बट्टा की गौरव-गरिमा में उप
न्यास के सूत्र तिरोहित हो जाते हैं।

२ सुनीता

कथानक का ढांचा

श्रीकांत अपने मित्र हरिप्रसन्न के अभाव में विरह-सतप्त है। उसका मित्र हरिप्रसन्न कान्तिकारी है, जिसका दुनिया से कोई लगाव नहीं है। श्रीकांत अपनी सौ-दयमयी पत्नी सुनीता के माध्यम से हरि को सहज करना चाहता है। हरि और सुनीता का सम्पर्क प्रगाढ़ होता है और स्थिति कुछ ऐसी उत्पन्न होती है कि हरि सुनीता को निरावरण देखना चाहता है किन्तु उसके रूप का भेद नहीं पाता और भाग खड़ा होता है। सुनीता पति के उत्कट प्रेम और विरवास को पुनः प्राप्त करती है और पति उसे माध्यम बनाकर उसके प्रति आभारी है।

हेतु

वस्तुतः सुनीता में घर और बाहर की समस्या ही प्रधान होकर आई है। पति और प्रेमी के पृथक् अस्तित्व उभर कर सामने आए हैं जैसे उप-यासकार यह सकेत कर रहा हो कि एक नारी के लिए उसका पति ही सब-कुछ नहीं है, उसका प्रेमी भी हो सकता है। यही मूल समस्या अथ उप-यासो में भी जीवन के विविध परिप्रेक्ष्या में उभर कर आई है।

३ त्यागपत्र

कथानक का ढांचा

'त्यागपत्र' बुआ मृणाल और भतीजे प्रमोद के सबंध की कहानी है। मृणाल पर अपनी भाभी का कठोर अनुशासन है। यही कारण है कि शीला के भाई से जो उसका प्रणय सबंध स्थापित हुआ था, वह टूट गया और वह एक अघेड से व्यक्ति के गले मड़ दी गई। मृणाल अपनी आत्मा के बोझ को हलवा करने के लिए अपने प्रसंग का पति से जिन्न करती है जिस पर उसका पति उस चरित्रहीना घोषित कर निष्कासित कर देता है। बुआ एक कोयले के व्यापारी के सम्पर्क में आती है और अंत में उसके द्वारा भी परित्यक्त होकर भट जाती हुई निम्नतमवर्ग के लोगों के बीच आती है। प्रमोद अपनी सीमाओं में उसके निकट तो आता है किन्तु वे एक-दूसरे को अपना नहीं पाते और भतीजे के द्वारा बुआ को न अपना पाना ही, प्रमाद के त्यागपत्र का कारण बनता है।

हेतु

'त्यागपत्र' वस्तुतः एक अनमेल विवाह की कहानी है और पति द्वारा लाडिला मृणाल नारा की विवशता का प्रतीक है। कहानी अपने आपमें इतनी

करण है कि मणाल से गहन रूप में संबंधित भतीजे प्रमोद को जजी से त्याग पत्र देकर ही कुछ शांति मिल पाती है। 'त्यागपत्र' में तीन वर्गों के माध्यम से उनके असामंजस्य को प्रकट किया गया है। सबको अपनी सीमाएँ होती हैं और कोई किसी को अपना नहीं पाता।

४ कल्याणी

कथानक का ढांचा

कल्याणी अभिशप्त पत्नीत्व की कथा है। डाक्टर असरानी अपनी डाक्टर पत्नी कल्याणी पर इतने हावी हो जाते हैं कि वे उसे सावजनिक रूप से पीटते भी हैं और उसके चरित्र के प्रति सदेहशील भी रहते हैं। कल्याणी के जीवन की जटिलता डाक्टरी पत्नीत्व एवं निजत्व के भवर में फसकर क्षार क्षार हो गई है। डा० असरानी कल्याणी के प्रेमी, प्रीमियर से अपना काम भी निका लना चाहते हैं और दूसरे ही पल वे उसे सदिग्ध दृष्टि से भी देखते हैं। कल्याणी के चरित्र पर एक रहस्य का आवरण पड़ा हुआ है और उसका सुशिक्षित रूप विद्रोह के रूप में मुखर नहीं हो पाता यही चारित्रिक अस्पष्टता उसे कोई नियंत्रण नहीं लेने देती।

हेतु

कल्याणी भी त्यागपत्र की ही तरह अनचाहे विवाह की कहानी है। यद्यपि पति-पत्नी दोनों डाक्टर हैं किन्तु फिर भी उनके स्वभाव में कोई सामंजस्य नहीं है। नारी के 'सवसहारूप' का ही 'कल्याणी' प्रतिनिधित्व करती है। आध्यात्मिकता के प्रति उसका रुझान, उसकी भौतिक असफलता का ही, एक रूपांतर है।

५ सुखदा

कथानक का ढांचा

'सुखदा' में भी अनमेल विवाह की कहानी एक भिन्न परिप्रेक्ष्य में कही गई है। यद्यपि सुखदा और उसके पति कात में मानसिक दृष्टि से अधिक दुराव नहीं है और न शारीरिक दृष्टि से ही फिर भी आर्थिक कारणों से सुखदा पति के प्रति बेगानी हो जाती है। तडक भडक से भरा हुआ लाल उसे आकृष्ट करता है। हरीश के रूप में ऐसा पात्र प्रस्तुत किया गया है, जो कि विभिन्न पात्रों में संयोजन विदु का काय करता है। हरीश की ही प्रेरणा से कात उसे मित्रपत्नार करवाने पर पांच हजार रुपए प्राप्त करता है किन्तु कात के इस व्यव

हार से सुखदा को बड़ी चोट लगती है और वह क्षयग्रस्ता होकर अस्पताल की मरीजा बन जाती है।

हेतु

‘सुखदा एक निराशामयी नारी का अकमण्यता से परिपूर्ण चित्र है। सुखदा की अतृप्ति और लालसा नारीमात्र की भावना का प्रतिनिधित्व करती है और उसके जीवन के चारा ओर घनीभूत होकर उसे क्षयग्रस्ता बना लेती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुखदा में भी कथा परिपाटी (पटन) वही है, जिसका समारम्भ ‘परल’ से हुआ था।

६ विवत

कथानक का ढांचा

विवत बड़े बाप की बटी भुवनमोहिनी और उसके मध्यवर्गीय प्रेमी जितेन की कहानी है। दोनों में विवाद होने पर बरिस्टर नरेण से मोहिनी का विवाह हो जाता है और तब लगभग चार वर्ष पश्चात् जितेन एक क्रांतिकारी के रूप में भेन ट्रेन उलटकर घायल अवस्था में भुवनमोहिनी की परिचर्या प्राप्त करता है। स्वस्थ हान पर वह भुवनमोहिनी के आभूषण भी अपने साथ ले जाता है और बाद में घटनाचक्र कुछ इस रूप में घटता है कि मोहिनी से ही उसके आभूषणों के उपनयन में पचास हजार रुपए की मांग हाती है जिस पर मोहिनी जितेन के पाव पकड़ कर दया की भीख मागती है जिसमें जितेन इतना प्रभावित होता है कि दान की आवश्यकताओं का भार भुवनमोहिनी पर छोड़कर स्वयं पुलिस के समक्ष अपने आप को सौंप देता है।

हेतु

विवत में भी वही पुरानी कथा परिपाटी है और पति एवं प्रेमी के सह अस्तित्व को इसमें कुछ अधिक जोर देकर दुहराया गया है। जनेन्द्र की नायि कथाओं का क्रांतिकारियों के प्रति एक प्रखल सम्मोहन रहता है, और उसी के प्रति समर्पिता प्रियता, ये नायिकाएँ अपने जीवन के धरम बिंदु को प्राप्त कर लेती हैं।

७ व्यतीत

कथानक का ढांचा

व्यतीत जयंत की आत्म-कहानी है। उसका व्यक्तित्व अनिना और चंदी

क बीच भूत रहा है। पत्नी क श्री जयंत पर एकाधिकार चाहती है। इसी कारण जयंत उससे खाम उठता है। कालान्तर म वह निपट एकाकी रह जाता है और जीवन की व्ययता क बनीभूत सयासी हो जाता है।

दृष्टु

पत्नी और प्रेयसी के बीच भूलन हुए जयंत के व्यक्तित्व क अतद्धृष्ट एव व्ययता को दगाना ही इस उपयामा का प्रमुख प्रयाजन है। जिससे प्रणय है, उससे विवाह नहीं, और जिससे विवाह है, उससे प्रणय नहीं।

८ जयवधन

कथानक का ढांचा

जयवधन जनेन्द्र की औपयामासिक यात्रा म एक नया माड है। इसकी कथा परिपानी भी अय उपयामा स भिन है किन्तु मूल समस्या पूव-उपयामा म मिलती जुलती ही है। यद्यपि इसकी कथावस्तु पर राजनीतिक आवरण पडा हुआ है किन्तु अवसर मिलन ही लसक स्वच्छ प्रेम और विवाह की समस्या पर आ जाता है। इला उपयामा की नायिका है और जयवधन क साथ रहती है। काफी समय तक उनका विवाह नहीं होता और जब होता है तो विवाह के दूसरे ही दिन जयवधन इला का छोडकर चला जाता है। यह पलायन पूव उपयामा क नायिका क पलायन क समान ही है। इस उपयामा का कथापट एक विगाल परिप्रेथ्य को लेकर बना गया है अत इसक कथा व्यापार म जहा जलता है वही बुद्ध स्थला पर नीरमता भी आ जाती है। चूकि उपयामा भविष्यवाणी है इसलिये इसका कथा विकास काल्पनिक रखाया पर हुआ है।

दृष्टु

जनेन्द्र यद्यपि प्रस्तुत उपयामा मे छद्म रूप मे एक नयी दिशा की ओर उन्मुख होना चाहते हैं, पर घूम फिरकर वे अपने उपयामाओं की पूर्वावस्था पर आकर टिक जाते हैं। व्यक्ति और समाज प्रेम और विवाह, सवलीय सरकार की परिवर्तना मुख्य रूप म इस उपयामा म उमरी हैं। जयवधन के आचाय महात्मा गांधी क प्रिन्सिप प्रतीक हाते हैं और स्वयं जयवधन नहरू क। गांधी और नहरू की आत्मीयता की तरह ही आचाय और जयवधन म भी आत्मीयता है पर उनक स्वभाव और सिद्धांत एक दूसरे म भिन हैं। इसी ढत का स्थापना प्रस्तुत उपयामा म की गई है।

६ मुक्तिबोध

कथानक का ढांचा

'मुक्तिबोध' और अनन्तर उपन्यासकार ने मूलतः रेडियो प्रसारण के लिये लिखे हैं। 'मुक्तिबोध' का प्रमुख पात्र सहाय एब राजनीतिज्ञ है, जिस पर गांधीवाद का हल्का फुल्का प्रभाव देखा जा सकता है। राजश्री उसकी पत्नी है और नीलिमा प्रेयसी। इस उपन्यास में प्रथम बार पत्नी और प्रेयसी के मुखद सह अस्तित्व की परिकल्पना की गई है। राजश्री स्वयं प्रेरणा के लिये सहाय को नीलिमा के पास ठेलकर भेजती है। अन्तः प्रसंग के रूप में बटी और दामाद की कहानी भी है। दामाद औद्योगिक जीवन के प्रतीक हैं। इधर, ठाकुर सहाय को मन्त्रिमण्डल में शामिल होने के लिये राजी कर लेते हैं। उनमें सत्ता के प्रति विराग भी दिखाया गया है पर उनके चारा और के बातावरण में अधिकार की ललक है अतः उनके व्यक्तित्व में अन्तर्विरोध भावता है।

हेतु

'मुक्तिबोध' का मूल प्रयोजन एक और सत्ता की घकापल प्रस्तुत करना है तो दूसरी ओर इसमें प्रेयसी नीलिमा के मुक्त जीवन की भलक है। नीलिमा और राजश्री के सम्बन्ध प्रीतकर हैं, और कहीं भी वे एक दूसरे की सीमा का अतिक्रमण करती नहीं दिखाई देती। संपूर्ण घटना चक्र से यहाँ भी छद्म आदर्शवाद की कलाई खोली गई है।

१० अनन्तर

कथानक का ढांचा

'अनन्तर' और 'मुक्तिबोध' एक दूसरे के पूरक हैं जस एक पूर्वार्द्ध है और दूसरा उसका उत्तरार्द्ध। समसामयिक सन्दर्भ इन दोनों अन्तिम उपन्यासों में भाक भाक जाते हैं। राजश्री का स्थान रामेश्वरी ने ले लिया है और नीलिमा का स्थान अपरा ने। 'अनन्तर' का नायक एक गांधीवादी विचारक है जो किसी विचार-गोष्ठी में भाग लेने माउट आवूँ धा जाता है। साथ में उसकी सुख सुविधा के लिए रामेश्वरी और उसके दामाद द्वारा अपरा को नियोजित किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि राजश्री और नीलिमा में जहाँ सदाग्यता थी, वहाँ चारू के जटिल प्रकरण के कारण रामेश्वरी और अपरा के बीच एक कटकित स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चारू के ही प्रयत्नों से इन काटों में से फूल निकलते हैं और तब अपरा और दामाद (आदित्य) के सम्बन्ध सहज रूप से लगते हैं। अन्तः कहानी के रूप में बनाने का प्रसंग धाया

है जा गतिवाम स्थापित किया चाहती है और जिसे आयोजन म अनत अपरा सहायक सिद्ध हाती है । इस प्रकार अनतर' म अपरा का ही प्रभाव सर्वाधिक मुखर हुआ है ।

द्वु

अनतर का मून प्रयाजन अपरा क बबिध्यपूरण व्यक्तित्व की ही भनक प्रस्तुत करना है । उमी क मानिध्य स माधीवाणी विचारक का व्यक्तित्व भी उभरा है, जा कि स्वय लखक का ही रूपांतर कहा जा सकता है । 'अनतर' को जनेद्र की औपयासिक आत्म-कथा भी कहा जा सकता है । इस अतिम उपयास म लखक की सस्मरणात्मक प्रवृत्ति ही अधिक उभरी है ।

प्रत्येक कथा के प्रयोग की व्याख्या तथा प्रयाग की दृष्टि से मनोभूमियो के स्वरूप

परख म अनतर' तक की औपयासिक यात्रा म मुख्य रूप स पाव प्रयाग दृष्टिगत हान है

१ पहला 'परख' क रूप म एक ऐमा कच्चा मीठा प्रयाग है जिसम लखक की औपयासिक सम्भावनाया क बीज स्पष्टत रूष्टिगावर हाने हैं उसके आदावाद की भाक और ययाय का भूमि पर आन पर स्वलन परण के नायक सत्यधन की मून प्रवृत्ति कही जा सकती है । कटटा क रूप म एक गवई किगारिका का आर्या नारीत्व मुखरित हुआ है । दुख की बात है कि ऐसी जीवत पात्री परवर्ती उपयासों मे जनेद्र नहीं दे पाए । आर्यावाणी रमान की दृष्टि स तपामूमि' भी इसी काटि म आती है यद्यपि उमका विषय-बबिध्य एव विस्तार जनद्र की अपना रुचि का धोनक नहीं है । यही कारण है कि तपामूमि' जनद्र की औपयासिक मृष्टि म कुछ वेमेल-भी लगती है ।

२ दूसरा प्रयाग सुनीता और मुखना क रूप म हम पात हैं जहा दा मौन्यमयी नारिया अनात रूप म नातिवारिया क सम्माहन म फम जाती है और उनका बवाहिक जीवन पगु हान-हान बच गया है । सुनीता जितनी मबल और जीवत है, उतनी मुखदा दुलमुल यकीन और नाबुक्ता से आक्रात है । इन दाना नारिया क माध्यम म लखक यह प्रश्न रूठाना चाहता है कि क्या नारी का काम्य उमका पनि ही है । पनि क अतिरिक्त क्या और किसी पुण्य स उनका नगाव नहा हा सकता और यदि एमा लगव हाना है ता नतिता की दृष्टि म उमका क्या मूय है ? दन्हा प्रश्ना का एक विराट परिप्रेष्य म लखक ने न्न उपयामा म उठया है । इन उपयासों की लेखन गती पर द्यामावादी

गद्य की गरिमा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'सुनीता' व गद्य में जो ताजगी है, उतनी तो 'सुखदा' में नहीं है, किन्तु लेखन की मूल प्रवृत्ति में अधिक अंतर नहीं आ पाया है।

३ 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' के रूप में हम तीसरा औपन्यासिक प्रयोग पाते हैं, जिसमें कि मध्य बग की दो विशिष्ट नारियों की यातना को लेखक ने चित्रित किया है। मणाल ने यातना को स्वयं अजित किया, किन्तु कल्याणी पर यह यातना आरोपित कर दी गई। इन दोनों उपन्यासों में बेमेल विवाह के दुष्परिणाम स्पष्ट रूप में देखे जा सकते हैं। क्रांतिकारी पात्रों के प्रति जा सम्मोहन सुनीता तथा सुखदा में हम मिला था, वह तो 'त्यागपत्र' एवं 'कल्याणी' में नहीं है, किन्तु 'कल्याणी' के प्रीमियर के रूप में बुद्ध राजनीतिक पुट अवश्य दी गई है जबकि 'त्यागपत्र' में कहणा का एकांत साम्राज्य विखरा हुआ है। नारी के सबसहा रूप का चित्रण 'कल्याणी' में विनैप रूप से आध्यात्मिक पपवसान, लेखक का उद्दिष्टि रहा है।

४ 'व्यतीत' और विवत में हम चौथे औपन्यासिक प्रयोग के दर्शन करते हैं। 'व्यतीत' के सम्बन्ध में पहली महत्वपूर्ण बात यह है कि पुरुष प्रधान उपन्यास है, जबकि अन्य उपन्यासों में नारी पात्रों की ही प्रधानता है। 'व्यतीत' की अनिता और विवत की भुवनमोहिनी एक-सी ही धातु से सिरजी गई हैं। दोनों में अभिजात्य बग की सस्ती भावुकता का रूप प्रस्फुटित होता है। य नारिया कितनी परवश और पुरुष के प्रति कितनी सद्य हैं। विवत में क्रांतिकारी पात्र के प्रति सम्मोहन सुनीता और सुखदा की तरह ही जागा है, किन्तु इसकी विवृति अधिक नहीं की गई है। एक सी-ही मानसिक स्थिति में इन दोनों उपन्यासों को लिखा गया है। 'विवत' तो 'व्यतीत' का ही सहजात उत्पादन (बाइ प्रोडक्ट) सा ही प्रतीत होता है। ये दोनों उपन्यास व्यक्तित्वहीन भी बहे जा सकते हैं। 'व्यतीत' को पढ़ते हुए अज्ञेय के नदी के द्वीप की अनुभूति अनेक स्थलों पर सुनाई दी किन्तु नदी के द्वीप जसी जीवतता और रोमास की मौलिकता के अभाव में 'व्यतीत' एक लचर उपन्यास ही सिद्ध हुआ।

५ 'जयवधन' 'मुक्तिबोध' और 'अनतर' में हम पाचवें औपन्यासिक प्रयोग के दर्शन करते हैं जहाँ कि पात्रों व जीवन पर राजनातिक आवरण डाला गया है और समसामयिक सदकों को मुखर किया गया है। 'जयवधन' में गांधी और नेहरू के भारत की प्रतिध्वनि है। 'मुक्तिबोध' और 'अनतर' में स्वाधीनता के बाद के एक विशिष्ट राजनीतिक जीवन की अभिव्यक्ति है। 'जयवधन' अपने विशाल कलेवर के कारण अनेक की औपन्यासिक सृष्टि में एक विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचायक है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक काई

गहरी और बड़ी चीज दना चाहता था पर अनुभूति की क्षीणता के कारण ऐसा न हो सका। मुक्तिबोध और अनन्तर में जनेन्द्र सधु उपन्यास की टक्का पर फिर नोट घात हैं और वह इन ही उपन्यासों को रटिया प्रसारण के लिए लिखा गया था घन उनकी कुछ श्रोतृयोगिता सीमा भी है। कट-छट वाक्य सीमित कथानक और सिंगी एक मुक्त नारी-पात्र की (नीतिमा और प्रपरा) की अभिव्यक्ति ही लगन का मुख्य उद्देश्य रहा है। अनन्तर तक घन घन नगर की श्रोतृयोगिता सम्भावनाएँ क्षीण होनी हैं और साठ वष के बाद जम कर्द व्यक्ति सम्मरणात्मक व्यक्ति के धारण कर लेता है वगैरे अनन्तर भी लगन की श्रोतृयोगिता सामक्या-या ही प्रस्ताव होता है। 'अनन्तर' में जनेन्द्र की श्रोतृयोगिता सम्भावना का जिस रूप में तिरोभाव हुआ है, उससे तो यही भाग्यका जगने लगी है कि 'अनन्तर' में स्वयं लेखक ने अपना समाधि लेख प्रस्तुत कर दिया है।

इन उपन्यासों में ममतामयिक सात्त्विक उभर प्रवृत्ति है पर लक्षक के उनमें गहरा न उतरन के कारण एक प्रकार का ऊब-सी ही अनुभव होती है।

मून कथागा के अनुसंधान की प्रक्रिया में हम इसी निष्पत्ति पर पहुँचते हैं कि लेखक की जावनामूर्ति अत्यन्त सीमित एवं कथितक है। यही कारण है कि उसमें जीवन्तता की साशानीकम मात्रा में ही मिल पाती है। लगता है जैसे लेखक इसके दुबके कथानकों के ढाँचे को पुनः-पुनः नई भूमिका में प्रस्तुत कर रहा है। बच्चा के सेन में जस लकड़ी के गिल्लीना से मकान बनत रिगड़त हैं उन्ही तरह लेखक ने भी विनाश श्रोतृयोगिता समुत् के तट पर एक-स ही घरोने बनाए हैं, जो पन भर में बन भी जाते हैं और रिगड़ भी जाते हैं। लेखक की जीवनानुभूति सीमित होने के कारण वह एक-स ही कथानक का बार-बार दाहराता है और उसकी स्थिति उस काहू के बल की तरह हो जाती है जो एक ही सीमित घेरे में चक्कर काटता रहता है कि तु उसके पर अनुभव करते हैं जैसे उसने बहुत अधिक भूमि नाप ली हो।

कथाओं की प्रतिपादन गली विविध वग

जनेन्द्र की श्रोतृयोगिता सृष्टि में मून रूप से दो ही पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। उनके अधिकांश उपन्यासों में आत्म कथात्मक गली के दृशन होते हैं। इस आत्म-कथात्मक गली के कई रूप हैं कहीं वह डायरी-गली के रूप में है जैसे जयवधन में तो कहीं किसी पात्र की जुबानी कहानी को कहलाकर इसी पद्धति को प्रकारान्तर से गपनाया गया है। द्वितीय प्रकार की वृत्तान्तरमक गली केवल परक और सुनीता में ही सुनभ है। सुखदा व्यतीत मुक्तिबोध और

‘अनंतर विशुद्ध आत्मकथानक शली में लिखे गए हैं, जबकि ‘तपोभूमि, ‘त्याग पत्र’ कल्याणी’ किसी पात्र की आत्मकहानी के रूप में वर्णित है।

इस वर्गीकरण से एक बात स्पष्ट है कि लेखक के लिए आत्मकथात्मक शली ही अधिक मौजूद रही है। जनेन्द्र के अधिकांश उपयास लघु उपयास की कोटि में आते हैं अतः आत्मकथात्मक शली सबथा समीचीन ही सिद्ध हुई है। परम्परा को कोई भी लेखक नकार नहीं सकता। जनेन्द्र के वरुणात्मक उपयास इसका उदाहरण हैं, यद्यपि इन वरुणात्मक उपयासों में भी लेखक वरुण के विस्तार में नहीं जाता। वह केवल कथासृष्टि में हवाई उड़ाने भरता है और इस प्रकार उहाँ प्रसंगों को छूता और सवारता है, जो उसके उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हो। जनेन्द्र की वरुणात्मकता प्रेमचन्द की वरुणात्मकता से सबथा भिन्न है। प्रेमचन्द, जहाँ पाठक की कल्पना के लिए कुछ नहीं छोड़ते और सारी बातों के पूरे यौरे देते हैं, वही जनेन्द्र केवल उही प्रसंगों को वरुण की परिधि में लाते हैं, जो उनके मूल उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हैं। पाठक की कल्पना और मानसिक उत्तेजना के लिए वे बहुत-कुछ छोड़ देते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे सकेतात्मकता और प्रतीक विधानों से भी काम लेते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जनेन्द्र अपने उपयासों में जिन जीवन-खण्डों को लेते हैं, वे यद्यपि प्रत्यक्ष जीवन से कुछ कटे-से होते हैं किन्तु उनके माध्यम से वे सम्पूर्ण जीवन का आभास देने में सफल हो जाते हैं। गस्टाटिवाद की यही परिणति जनेन्द्र के उपयासों में देखने को मिलती है।

प्रश्न उठता है कि जनेन्द्र ने अधिकांश उपयासों में आत्मकथात्मक शली को ही क्यों अपनाया और ऐसा क्या कि केवल ‘जयवधन’ को छोड़कर उनके सभी उपयास लघु कलेवर हैं। इस प्रश्न का समाधान इसी रूप में पाया जा सकता है कि आत्मकथात्मक पद्धति से जनेन्द्र अपने पाठकों को सहज विश्वास में लेना चाहते हैं। इस प्रकार उनके कथानक में विश्वसनीयता आ जाती है और वे अपने पाठकों से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। लघु उपयास के परिधान में यही शली कारगर सिद्ध होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि ‘जयवधन’ लेखक ने केवल इस भोक में लिखा है कि वह बहुद-कलेवर उपयास को भी आजमाकर देखे यद्यपि बहुदकाय उपयास जनेन्द्र की लेखन शली का अंतरंग अंग नहीं है। घटनाओं का सम्पूर्ण घटाटोप जयवधन और इला को केन्द्रबिन्दु बनाकर चला है। अथवा पात्रों की जीवन चर्या इसी दृष्टि से नियोजित हुई है कि वे प्रमुख पात्रों की जीवन नीति पर विभिन्न कोणों से प्रकाश डाल सकें।

यहाँ यह बात भी स्पष्ट रूप में स्वीकार करनी होगी कि जनेन्द्र हिंदी में न केवल लघु उपयास के प्रवर्तक ही हैं, बल्कि आत्मकथात्मक शली के ‘मास्टर’

ना हैं। नए उपचारों में इस आत्मक्यात्मक शक्ती के विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। बरुन में हटकर जब उपयास विरुद्धता की धार उभरता है तो आत्मक्यात्मक शक्ती ही सर्वाधिक उपयुक्त समझी जाती है।

प्रतिपादन शक्ती की मनोभूमि

प्रश्न उठता है कि जनेद्र व उपन्यासा में जो आत्मक्यात्मक शक्ती है उसकी मनोभूमि क्या है? तब की बात आत्मानुभूति व माध्यम से ही प्रकट की जा सकता है। दृष्टान्त में जिसे हम आत्म-साक्षात्कार (सेल्फ रिप्लेसाइमेण्ट) कहते हैं, वही उपयास में आत्मक्यात्मक शक्ती का प्रेरणा बिंदु है। उपयासकार ममार में जो कुछ दृढता है उन जैसे का तसा प्रकट नहीं कर सकता क्योंकि यदि वह ऐसा करेगा तो उसका लक्षण पर उसका व्यक्तित्व की छाप नहीं होगी। प्रत्येक उपयासकार को रचित ध्यनात्मक होती है ध्यन व्यक्तित्व चयन में ही हम अपनी कला कृष्टि को मुखर करने हैं उमा व माध्यम न उपन्यासकार व व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हानी है। इसी बात को ध्यान में रखकर शक्ती को व्यक्तित्व व प्रकटीकरण का एक माध्यम बनाया गया और कहा गया कि शक्ती ही व्यक्तित्व है। चम्टरफीड ने शक्ती का विचारा का परिधान भी सम्भवन इसी दृष्टि में कहा है (स्टाइल इज दो डेस आफ घाट)।

हम सम्स्त ससार से अपना संबंध नहीं स्थापित कर सकते। प्रत्येक व्यक्ति का एक छाया सा समाज होता है उसी में उसका ज्ञान-ज्ञाना उठना बैठना मिलना-जुलना सीमित हो जाते हैं। उसका स्वार्थों का ज्ञान प्रदान एवं बन्धुआ का विनिमय इसी सकुचित परिधि में सम्पन्न होना है। विनाश मसार का वह इसी माध्यम से देखता है। इन आप व्यक्ति की साक्षरी कह दीजिए या उसकी सामर्थ्य की अन्तिम इच्छा। इस दृष्टि न जब हम जनेद्र की औपन्यासिक कृष्टि के माध्यम से उनकी मनोभूमि का सधान करते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि वहाँ कुछ क्वील हैं कुछ रिटायड जज हैं और कुछ पीडित-सतप्त एवं अभिगप्त नारिया हैं। इन नारियों की यातना को साकार करना ही जैसे लेखक का उद्देश्य है। बार-बार लेखक जो यह कहना चाहता है कि पत्नी का चरम साध्य और आकांक्ष्य पति ही नहीं है उसका प्रयत्न भी हो सकता है तो इससे यही सिद्ध होता है कि सामन्ती सभ्रति से आक्रान्त पुरुष-समाज को लेखक एक उदारता का सदिग देने जा रहा है। जनेद्र के नारी-पात्रों में कान्तिनारिया के सम्मोहन की बात पुन-पुन आई है। इसमें यही सिद्ध होता है कि लेखक ने कुछ कान्तिकारी मित्र रहें हैं और उनको लेकर उनके विचारा में जो अजूबा पना हुआ है उसी की अभिव्यक्ति इन नारी-पात्रों के प्रवल सम्मोहन में हुई है।

राष्ट्र की स्वाधीनता प्राप्ति में इन क्रांतिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेखक के अचेतन मन पर इसके जीवन की गरिमा का अज्ञात रूप में अकन हुआ है, उसी से इन पात्रों को इतना मोहक रूप दिया जा सका है।

जनेन्द्र की नारी में, पुरुष एवं समाज द्वारा यातना की गहन अनुभूति है। क्या यह समझा जाए कि स्वयं उप-यासकार की मानसिक यातना का ही यह प्रक्षेपण है? लेखक ने अपने आरम्भिक जीवन में बड़े ठाले रहकर जो यातना भेली है और व्यथता की अनुभूति से जिस प्रकार वह आक्रांत रहा है उसी की अनुगूज उसके नारी पात्रों की मनोरचना में मुखरित हुई है। लेखक नर नारी के सम्बन्ध को सहज किया चाहता है। इसी के लिए उसने पत्नी और प्रेयसी के सहअस्तित्व की कल्पना की है यह आश्चर्य की ही बात है कि ऐसी कल्पना करने वाला लेखक पुरुष की ही दृष्टि से सब कुछ क्या सोचता है? नारी की दृष्टि से भी पति और प्रेयस के सह अस्तित्व की कल्पना की जा सकती है। या पत्नी और प्रेयसी के सह अस्तित्व की सहज परिणति, नारी के सद्म में पति और प्रेयस के सह अस्तित्व के रूप में गौण मात्रा में, 'परख', 'व्यतीत', और 'मुक्तिबोध' में अभिव्यजित हुई है।

हिंदी उप-यास के इस मानसिक परिवर्तन को जनेन्द्र सामंती सस्कारों से मुक्त कर पूंजीवादी संस्कृति के धरातल पर ले आते हैं। इसी का एक रूप गांधीवादी संस्कार और व्यवहार हैं, जिसकी अंतिम परिणति औद्योगिक मानवतावाद में है। व्यक्तिवादिता पूंजीवादी संस्कृति की एक विशिष्ट देन रही है और यही व्यक्तिवादिता जनेन्द्र की औप-यासिक सृष्टि में भी है। प्रेमचंद के पुरुष या नारी उतने व्यक्ति नहीं हैं जितने कि समष्टि के एक अंग हैं किन्तु जनेन्द्र के स्त्री-पुरुष समाज के अंग वाद में हैं पहले तो वे व्यक्ति ही हैं। इसी तथ्य ही व्यजना इस रूप में भी की जा सकती है कि जनेन्द्र के पात्र 'टाइप नहीं हैं बल्कि व्यक्ति हैं। उनका यह व्यक्तिवादी स्तर इतना मुखर है कि हम इसका सम्बन्ध तत्कालीन छायावादी आन्दोलन से सहज ही स्थापित कर सकते हैं। जिन दिनों साहित्य के धरातल पर छायावाद चल रहा था उन्हीं दिनों राजनीति के धरातल पर गांधीवाद एक पुस्तकमय शक्ति थी। जनेन्द्र की औप-यासिक सृष्टि में इसी गांधीवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति हुई है, यद्यपि जनेन्द्र की नतिक मायतायें गांधीवाद से भी आगे बढ़ती हैं और वे फ्रायड के मनोविज्ञान से अपना सम्बन्ध जोड़ लेती हैं। यों ज्ञात और अज्ञात रूप में जनेन्द्र पर फ्रायड का प्रभाव मले ही न रहा हो, किन्तु सहज सस्कारों और विचारों के मौसम की दृष्टि से जनेन्द्र ने इस अज्ञात प्रभाव को हवा में से ग्रहण कर लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं!



वर्णन शैली



वर्णनात्मक स्थलों का वर्गीकरण एवं विवरण

वर्णन गली की दृष्टि से जनेन्द्र के उपयासों में चार कोटिया पाई जाती हैं

- (१) प्रमुख पात्र की मन स्थिति का वर्णन ।
- (२) दार्शनिक ऊहापोहजन्य वर्णन ।
- (३) वातावरण सृजन की दृष्टि से प्रकृति वर्णन ।
- (४) समसामयिक सन्दर्भों का सस्पगात्मक वर्णन ।

१. सबसे प्रथम मन स्थिति के वर्णन परख से लगाकर अनन्तर तक इतनी अधिक मात्रा में सुलभ हैं कि उन्हें मनोवैज्ञानिक उपयास का अंतरण ग्रहण कहा जा सकता है। इस प्रकार के विवरणों में पात्र के मन की उधेड़बुन, सकल्प, विवक्ष्य और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वचारिक प्रक्रियाओं को उपयासकार ने वर्णित किया है। अपने कथन की पुष्टि में एक उदाहरण 'सुनीता से देना चाहूँगा' हरिप्रसन्न उसी स्टडीरूम में रहा जिसमें पहले दिन कमर में धोती का फेंट बांधे हाथ में बास में बंधी भाड़ू लिए उसकी भाभी सुनीता उसे मिली थी। वह उसके अप्रत्यागित आगमन पर जल्दी में सिर पर धोती का छोर लेकर सिट पिटाई-सी खड़ी रह गई थी। इसी स्टडीरूम में उसने शली और शॉ की किताबें खींचकर उनमें अलग अलग सुन्दर-सुन्दर अक्षरा में लिखा था—श्रीमती सुनीतादेवी ! इसी में उसकी ठीक की हुई उन सपत्निका भाभी की तस्वीर अब भी रखी है और क्यों इस ही कमरे में (ग्राह !) उन दोनों (पति पत्नी) के

जान किन किन पवित्र रहस्या, किन किन क्रीडाया और स्नेह वातामो की सुरभि को अपने मम म धारण नहीं किया है । आज उसी स्टडीरूम म अपने बडल के भीतर आदमी की जान लने वाले इस्पात के रिवाल्वर को दुबका रख कर वह फिर आ पहुचा है । नहीं जानता है क्यों । और मानो वह अपने से लौट लौटकर पूछना चाहता है—'क्या रे क्यों ?'

मनोभूमिगत वर्णन शली

यदि हम प्रस्तुत अनुच्छेद का विश्लेषण करें तो इसम एक ऐसे व्यक्ति की मन स्थिति पूरा रूप म व्यक्त हुई है जो कि कभी भी नारी के सम्पर्क म नहीं आया है । ऐसे व्यक्ति के मन म किसी नारी को लेकर जिन जिन कल्पनाओ का उदय हो सकता है, उन सबका सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत अनुच्छेद मे सुलभ है । क्रांतिकारी हरिप्रसन्न इसी स्टडीरूम मे जब अपने इस्पात के रिवाल्वर को दुबकाना चाहता है तो वह अपने आपसे पुन-पुन यही प्रश्न करता है कि ऐसा वह क्यों कर रहा है । कौन-सी है वे मानसिक तरंगें जिनके वशीभूत वह अपने मन का आदोलित पाता है । एक सौंदर्यमयी नारी के क्षणिक सम्पर्क ने उसे उसके हृदय की जड़ता को द्रवित कर दिया है । इस प्रकार के विवरणो म 'सुनीता' उसे उपन्यास मे अप्रत्यक्ष शली अपनाई गई है, जहा पर लेखक पात्र की ओर से एक सबज्ञ कलाकार का मानसिक विधान करता है । अथ उपन्यास म, जो कि प्रायः आत्मकथात्मक रहे हैं उनम मन स्थिति का वर्णन एक नया ही रूप ग्रहण कर लेता है और वहा पर लेखक अप्रत्यक्ष शली के स्थान पर प्रत्यक्ष शली को अपना लेता है ।

एसा ही एक उदाहरण हम व्यतीत से उद्धृत करना चाहेगे 'नहीं समझती थी चंद्री, कि सुख के लिए मेरी वह दुःख की रचना है । पर जस सुख किमी को मिला है इस परवसिटी मे । वह मुझे कवि जानती थी, पर मैं आज जानता हूँ कि मैं पशु था । तब तो शायद मैं भी कवि जानता था अपने को, महान् जानता था । विचारक जानता था । निराय के भाव से और को देखता और फसला देता था । तब चंद्री मरे लिए मानिनी थी जो अतिशय रमणीय थी, इसी से मेरे लिए जम तिरस्करणीया बन उठी माननीया थी, इससे अपमाननीया हो गई । धनशालिनी थी इससे दण्डनीया बन गई, ऊची थी इससे नीची बनाना शायद मेरे लिए आवश्यक हो गया । ओफ-क्या पसे की कभी मेरे भीतर इतनी गहरी जा बठी थी कि वह दबकर-बसकर आहत अभिमान की

श्रिय ही बन उठी। जा हा वह अध्ययना म भुक्ती में अनान्तर म तनता।^१

मनोभूमिगत बरान-गली

प्रमनून पत्तिया म पति पत्नी की ठकरार का अछटा-मासा चित्र है। जयत जा कि अनिता क प्रेम म पगा है वह पत्नी चट्टी क लिए कितना नयकर एव काटिययुक्त हा गया है। जिम जयन क व्यवहार म कवि की कामलता व्य जिन हानी चाहिए थी, वही जड पगु क समान चट्टी क माय व्यवहार कर रहा था। अन पत्तिया म एक मस्मरणात्मक ध्वनि भी है और विभेद का रखाए बडे स्पष्ट रूप म अकित की गई हैं।

२ दानिक ऊहापोहजय बरण

दानिक ऊहापोह के बरणों से जने-द्रव्य की औप-यासिक सृष्टि आक्रात है, आक्रात इसलिए कहता हू कि साधारण पाठक इमो दानिक ऊहापोह के विवरण को पढकर जन-द्रव्य के उप-यास को फेंक देता है और प्रबुद्ध पाठक के गले मो यह चीज जरा कठिनाई से उतरती है। एक उगाहरण दकर उसकी व्याख्या करने म अधिक सुविधा रहगी। यहा सनाचार का बुद्ध मूल्य नहीं है, अपमा ही नहा है। बल्कि अणु मूल्य है। अगर वही नातर वनून भीतर मज्जा तक म छिपा पगुता का कीडा है तो यहा वह ऊपर आ रहा। यहा छन असम्भव है जा छल कि सम्य समाज म जरुरा हा है। यहा तहजाद की माग नहीं है, सम्पना की आगा नहा है। बह्याई जितनी उमरी सामन आक उतनी ही रसीली बनती है। बवरता का लाज का आवरण नहा चाहिए, मनुष्य यहा सुलकर मगव पगु हा सकना है। जो नहीं हा सकता उसकी मनुष्यता म बटटा समभा जाता है इसलिए मच्चरिय दीखन वाला यहा नहा टिक सकना। उम मज्जा तक मच्चा हाना होगा तभी स्वरियन है। जा बाहर हा, वही भीतर। भीतर पगु हा तो इस जलवायु म भाकर बाहर की मनुष्यता एक क्षण नहीं ठहरगी। मनुष्य हा ता भीतर तक मनुष्य होना हागा। कर्नई वाला सनाचार यहा सुलकर उघड रहता है। यहा मरा कचन ही टिक सकता है क्यकि उस जरुरत ही नहीं कि वह कह कि मैं पीतल नहा हूँ। यहा कचन की माग नहीं है पीतन म परहज नहीं है तसम पीतल रखकर ऊपर कचन दीखन वाला नाम यहा छन भर नहा टिकता है। बल्कि यहा पातल का मूल्य है। इसमे सोन क धम की यहा परीभा है। सच्च कचन का पक्की परख यही हागी। यह

यहा की कसौटी है। मैं मानती हूँ कि जो इस कसौटी पर खरा हो सकता है वह खरा है और वही प्रभु का प्यारा हो सकता है।^१

प्रस्तुत लम्बे चौड़े उद्धरण को मैंने इसी दृष्टि से प्रस्तुत किया है कि हम जनेन्द्र के दार्शनिक ऊहापोह की प्रवृत्ति को पूरा रूप में समझ सकें। इस प्रकार केस्थल वचारिक चिंतना की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण होते हैं किन्तु जो पाठक उपन्यास को मनोरंजन की दृष्टि से पढ़ना चाहता है, उसकी सास ऐसे विवरणों में उखड़ने लगती है। प्रस्तुत पक्तियों में मणाल ने उस समाज की तथा कथित नतिकता का परिचय दिया है जिसके बीच वह बह रही है। इस सदभ में मणाल ने एक लम्बा चौड़ा व्याख्यान दिया है यह तो उसका एक अक्षमात्र है। अष्टे-श्वामे समाज—शास्त्रीय विदलेपण की भलक इन पक्तियों में हम पाते हैं। प्रस्तुत उद्धरण में जटिलता का अभाव है। या जैनेन्द्रजी जब इस प्रकार के विवरण प्रस्तुत करते हैं तो कभी-कभी वे काफी बहक भी जाते हैं और उनके कथन या विवरण का आशय स्पष्ट कर पाना बड़ा कठिन हो जाता है। ऐसा ही एक छोटग-सा उद्धरण मैं नीचे दे रहा हूँ

‘ जिसको तन दिया उससे पसा कसे लिया जा सकता है यह मेरी समझ में नहीं आता। तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूँ तन दे सकूंगी। शायद वह अनिवाय हो। पर लेना कसे? दान स्त्री का धम है। नहीं तो उसका और क्या धम है? उससे मन मागा जाएगा, तन भी मागा जाएगा। सती का आदेश और क्या है? पर उसकी बित्री—न न यह न हागा। अगरचे सोचती हूँ कि—’

मनोभूमिगत वर्णन शाली

सती के आदेश की ऐसी निराली व्याख्या सम्भवतः अन्यत्र न मिलेगी। यह ठीक है कि लेखक मणाल के माध्यम से भारतीय नारीत्व की व्यंजना कर रहा है, किन्तु जब वह स्वयं ही अपने विवरण के बीच प्रश्न उठाता है तो उसका सकल्प स्वलित होता हुआ-सा प्रतीत होता है। जो बात लेखक कहना चाहता है वह काफी गहरी है, विचारों को भी उससे उत्तेजना मिलती है किन्तु इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में स्पष्ट दिशा का निर्देश नहीं मिल पाता।

३ वातावरण-सृजन की दृष्टि से प्रकृति वर्णन

४ गहरे विचारों से आप्लावित जनेन्द्र के उपन्यासों में प्रकृति वर्णन प्रायः

३ त्यागपत्र पृ० ६४।

४ त्यागपत्र पृ० ६४।

उपात्त रहा है किन्तु जहा भी सखक का एमा अवसर मिला है वहा हम प्रकृति वणन म छायावादी गद्य-सुपमा का स्पष्ट रूप म देख सकते हैं। एक एमा ही विगुद्ध प्रकृति का वणन परख स उद्घत किया जा रहा है काश्मीर स्वग है और काश्मीर का शालामार स्वर्गोद्यान। उसी स्वर्गोद्यान म एक वर म चिनार के पेड के नीचे सब बठे हैं। बाहर भील म उनका बजरा टहरा है। जहा बंठे हैं मखमल सी दूब का कालीन दूर तक फला हुआ है। सामने ही नहर है। किलोय खानी वह ग्ही है मछलिया उसम खेल रही हैं। वह बहती फिर सगमरमर के प्रपात पर जा उतरती है धीरे धीरे बल खाती, इठनाती और खेलती हुई। माना गहगाह गहजहा की सौन्द्य-कल्पना धारा जलमय हाकर लहरिया का शुभ्र नील हलका बसन पहन कर, हम अपनी अठ-खेनिया दिखला रही हो।"

मनोभूमिगत वणन गली

प्रस्तुत उद्धरण म प्रकृति का एक विगुद्ध चित्र है। इसम कही भी कोई जटिलता या गानिकता नहीं है किन्तु परवर्ती उपयामा म जनत्र का प्रकृति वणन भी दानिकता स कटकित हा गया है क्योकि ऐसी अवस्था म व प्रकृति को भी अपने विचारा की चरी बना नत है और तब बाह्य वातावरण के सृजन म उसम अधिक मदद नहीं मिलती हा पान की अन्तप्रकृति का उसस किंचिद् आभास अवश्य मिल जाता है।

एक एसा उदाहरण जिसम प्रकृति पुरप को उत्तेजना प्रदान करती है और उसके प्रमुप भावा को प्रस्फुटित करती है और लिया जाय

रान को दा ढाइ बजे के करीब चाद निकल आया। दूध-सी चादनी बिछ गई। आसमान हसना दिखाई दिया। प्रकृति भी उसके नीचे खिली। वातावरण म अजब मोह था। बयार म गुलाबी सर्दों थी।

हरिप्रसन्न नहीं सो सका नहीं सा सका। मौन उसे हल्की लगता है। पर इन घडिया का एक एक पल उसस उठाय नहीं उठना। चाद की चादनी क्या है? क्या वह एसी मीठी है? अर यह सन्नाटा उस सुनाता क्या नहीं? क्या यह सब-कुछ एक रसीला-सा सन्नेग उसक कान म सुना रहा है? वह कौन है? वह सदेग क्या है? कौन उस कह रहा है—अरे जा अरे जा। और यह बिना ही बाने कौन उसके भीतर पुकार रहा है—अरे आ अरे आ। सुनीता खुन पत्यर पर सा रही है। तकिया बाह का भी नहीं है। बही है अर कुछ भी

नहीं है, और वह सो रही है। ओह रेगमी वस्त्र चादनी में कसे खिल रहें हैं और यह मुखड़ा विनिद्रित सम्पुटित कसा प्यारा लग रहा है। कसा प्यारा और कसा जहर।^१

मनोभूमिगत बरण शली

प्रस्तुत उद्धरण में केवल प्रकृति का विगुद्ध चित्र ही नहीं है, बल्कि उसके प्रभाव से जिस रूप में मानव मन में उद्बलन होता है उसका भी मार्मिक चित्रण है। यहा प्रकृति और मानवीय भावनाएं एक दूसरे पर परस्पर निर्भर करती हैं। इस प्रकार के बरण जनेन्द्र के आरम्भिक उपयासों में तो मिलते हैं, किंतु परवर्ती उपयासों में प्राकृतिक बरण की यह प्रवृत्ति क्षीण से क्षीणतर हो गई है, और अन्त में जाकर तो उसका प्रभाव यथार्थिक ऊहापोह में अपने अस्तित्व को ही खो बठा है। इस दृष्टि से अज्ञेय और जनेन्द्र में बड़ा अन्तर है। अज्ञेय के कथा साहित्य में प्रकृति के संप्राण चित्र बहुत बड़ी मात्रा में बिखरे पड़े हैं, किंतु जनेन्द्र में यह प्रवृत्ति नगण्य है। प्रकृति से जीवन को जो ताजगी प्राप्त होती है, उससे जनेन्द्र के उपयास अन्ततः हाथ धो बँटने हैं। सुनीता आधी रात को चादनी में जिस प्रकार खिल रही थी, उसका बहुत ही मार्मिक चित्र उपयुक्त उद्धरण में अंकित है। रूप का प्रभाव सहज प्राकृतिक वातावरण की पृष्ठभूमि पाकर, अपने आपको प्रस्फुटित करता है।

विवृत से एक ऐसा उदाहरण लें जिसमें उसका नायक जितेन प्रकृति से गहरा तादात्म्य स्थापित किए हुए है। वहा प्रकृति अपने विविध आयामों में प्रस्फुटित हुई है। नदी है सर्दी गर्मी है चाद पेड़ और नौका भी है। जितेन प्रकृति के इस क्रोड में गहरी परितृप्ति अनुभव करता है। उसकी परिवर्द्धि का चित्र निम्न पक्तियों में दृष्ट-य है रात को ग्यारह बजे के बाद आकर जितेन ने नाव ली पतवारों सभाली और घारा से उल्टी तरफ खेने लगा। सब सुनसान था। रात हसती थी। तारे बहुत थे और बहुत घने थे और बहुत उजले थे। चाद था नहीं। पेड़ सोये थे। पानी भी सोया लगता था, अगर्चे बह रहा था। बस डाढ़ की छप-छप की आवाज एक आवाज थी, या फिर किनारों से आती भिल्ली की टेर, जो मौन ही को तीखा करती थी। जितेन खेए गया, खेए गया। कोट उतारकर उसने बराबर रख लिया था, सिफ बदन पर बनि यान पहने था, पर इममें भी उसे गर्मी मालूम होती थी। मौल भर ऊपर आ गया होगा। रात की सर्नी में भी कडे थम से पसीने की बूँदें मोये पर आ

टपकी थी। वह गाण ही गया। वस्ता दूर दूर गई थी। उस अच्छा मानूम हो रहा था। वह था और सनाग। बीच में वहीं कुछ बाधा होने लगे थे। अब वह धर धर चूर हो गया था। नाव उगने दूरतर तिनार रत पर लगाई और उतर कर वह बालू पर चित नट गया। उस अच्छा मानूम हो रहा था। रेत ठण्ठी थी गायत्र जफरत में ज्यादा ठण्ठी थी। रात ठण्ठी थी और सर्तों मानूम से अधिक् थी। तबिन सब उम मुदावना लगा और शीत का स्पण उम सुखकर मानूम हुआ। वह अपने पूरे फलाव में लटा रहा। परा में बूट से उसमें ऊपर पतलून थी पर ऊपर छाला बनिधान। धर शरीर पर सीली गीत वायु उस प्यारी लगी। अपने पूरे फलाव में रेत पर विद्यवर वह लटा ही रहा। बाहें पीछे करके फनाइ भगडाई ली फिर दधर उधर करवटें चकर रत पर ही वह लोटने-भोटन लगा। जान कब का यह मिट्टी का स्पण छूट गया था। अब मरसा बाट माना जीवनों बाट मिट्टी में लगकर उसन कृताथ का परस पाया। कभी मुन्न गिथिन हो रहना कभी फिर लोटने-भोटने लगता। उस कुछ भान न था, माना वह था और धरती में लगी हुई उसकी कृताथता थी। एस कब तक वह वहा रहा पता नहीं। वह वहा रह ही जाता जब तब कि तडरा फूटकर जगत की उपस्थिति उस न सुभा देती।

मनोभूमिगत धरण गली

जितेन की नौका विहार व उपयुक्त धरण में प्रकृति व अनक सदभ हमारे हाथ लग जात हैं। यहा हसने वाली रात है उज्वल और धन तारे हैं चाद की अनुपस्थिति है पेड और पानी पर मोने का आरोपण है। यहा प्रकृति सजीव-सप्राण बन गई है। छप छप की आवाज और भिल्ली की टेर से मगीत का साज भी जुटा लिया गया है। एस सनाटे से भरे वातावरण में जितेन निरंतर नाव से रहा है और परिणामस्वरूप उसके मस्तक पर स्वेद बिन्दु हैं। इन स्वेद बिन्दुआ से प्रकृति के प्रति उसकी तमयता ही प्रकट होती है। बालू पर चित लेटने से यही आभासित होता है कि दुनिया के जन-समूह से दूर जितेन प्रकृति की एकांत आश्रयस्थानी में गहरी विश्रान्ति अनुभव करता है। पूरे फलाव में लटन में उसकी थकावट को दूर करने की आकांक्षा ही प्रकट होती है। भगडाई लेना करवटें बदलना लाटना पोटना सबसे यही ध्वनित होता है कि जिस मिट्टी से उसका सम्पर्क टूट गया था आज उससे बर्षों बाद मिनाप हुआ है, और वह इससे गहरी कृताथता अनुभव कर रहा

है। रात बीत चली है और तडका फूटने को है—इससे यही बोध होता है कि लगभग सारी रात वह प्रकृति की इस एवान्तस्थली में अपनी गहरी श्वाति का निराकरण करता रहा है। यहाँ नायक जितेन का प्रकृति के साथ जो प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित किया गया है उससे यह बात भी प्रकट होती है कि हारे पक्षे इन्सान के लिए प्रकृति का एवान्त और रमणीयता बहुत बड़ा वरदान है।

उपर्युक्त उद्धरण में व्याकरण की दृष्टि से अनेक त्रुटियाँ हैं। वहाँ लिंग विषय, तो कहीं पुनर्वक्ति है, तो कहीं उर्दू लहजा है, किन्तु हुमा यह सब सहजता और प्राकृतिकता के नाम पर। 'जीवनों बाद', 'बाधा होने को न था' जैसे गलत प्रयोगों से यही प्रमाणित होता है कि लेखक स्वेच्छाचारी है और अपनी मन की भ्रोक के वखन में वह व्याकरणागत नियमों को ताक में रख देता है।

सामान्यतः प्रकृति के वखन जँनेत्र के उपन्यासा में डूबने से ही मिल पाते हैं। वही वे सजीव होते हैं तो वही निर्जीव। उपर्युक्त उद्धरण जहाँ प्रकृति की सजीवता का चित्र अंकित करता है और मानव सम्पत्ति के भाव को रेखांकित करता है वही निम्न पक्तियों में सध्या का वखन केवल खाना पूरी मात्र ही लगता है हम लोग लौटकर जमना किनारे घूमते रहे। समय सूना और सुहा बना था। दिन के उजाले पर हल्की-हल्की साँया की छाया उतरने लगी थी। मानो वातावरण में झलझला था। करने धरने का दिन बाना घूप का समय ढल गया था। अब मानो विश्राम प्रकृति पर और जगत पर धीरे धीरे आकाश की ओर उतर रहा था।^८

*

*

*

सध्या की छाया अब सिफ ठण्डी न रही थी। वह धीमे धीमे अधियारी पड़ती जा रही थी। घाट पीछे छूट गया था। अब वह दोखता भी न था। बना और पक्का जो था सब पीछे रह गया था। आगे उजाड़ और विषादान आता जा रहा था। अब हम एक टीले पर चढ़ रहे थे। उजाले का सिफ अब नाम ही था। हम चल भर ही सकते थे। आसपास की भाडिया जीती और दुबकती-सी लगती थी। हम टीले पर आ गए। यहाँ कुछ दरख्त थे। मैं समझ रही थी हम भटक रहे हैं। लेकिन लाल के कदमा में विकल्प न था। जैसे उनमें दिशा थी और जानकारी थी और वही हुमा। पेडा के भुरमुट के बीच एवं खुल में हम पहुँचे जहाँ कुछ लोग जमा थे।^९

८ सुखदा पृ० १७२।

९ वही पृष्ठ १७३।

सहायक सिद्ध हुई है।

चिडिया की चहचहाहट का वान म आना प्रभात का सूचक है। 'दिन जब जगने को था'—मे विनोपण विषयय की भूलक देखी जा सकती है। प्राग सूयो दय का चित्र है और अघरे के बटने की बात कही गई है। इसके उपरांत जयन्त के मन मे डर बटता है और वह आत्मस्थ होकर अती स वातचीत करने म तल्लीन हो जाता है। इस प्रकार के प्रकृति चित्रा म प्रभात रात्रि, अघकार और उजाल की बात आती है और वह मन की सूक भावनाआ का वाणी प्रदान करती है।

प्रकृति वरण के प्रकरण को समाप्त करन से पूव यह उचित ही होगा कि हम जयवर्धन के साथ सागर तट की सर कर लें बगते कि इली को इसस कोई ऐतराज न हो बहुत तिनो की बात है बीस गायद बार्स बरस पहल की। सागर का तट था। सध्या डूब चली थी। तट सूना था। लहरा पर लहरे लकर सागर आता और पछाड खाकर पीछे लौट जाता। मैं बराबर म साथ न थी। दा टग पीछे खडी जय को देख रही थी। वह पास थे और पूरे दीख नही सकते थे। आख से जसे परस ही पा रही थी। दो स ऊपर मिनट हो गए थे और वह स्तंघ खडे थे। आज उनका मन उमन था। चुप थ जस कही ग्रस्त वात न कर पाते थे बम सागर की आर मुह किए खडे थे—स्तंघ और अचल।"

मनोभूमिगत वरण शली

हमारे प्रयोजन के लिए यह प्रकरण इतना ही पर्याप्त है। यहा सागर का वसा सश्लिष्ट वरण तो सुलभ नही है जैसा लाड वायरन के द आगन म है किन्तु सागर की सूच्य स्थिति ही जयवधन और इला के पारस्परिक मानसिक सदभ को स्पष्ट करने म सिद्ध हुई है। जय का पछाड खाते हुए सागर क दश्य म लीन हो जाना अकारण नही है। उसके मानस म जो हलचल है उसी का साह्यपूर्ण प्रतिबिम्ब वह सागर की लहरा म भी देख रहा है। या प्रकृति मानव जीवन के साथ एक आत्मीयतापूर्ण सम्पत्ति का ही परिचय देती है।

जनेन्द्र के उपयामासों मे प्रकृति का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मिलता, वह केवल एक पूरक और सहजात (बाइ प्रोडेक्ट) उपकरण के रूप में ही आई है। छोटे छोटे वाक्यों के द्वारा उसकी भंगिमा को हल्के रंगों से केवल छु भर दिया गया है। ज्यों ज्यों उनके उपयामासों मे नागरता का तत्व (अरबन एलीमेन्ट) वृद्धिगीत होता गया है, त्यों त्यों प्रकृति पीछे छूटती गई है।

(४) समसामयिक सद्‌भों का सस्पर्शात्मक वरण

जनेन्द्र के परवर्ती उपयासो मे समसामयिक सद्‌भों की कुशल अभिव्यजना है। 'जयवधन', 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' म वे समसामयिक सद्‌भों के प्रति विशेष सजग प्रतीत होते हैं। जयवधन' म नेहरू और गांधी की राजनीति की स्पष्ट रूप से चर्चा है। 'मुक्तिबोध' म मन्त्रित्व की उखाड़-पछाड़ एव विधान सभा-सदस्या एव युवा आक्रोश का सहज प्रतिबिम्ब मिलता है। मुक्तिबोध' म वीरेश्वर इस आक्रोश का माध्यम बना है, तो 'अनन्तर' म प्रकाश एव जामाता आन्टिन्य नवयुवको की उथल पुथल का प्रतिनिधित्व करते हैं। औद्योगिक व्यक्तियों के जीवन का प्रतिनिधित्व, अनन्तर' म आदित्य के द्वारा सम्पन्न हुआ है। किन्तु यहा यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसे सद्‌भ चलताऊ ढंग म ही आए हैं उनके प्रति लेखक की गहरी आस्था नहीं है इसीलिए इनका विवचन भी प्राय उथला है। लेखक की प्रतिभा केवल उहाँ प्रसंगों का निष्ठा के साथ चित्रण करती है, जो या तो मानव-जीवन की गुत्थियों को सुलझाने वाले हों या नर नारी की अतप्रकृति एव सदिलष्ट सम्बन्धों को अभियोजित करते हों, इसीलिए हमने यह कहा है कि समसामयिक सद्‌भों को केवल छू भर दिया गया है।

'सुनीता' म उस राजि का चमत्कारी वरण है, जब हरिप्रसन्न भाभी सुनीता को गहन जगल मे ले गया था और क्रान्तिकारी दल के सदस्यों को दीक्षा देने की बात थी। इसी उपयास म त्रिवेणी का वरण भी आया है, जहा श्रीवान्त को हरिप्रसन्न दिखाई दिया था। 'परख' मे वकील साहब के परिवार की काश्मीर-यात्रा के कारण प्राकृतिक वैभव को वर्णित करने का विशेष अर्थ सर मिला है। इसी प्रकार क्रान्तिकारियों के निवास स्थान और उनकी जीवन चर्चा का लेखक ने विशेष रूप से अंकन किया है।"

यह आश्चर्य की ही बात है कि जो कलाकार 'एक गो जैसी चुटीली कहानी लिख सकता है उसके उपयासो मे पशु पक्षियों के लिए कोई स्थान नहीं है। इसी प्रकार पवत सरिताए एव ऋतुए भी जनेन्द्र की वरण परिधि म नाममात्र को ही आ सके हैं। यदि कही प्रसंगवश इनका वरण आया है तो वह प्राय सवेतात्मक एव प्रतीकात्मक ही रहा है। परख' मे जहा काश्मीर की भी भ्रमक मिलती है वही कट्टो के घर का भी एक प्रकृति चित्र बड़ा मार्मिक बन पडा है 'वह लेट गया। पेड पर अधपकी जामन लग रही है। दखते देखते बिहारी के सिर पर कट्ट से एक जामन पडी। अम्मा तुम्हार घर म या

आवाग स बम्ब के गोल गिरत हागे, तब तो मैं यही का हा रूगा । पर भी नही पहुच पाऊगा । घरे, रो मत, सो जा । भर नही जान का जा मैं बहना हू । दिल्ली म भी मिता है कभी तुम्हे ऐस सोने को ? बहा ता चाह इमर लिए तरसता ही हो ।

जाने दो मरा क्या मैं तो माय जाता हूँ । मरा मिर फूट गया ता दूसरा अम्मा का ही दना होगा ।

हा हा, द देगे । सा तू भव ।

बिहारा जामन व तल मा के प्यार की छाह म कट्टा व इम गवई स्वगृह के आगन म आस भीचकर मो गया ।^१

मनोभूमिगत वखन गली

प्रस्तुत उद्धरण म जहा बिहारी और अम्मा की अनरग निश्चन वाता है, वही प्रकृति का एक ग्राम्य रूप भी जामुन की छाह म विछी हुई खटिया पर देखन को मिल जाता है । जामुन का कटट स गिरना एक स्थानीय रग ल आता है और गवई स्वगृह व आगन म—हम एक विगिप्त अभिव्यक्ति व भी दगन करत हैं । दिल्ली और देहात की तुलना भी मा-बटे की बातचीत म मुखर हो उठी है जिसे हम गली व व्यंग्याय म ल सक्त हैं । इस प्रकार व छुत्पुट प्रकृति व वखन आरम्भ से उपयासा म तो मिल जात हैं पर परवर्ती उपयासा म तो अलादीन का चिराग लेकर देखन पर भी य वखन मुनभ नही हा पाते । इस प्रकार के वखन की बहुलता हम अनेय के कथा-साहित्य म जरूर मिलती है जहाकि मानव-जीवन से प्रकृति का सबघ स्पष्ट एव अविच्छिन है । वसस यही सिद्ध होना है कि प्रकृति के वखन म जनद्र की विगेप अभिगचि नही है और व कवल मानव-जीवन की गुलिया को सुलभाने म ही विगेप अभि रचि रखते हैं ।

जनद्र व परवर्ती उपयासा म प्रकृति का बहिष्कार अत्यन्त विस्मयकारी है । 'मुक्तिवाघ' और अनन्तर' म दो एस प्रसंग आये हैं जबकि लखक प्रकृति का अत्यन्त रचिर चित्र प्रस्तुत कर सकता था किन्तु उमन ऐसा नहा किया । 'मुक्तिवाघ' के पाचवे अध्याय म सहाय और नीलिमा पिकनिक व लिय मूरज कुण्ड जाते हैं । वहा पर लखक की रचि पिकनिक के सामान और नीदिमा व वदिग मूठ तक ही रह गयी है । कही भी मूरजकुण्ड की एकांत प्रकृति का वखन नही मिलता । ऐम प्रकरण केवल सूच्यमात्र ही रह है । इसी प्रकार

'अनन्तर' में आदित्य प्रसाद की माउट आबू की सड़की पर घुमाता है। यहाँ इस बात की पूरी गुजाइश थी कि माउट आबू का, उसकी प्रकृति और पथा का व्यापक वर्णन होता, किन्तु लेखक ने केवल एक वाक्य से ही इस विवरण को निपटा दिया है। गुस्ती को उनके स्थान पर बार से उतार कर मुझे फिर माउट आबू की सड़की पर कहा-कहा घुमाता हुआ अन्त में अपने होटल ले आया।'^{१५}

मनोभूमिगत वर्णन शली

'कहा-कहा घुमाता हुआ से स्पष्ट रूप में योजित होता है कि लेखक की उस घूमने या घुमाने में कोई रुचि नहीं है। वह तो केवल अपनी ही उधेड़बुन में व्यस्त है। एक स्थान पर ननीताल और आबू की तुलना करते हुए कहा गया है आप तो बस बे बसे ही है, बाबूजी! ननीताल रहते तो सुख हो जाते। और नहीं तो खुवानी, आलूबुखारा वहाँ अभी खूब माने लगा है। और चेरी! यहाँ तो सुनते हैं आपके माउट में कुछ भी नहीं होता।'^{१६}

यह ठीक है कि माउट आबू में ननीताल जैसे फल नहीं होते, किन्तु वहाँ की प्रकृति रचिर दृश्यों से विहीन नहीं है। पर्वतों और नक्की भील का दृश्य पर्याप्त मनोरम है किन्तु लेखक ने उसके विवरण या वर्णन में कोई रुचि नहीं दिखाई।

मनोभूमिगत विभिन्न भाषा शली का

जनेद्र की भाषा शली सबत्र एक-से ही साचे में ढली हुई मिलती है। उसके दो ही रूप प्रायः सुलभ हैं। उनकी शली का प्रकृत रूप पार्श्वों की बात चीत में मिलता है, जहाँ वह अत्यन्त ही स्वाभाविक लहजे में मुहावरेदार शब्दावली के द्वारा अपने पार्श्वों को बुलवाते हैं। उनकी बातचीत में जीवन का ऊष्ण सस्पन्ध रहता है। दूसरी प्रकार की भाषा शली मानसिक प्रीयियों के विश्लेषण में उपलब्ध होती है। इन मानसिक प्रीयियों का विश्लेषण करना जनेद्रजी का प्रिय व्यसन है। इसी के ऊहापोह में उनके व्यक्तित्व का सहज उमोचन होता है। यही हमें रहस्योमुख प्रकृति के भी दर्शन होते हैं जो नये नये जीवन-संस्थों के उद्घाटन में बहुत व्यस्त प्रतीत होती है। जनेद्र एक सजग विचारक है ताकिता की ओर भी उनका सहज रुझान है इसलिए बात में से

१५ अनन्तर, पृ० ६८।

१६ अनन्तर पृ० ६९।

वात निकलती है और उनकी चिंतना के परत-पर-परत खुलते जाते हैं। सौभाग्य यही है कि ऐसा अनायास होता है, यदि यह चिंतन सायास एवं आरोपित होता, तो जनेद्र की औपन्यासिक सृष्टि एक अनबूझ पहेली बन जाती।

निष्कण्य जनेद्र सहजता से जटिलता की ओर अग्रसर हुए हैं। परस्त्री की भाषा शली और उसकी मनावूमि एकदम प्रशांत है उसमें धीरे-धीरे मथर प्रवाह है। सुनीता में सहजता के साथ कुछ अलकति भी आती है और उसका छायावादी मादक मनमोहक प्रतीत होता है। 'त्यागपत्र' में एक वचार्तिक परिपक्वता के साथ-साथ भाषा शिल्प में भी एक पूरुणता के दर्शन होते हैं। कर्याणी में भाषा की सामर्थ्य बसी ही बनी रहती है पर क्या शिल्प एवं प्रभाव में कुछ कुछ 'यूनता' आने लगती है। 'व्यतीन' में जिस वचार्तिक स्थिता एवं गहनता का आरम्भ होता है उसी की पुष्टि विवत और सुखदा में है। जयवधन तक आते-आते उनकी भाषा 'शली' में एक ठहराव आने लगता है और उसके विकास के विविध आयाम पाठक को चमत्कृत करते-स प्रतीत होते हैं। मुक्तिबोध और 'अनन्तर' में ह्रास के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। ऐसी स्थिति में कोई भी कलाकार आत्मकेन्द्रित हो जाता है और वह अपने निजी जीवन के सम्मरण ही उलट फेरकर सुनाने लगता है। अनन्तर में आत्म-कथात्मक उद्गारों का बाहुल्य है और ऐसा लगता है कि अब लेखक में विचार और भाषा की नई उठाना की दृष्टि से कुछ नया अवशिष्ट नहीं रहा है। वह चुका हुआ-सा प्रतीत होता है। इसीलिए उसमें पुनरावृत्ति के दर्शन होने लगते हैं और हम सोचते हैं कि अब लेखक को उपन्यास लेखन से हाथ खींच लेना चाहिए।

सभाषण तथा सवाद

सभाषण तथा सवाद तात्विक अन्तर

जनद्र के उपयासो में सभाषणों एव सवादो का विशेष महत्व है। जब दो पात्र आपस में बातचीत करते हैं, तो वह सवाद के अतगत आता है। सभाषण में कोई विनिष्ट पात्र धाराप्रवाह रूप में किसी विषय या प्रसंग विषय पर अपने विचार प्रकट करता है। सवाद प्रायः सक्षिप्त एव चुटीले होते हैं, जबकि सभाषणों में अपेक्षाकृत विस्तार होता है, जैसे कोई यक्ता विशेष किसी विषय पर व्याख्यान दे रहा हो। सवादों में प्रायः बोलचाल की गम्भावसी प्रयुक्त होती है, पर सभाषणों में लेखक को इस बात की आजादी है कि वह अपनी विनिष्ट भाषा शली में परतों पर-परत खोलता चले। दोनों ही स्थितियों में धोता की अपेक्षा रहती है, पर सवाद में धोता एक सक्रिय अभिकर्ता भी होता है, जबकि सभाषण में धोता निष्क्रिय होता है। कक्षा के विद्यार्थियों की तरह या आमसभा के धोताओं की तरह उसे सब कुछ सुने जाना है। हा वह सभाषण की प्रतिक्रिया को मूक रूप में अपने चेहरे पर अवश्य व्यक्त करता है। इससे सभाषणकर्ता को प्रेरणा एव प्रोत्साहन अथवा विपरीत स्थिति होने पर निष्प्रेरण एवं निरस्तह भी प्राप्त होता है। सभाषणों में गहरे वचारिक प्रतिपादन के लिये पर्याप्त अवकाश होता है जबकि सवाद में बातचीत का स्तर हल्का पुल्का एव कामचलाऊ ही होता है। इस बात को या भी व्यक्त किया जा सकता है कि सवादी हल्की मनोदंगा में अपनी विचारण व्यक्त करता है, सभाषण की मनोस्थिति अपेक्षाकृत गभीर होती है और

परिणाम स्वरूप गहन विवेचना स सयुक्त होती है ।

सवादों क बग

सवाद म प्राय वक्ता एव श्रोता की मन स्थिति का स्पष्ट निरूपण रहता है । कहा कहा तो बबल सकत या प्रतीक स ही बान पूरी हा जाती है । उदाहरण क लिय परख' क निम्न सवाद को प्रस्तुत किया जा सकता है

जीजी बठा न ।

तुम भी तो बठो ।

मैं पीछे खाऊंगी ।

निबटाना भी तो है ।

निबटा ला तो फिर । मैं भी पीछे ही खाऊंगी ।

नहा जाजी यह कोई बात है । तुम तो महमान हा, जीजी हो ।

अच्छी जीजी हूँ और अच्छी महमान हूँ — इतना ता काम लिया कि'—
नही नही मैंन ता यह परोस भी दी थाली—

पराम दी ता रखी रहने दो । ठडी काटगी तो है नहा ।'

कटो हार गई और यह हारना कसा अच्छा लगता है ।

कटटा न बटा— अच्छा तो सो, मैं भी अब निबटी ।

'तुम्हे देर तक भूखा नहीं रखूंगी । पर तुमने फलाने म मदद दी ता अब निबटान म भी दो ।'

प्रस्तुत उद्धरण म सम्बन्ध की स्पष्ट भलक है । उनहार मनुहार छीन मपट गुन्गुहाहट और जबरदस्ती आदि आदि अनेक भावनाआ का सम्मिश्रण है और इस भाव गबलता का सुन्दर निदर्शन कहा जा सकता है । कटटा और गरिमा एक दूसरे के सम्पर्क मे आई हैं और कटटो अपने मास्टर की पत्नी गरिमा का अपने सद्व्यवहार स रिभा लेना चाहती है । उनके सवाद स पारस्परिकता एव सहयोगिता की भी प्रतिध्वनि निकलती है । कटटो के निर्णय एव श्रोताय पूण व्यक्तित्व की रेखायें भी इस उद्धरण म व्यक्त होती हैं । एक सखी दूसरी सखी क लिए किस तरह से अनुग्रह एव उपालम्भ करती है इसका भी मार्मिक चित्र उपयुक्त पक्तिया म सुलभ है । कहीं-कहीं व्यंग्य की वक्रता भी सवाद को मिच ममालदार बना देती है । आतिथ्य भावना भी छलकी पड रही है । उद्धरण की अंतिम पक्ति म सहयोगिता की भावना सखी के हृदय का जीठ लेती है । इसी प्रकार एक सवाद के बाद निर्णय का चिन्ह देकर (—) बात को

अधूरा छोड़ दिया गया है और अवशिष्ट अंश को नयनों की व्यजना से पूरा किया गया है। दोनों सखिया के हाव भाव देखते ही बनते हैं जैसे बोर्ड किसी स पीछे रहने वाली नहीं है। कटटो की समपराशीलता एव त्यागवृत्ति की यह चरम सीमा भी कही जा सकती है। उसके मन में सवा की भावना ही मुखरित हो रही है और यह बात उपयुक्त उद्धरण में छलकी पड़ रही है किन्तु उसका परिधान सख्यत्व का ही है और उसका मिठास अनिवचनीय है। यह गाहस्थ्य जीवन में सम्बन्धित सवाद का प्रतिनिधि उदाहरण कहा जा सकता है।

व्यक्तिक जीवन से सम्बन्धित सवाद जनेद्र के उपयासों में पुष्कल मात्रा में विद्यमान हैं। इस प्रकार के सवादों में निजी सम्बन्ध का प्रमुखता दी जाती है और व्यक्तिक जीवन की आशा आकांक्षा नराश्य एव व्यथा और कभी कभी आत्मघातना तक के बड़े सजीव सवाद मिल जाते हैं। एक उदाहरण देकर हम अपनी बात को स्पष्ट करेंगे "अगले रोज जब मैं मिला तो कल्याणी ने कहा—सचमुच आपकी बातों से मेरा उत्साह जाता रहा। इससे निराशा में मैंने काफी फाड़ दी।

मैंने कहा—यह तो सदा के लिए मुझे दोषी बना दिया गया।

उन्होंने पूछा—तो क्या सचमुच मैं लिख सकूंगी? लिख सकती हूँ?

मैंने कहा—हां, अवश्य।

वह सुनकर कुछ देर चुप रही। बोली—अच्छा लिखकर फिर क्या होगा?

मैंने कहा—लिखकर होता क्या है? पहले जो लिखा उसका क्या हुआ?

बोली—यही तो मैं जानना चाहती हूँ कि उस सबसे क्या हुआ है?

कविता से क्या होता है? सब मन का उच्छ्वास है। उच्छ्वास में क्या हाता है?

मैंने कहा—फिर भी उच्छ्वास के घुटने से उसका बाहर रूप लेकर निकल आना क्या अच्छा नहीं है?

बोली—क्यों अच्छा है? मैं अचरज से उनकी ओर देखता रह गया।

बोली—सब व्यथ है सब व्यथ है।

मैंने कहा—सुनिए व्यथ कहने से तो जीवन का अर्थ भी व्यथ हो जाएगा।

एसे कैसे चलेगा?

बोली—न चले तो क्या हानि है?

स्पष्ट वह बहस चाहती थी, सुनना चाहती थी कहना चाहती थी। कुछ करने की गर्मी चाहती थी।

प्रस्तुत प्रसंग में बत्त्याणी के कवयित्री रूप की स्पष्ट व्यजना है। इन उद्गारा में उनका सही किन्तु अनिश्चयपूर्ण व्यक्तित्व भावता है। भाषा-मवधी मन्वडो की आणका में बत्त्याणी इतनी निराग हुई कि उसने काफी ही पाठ दी। जब नारी किसी चीज का मृजन करती है तो उसका प्रयाजन एव साथ कता भी चाहती है। बत्त्याणी व मन में इस चीज का लेकर अनिश्चय है कि कविता में जा भावोच्छ्वास होने हैं उनका जीवन में क्या मृत्य है और इसी लिए अपन मवात् व अतिम आगा में वे व्यथता की भावना से अभिभूत हो जाती हैं। उनके जीवन में जा व्यथा की अतर्धारा प्रवाहित हा रही है वह इस प्रसंग में कुछ भनक पडी है।

ऐसी ही कथितक बातचीत का एक उद्धरण व्यतीत से प्रस्तुत किया जा रहा है

मैं सेट गया। दूसरी ओर करवट कर वह भी सेट गई। बत्ती अभी हमारे ऊपर रोगन थी। जल्दी मरी आख नहीं लगी। जाने अनिता क्या सोच रही थी या उस भपकी आ गई थी।

मैंने कहा अनिता।

—सुनो अनिता तुम पुरी साहब के प्रति आयाय तो नहीं कर रही हा ?

—चुप रहा सोने दा।

—माफी मागता हू मैंने बुरा किया कि रोना।

—चुप नहीं रह सकत नुम जयंत। खबरदार जा वाले। मैं बत्ती करती हू।^१

प्रस्तुत उद्धरण में जयंत और उसकी प्रेमिका अनिता के एकात्मिक जीवन की भनक है। जयंत की पत्नी चट्टी रसोई में चटार्ड डालकर वाहा का तक्रिया किए सा रही है। जिस पर अनिता ने जयंत का अघा तक बना लिया है। जा व्यक्ति अनिता द्वारा पुरी साहब के प्रति आयाय की बात सोच सकता है वह स्वयं अपने द्वारा चट्टी पर किए गए आयाय को अकल्पित क्या खता है। चुप रहा सांन दा—य एक तानागाह की धुडकी है और आचय की बात तो यह है कि यह तानागाह प्रेमिका का आवरण आठे हुए है। इस प्रकार जनद्र निनात कथितक प्रसंगा को कही ता झू भर देन हैं और कहा उन काफी विस्तार के साथ चित्रित करत हैं। उनके सभी उपयासा में इस प्रकार के सवाद काफी बढी मात्रा में उपलब्ध हा सकन हैं।

सवात्ता का तीसरा वग तात्विक सवाद का कहा जा सकना है। जब लेखक

स्वयं दाशनिक हा तो उसके उपयासो म इस प्रकार के सवादो की कोई कमी नहा रह सकती । त्यागपत्र स एक उदाहरण लीजिय

“बुआ क्षणिक रुकी, फिर धोली—जर ले चलेगा, ता सुन, मैं नहीं जाऊगी, मैं नहीं जा सकती । तुम मुझे नहा जानते हो मैं पति के घर को छोडकर आ गई हूँ पति है पर दूसरे पुरुष के आसरे पर रह रही हूँ, उसके साथ रह रही हूँ । तुम न जानो मैं यह जानती हूँ । तुम अपनी आखें ढक लो, लेकिन मुझसे अपना यह सारा पातक निगल जाने को नहीं कह सकते । फिर जिनको साथ लेकर पति को छोड आई हूँ उनको मैं छोड दूँ ? उन्हाने मरे लिए क्या नहीं त्यागा ? उनकी कष्टणा पर मैं बची हूँ । मैं मर सकती थी लेकिन मैं नहीं मरी । मरने को अघम जानकर ही मैं मरने स बच गयी । जिसने सहारे मैं उस मृत्यु के अघम से बची ? जिनके सहारे मैं बची उन्ही को छोड देने का मुझसे कहते हो ? मैं नहीं छोड सकती । पापिनी हो सकती हूँ, पर उसके ऊपर क्या भक्तन भी बनूँ ? नहीं । प्रमोद तुम सब लोग मुझे मरा हुआ क्यों नहीं मान लेते हो ? क्यों मुझे तग करते हो ?

*

*

*

मैंने खाना खा लिया । बुआ भी खाना बना चुकी थी । उसी समय अपनी गिनती के बतन घो माजकर मुझसे उन्हाने कहा—

—सुनो, अभी ही तो नहीं जा रहे हो न ?

—अभी ही तो नहीं—

—तो एक काम करो ! बाहर ही दूकान है, वहा से उहे खाने के लिए भेज दो । तुम इतने पाच मिनट वहा बैठना, फिर यहा आराम करके जाना हो, तो दोपहर बीते जाना ।

प्रस्तुत उद्धरण म बुआ ने जो तात्विक निष्णय दिया है उसी का विश्लेषण उनके उद्गारो म विस्तार के साथ आया है । बुआ की दृष्टि निभ्राति एव अकाठ्य है । यह एक ऐसी नारी का निश्चय है, जिसने जीवन मे बहुत से पापड बेले हैं और अतत घातना की निहाई पर उसका व्यक्तित्व कचन की तरह निखरा है । जिस नये व्यक्ति को उन्हाने अपनाया उसके प्रति उनकी आस्था एव कतव्य दृष्ट्य हैं और इस बात के प्रमाण हैं कि एक परित्यक्ता नारी भी अपनी आत्मा म सती का सकल्प धारण कर सकती है । बुआ को इस व्यक्ति के सम्बन्ध म भी अधिक मुगालता नहीं है ये जानती हैं कि एक दिन इसका मोह षटेगा और यह अपने परिवार म चला जायेगा ।

मन प्रकार के ताविक सवाण का धाम्निविक रूप ता मम्भापण वान प्रक रण म विम्भार म निमा जायगा पर जहा निमान ही धमतिक बुटाप्रा एव मनावृत्तिया का प्रवाणन मिला हा, उह हम सवाण की परिधि म ही लन के धायन ५ ।

राजनीति एव मममामविक मन्त्रों की रचि म जनद्र के परवर्ती उप नामा म जयवधन मुक्तिबोध और धान्तर का विणिष् म्यान है । इन उप नामों में राजनीति का ताना-बाना षडो मूर्मता से बुना गया है, विशुद्ध राज नीति भी छाई है, बेह की राजनीति भी छाई है और नर-नारी की राजनीति भी छाई है । अपनी बात को एव उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना समीचीन हागा । मुक्तिबोध म सहाय और नीतिमा के धाच बातचीत चल रही है पर मैंने कहा राजनीति तुम देखती हा क्या छातर फन गई है । वह धनीति बन गई है । फिर उमम रहने म कालिख ही तो नगमी हाय क्या छाणगा ?

राजनीति कव धनीति न थी ? और तुम कह सकत हा कि दग का नम्बर एक बनन की तुम्हारे मन म स्पृहा नही रही ? इस स्वाहिण का नीति धनीति पर कभी तुमन ताला था ? मैं कहती हूँ एव य हार क है नीति धनीति हार का अपनाण क लिए तुम इन गब्दा का टटोन नाण हो और मरे सामने ऊचा उठा रह हा । पर स्त्री की और उमके प्रेम की छाख गब्दा क पारदेण सकता है । वह चुकी हूँ कि तुम आज्ञा हा । जाप्रा और अपन आदण क और कतव्य क माय रहा । धम ही जम आदमी बीबी-बच्चा क साथ रहना है । आराम की और पाबन्दगी की जिन्गी होगी वह और मुबारक हा वह तुम्हें । मैं राजनीति नही समझती हूँ तुम समझत हो । लेकिन कुछ है जा तुम नही समझत हा हम सब समझती हैं । राज भी समझती है ।

—यानी मुझे नम्बर एक बनन की कोणिण करनी चाहिए ?

—जहर करना चाहिए । अगर अबल दायम की भाषा मन म थी और उस भाषा ने अब भी तुम्हारे लिए अपना धय नही ला लिया है—तो । ५

प्रस्तुत पविनया म राजनीति क तत्व-दान की बात दा पाना क बीच प्रक त्ति हुई है । राजनीति की दुखण परिणति पर टमुण टपराए गए है । नालिमा सहाय का मह-वाकाया का जानती है और इसालिए वह उनकी रण का पकड पान म मन्म सिद्ध हुई है । पर स्त्री की और उसक प्रेम की छाख गब्दा के पार देख सकती है—इस पक्ति म नारी का आत्मविश्वास और प्रेम को सम मन की क्षमता दो-दूक गब्दा मे प्रकट हुई है । निम्न वाक्य म व्यग्य ध्वनि की

मार्मिकता बड़ी सटीक है—जाग्रो और अपन आदश के और वतव्य के साथ रहो, वैसे ही जस आदमी बीबी बच्चो के साथ रहता है ।' सहाय जब प्रति-ग्यम करते हैं ता नीलिमा का आत्मविश्वास एव सकल्प उपयुक्त पक्तियो म बड़ी सफलता के साथ व्यजित होता है नीलिमा का तार्किक रूप यहा देखते ही बनता है ।

समसामयिक सदर्थों के प्रति परवर्ती तीन उपयासो म विशेष जागरूकता पाई जाती है—जयवधन, मुक्तिबोध और अनतर । मुक्तिबोध मे वीरेश्वर के माध्यम से युवा आक्रोश अभिव्यक्त हुआ है । जयवधन म चूकि समसामयिक राजनीति की अभियोजना है इसलिए उसम भी यह सदभ उभर कर सामने आते हैं । किन्तु समसामयिक सदर्थों की सफलतम अभियक्ति अनतर म प्रकाश के माध्यम से हुई है । प्रकाश का एक उलझा हुआ नौजवान है जो कि विवाहित होने पर अपन अस्तित्व की स्वीकति चाहता है । वह अभी अभी काश्मीर से लौटा है, तो पिता उससे वहा के दृश्यो और जीवनाभियक्तिया के लिए बहुत आग्रह कर कुछ पाना चाहते हैं । प्रकाश कुछ बताने की स्थिति म नही है और पिता के आग्रह का उत्तर वह असयत रूप मे इस प्रकार दता है 'आप अपन को बहुत बुद्धिमान समझते हैं ।'

। —मैं सुनकर सन रह गया ।

कहकर कुछ देर वह चुप और शांत खडा रहा फिर बोला मैं जा सकता हूँ ?

और उत्तर म मुझे निरुत्तर छाडकर बिना अनुमति पाये वह सामने स बेषडक चला गया ।^१

एक और उदाहरण लीजिए । प्रसाद और गुरु आनन्द माधव के बीच प्रकाश को लेकर बातचीत चल रही है । इस सदभ म गुरु के उद्गार इस प्रकार हैं भ्रव के लडके बहते हैं विज्ञान से देख लिया है कि आत्मा कही नही है । जो है है । दाग बेकार है । हमम तृप्णा है वासना है तो है । अरुचि क विशेष पण देकर उसे हटाया नही जा सकता । व्यवस्था के नाम पर जा नीतिवाद सडा किया गया, लकोसला है । लकोसला उनका है जो खुद क लिए भोग और दूसरा के लिए समय चाहते हैं । प्रकाश अनेला नही है इसमे । प्रसाद और यह पीघ हमम स उगी है । प्रतिक्रिया है तो हमारी ही क्रिया होगी । प्रसाद सोची, उस पर जा तुमन लिखा है । मैंने कहा था कि अतिम सत्य पहुंचने के लिए नही हाता । तुम बुद्धि से उसी के पीछे हा । उस माग पर तुम जा रेखा स आगे बढे तो उसी का प्रतिपन है यह उत्पात विद्रोह । तुम जसे वीद्धिबो ने निमाग

मिणाहा है उनका — तुम जगित रहकर विचार की नाक में तुमने बचनी पदा की है उनमें कि उष्यन-मुषल व बिना के रव नहीं सकते । तुम बुद्ध वाम में हाने तो विचार की धार इतनी तीव्री न हानी तुममें ।

—मैंन कहा 'गाय' भाग टोक कहत है प्रसांग का भाप मभास 'नीजियगा ?

—मभासत में ज्याग प्रसार नहा जाना । दिमाग का उषान हाय व थाम में भाप बटन लगता है । पमीना हात बुद्ध उग भाप बनाय वह तो सत्र टाक हो जायगा । वह मरे पास भापगा क्या ? एक बार उरुटा ता क्रांति स वम बुद्ध करना वह क्या चाहेगा ?

—पर उगका विवाह हा गया है ।

—तुम भी प्रसांग वभी दक्षियानूस बन जात हा । धर नई विवाह गाभ ही नहा हाता कि भूत भाये उमग भी हाता है कि और उभातर । हम बाज व लाग जान उमे क्या समभत है । दगो इन हिप्पी लाग का । लडका स क्या उनमें लडकिया की सग्या कम है ? शूलतमी वहु हातर कार्द 'लाणवित्तिनी' भले हा मगिनी हाकर एसेट हा जाती है और इसमें गलत भी क्या है ?

उपयुक्त पत्तिया में युवा विवाह के सदभ में दो मित्रा की बातचीत प्रकट की गई है । इस वार्ता में नय युग की प्रवृत्ति को पकड़ने की एक सफ़ल उपाय है । नई और पुरानी पीढ़ा के मानसिक अन्तर का एक तज्जय विद्रोह का यहा अभिव्यक्ति प्रदान की गई है । इस प्रकार के समसामयिक सत्रों व प्रति जनेन्द्र एक वचारिक व नान आरम्भ में ही जागरूक रह हैं । अन्तर में यह जागरूकता अपनी चरम सामा का प्राप्त करती है । गुप्त प्रसांग से जब हिप्पी लाग की बात करने हैं तो जीवन की आधुनिकतम प्रवृत्ति का ही सकेत करने हैं । इस प्रकार के सवादा में एक तात्विक आधार भी हाता है । यह तात्विक आधार समसामयिक सत्रों का सप्राण बनाता है ।

समसामयिक सत्र की एक भिन्न भन्व 'रामदवरी और चारु की बात चीत में मिलता है 'धम्मा इनने सीध आकर मुझमें कहा कि उनका मैं प्यार करती हूँ । इसके लिए सजा दना चाहा ता सजा दा, माफी द सको तो माफी द दा । तुम्हारे व पति हैं इसलिए प्यार तुम्हारा फज हो सकता है । मरा फज नहीं है फिर भी प्यार है । इसलिए गायद पाप हो । तो मैं सजा व लिए तुम्हारे पास आ गई हूँ । कहती है कि तुम या तुम्हारी मा अपना हाथ स मुझे जहर तक दें तो उसी क्षण लाकर मैं मर सकती हूँ । मैं ता नहा द सको मा तुम चाहा ता द दो । और चाहा ता माफ कर दा ।

‘वावली तो नही हुई तू लडकी । तुम्हे लूटने आए कोई और मैं माफ कर दू । कह तो जा रही है प्यार करती हू । यानि, प्यार छोडेगी नही और फिर माफ कर दू ?’

चारू न कहा— क्या कहती हा अपरा ?’

हा माजी ‘प्यार मैं बताए कस छोड सकती हू ।’ फज हाता ता छाड भी देती । जो फज के पार हो गया है उसको कह भी दू ता बताइए कि कसे छूटेगा ?

रामेश्वरी ने कहा नही छूटेगा । तो सुन लो, एक म्यान म दो तलवार नही रहगी ।’

प्रस्तुत पत्तिया मे एक पुरुष और दो नारिया की प्रणय टकराहट को चित्रित किया गया है । मजे की बात यह है जिस पर खुद बीती है, वह तो उदार है, किन्तु भुक्तभागी की जो मा है उसम व्यवहार की दष्टि मे आनाश एव दो-दूक बात कहने की प्रवृत्ति है । चारू के हृदय-परिवर्तन की ये रेखाए पूण मनुष्यत्व की भलक देती हैं, और प्रेम की विवगता का भी प्रकट करती हैं । इस सम्वाद म एक गहरी एव तीखी अंतर्धारा है जो कि टूटते हुए हृत्था को जोडती है । यो इस कथन म अनंतर क भेष का चरम निष्कष भी है ।

इस प्रकार के अंत म हम प्रेयस प्रेयसी के सम्वादा की भी एक भलक देना चाहत हैं । ये सम्वाद अपने आपम दो प्राणो के अद्भुत तारतम्य का प्रकट करते हैं । इस प्रकार के सवादा म अधिकार भावना भी लक्षित होती है । एक उदाहरण लीजिए इतने म सामने से ऊचे सिवास मे एक युवा पुरुष कमर म आए । सहसा मुडकर अनिता न उनसे कहा, आमा ‘इंटोडियूस’ कराऊ, यह है जयन्त और जयन्त, मेरे मिस्टर पुरी, फिर फौरन बोली, देर न करा, बस चल पडो । फिर हा नही मिलेगा ।

मैंने कहा मुझे तो अभी काम है ।

—कोई काम-वाम नही—

उसने दफ्तर क दूसरे लोगा की तरफ देखा, लोग सभ्रम म सब खड हो गए थे । शायद उसे अपेक्षा थी कि काई आगे बढकर मेरे काम को अपने ऊपर लेने की सम्यता दिन्वाएगा । उसके चेहरे पर जमे था कि क्या स्त्री का पुरुष जाति क प्रति यह अधिकार नही है ? किन्तु किसी की स्वय-सेवा स्वत समझ नहीं पाई । मानो वह चकित थी विन्न थी । बोली, आप लोगा म से कृपाकर क्या कोई इनके काम का नही सम्भाल लेंगे कि यह मेरे साथ आ सकें ?

एक साथी ने तत्परता जताई और वह मुस्कराया ।

मैंने कहा 'नहीं यह ठीक नहीं होगा । मुझे क्षमा कीजिए ।

मिस्टर पुरी ने कहा—'हमको देर तो नहीं हा रही है डियर आई एम अफ्रीड ।'

प्रस्तुत उद्धरण में एक प्रेयसी की प्रेयस व प्रति अधिकार भावना स्पष्ट रूप में लक्षित होती है । यह अधिकार अपहरण की सीमा तक बढ़ गया है और अनिता जयन्त का बिना उनकी मर्जी के दफन करने निकाल ल जाती है । उसे अपने पति मिस्टर पुरी का भी कोई सकोच नहीं है । अनिता आधुनिका जो ठहरी ।

इसके भिन्न व सम्बन्ध हैं जिनमें कि प्रेयस प्रेयसी की अन्तव्यथा छत्रकी पड़ती है तुमने, जयन्त ब्याह क्या किया अब किया है ता ।

—गलती नहीं सुधर सकती ?

—चाहो तभी सुधर सकती है । चाहते हो ?

—अनीना !

—अपन का जलाए बठे हा दूसरा को जलान क्या बठ गए जयन्त ?

—मैं जानता नहीं था ।

—क्या नहीं जानत थे ।

—कि मैं बफ था ।

—बफ पानी होना है जयन्त । तुम पानी होना नहीं चाहत नहीं चाहत तो मरा पर दूसरे को मारते क्यों हो ?

—अनीना । — मैं पास सरक आया हाथ बढ़ाकर उसके बालों में अंगुलिया फेरने लगा । उसने बजन नहीं किया । वह हिली भी नहीं कुछ बेभाव-सी ज्या-की-र्या अधलेटी सी बठी रहा ।'

प्रस्तुत उद्धरण में प्रेयस प्रेयसी की अन्तरंग वार्ता है । इस प्रकार के सवाग में कहीं-कहीं तीव्री चाट भी रहती है । जलान वाला प्रसंग भी इसी प्रकार का है । चट्टी को लेकर जयन्त के मन में कटकाकीण स्थिति है । उस अस्वीकारन में व्यथा होनी है । किन्तु अनिता को भी स्वीकारा नहीं जाता । दो नारियों के ऊहापोह में कवि जयन्त का चरित्रत्व विभाजित हो जाता है, और वह सामान्य व्यक्ति जसा आचरण नहीं कर पाता । एक गहरी व्यथा आदि से अत तक इन दोनों के संबंधों में पाव पसारे बठी रहती है । प्रणय

प्रसंगों में इस प्रकार के चित्रण और इस प्रकार की मन-स्थिति जनेन्द्र के उपन्यासों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

सवादों की इन गलियों में प्रयुक्त भाषा गलियों का विवरण और उनकी प्रकृत मनोभूमियां

जनेन्द्र के पात्र जनेन्द्र की ही शब्दावली में बात करते हैं। हाँ उनकी शब्दावली बातचीत के दौरान एक प्रवाहशील रूप धारण कर लेती है। वही व्यंग्य विनाद, तो वही कटूक्तियां के भी दर्शन होते हैं। एक बात यहाँ दृष्टव्य है कि जसी स्वाभाविक ऊर्जा जनेन्द्र के आरम्भिक उपन्यासों में मिलती है, वह उत्तरोत्तर क्षीण होती गई है। उनके परवर्ती उपन्यासों में उनके सवाद जीवन से सप्लावित प्रतीत नहीं होते। एक दार्शनिक की जडता उनसे आती जा रही है और उनका जीवन रस सूखता जा रहा है कि यह जीवन रस अभी पूरा सूखा नहीं है। उनके सवाद में बातचीत की सृजक भूमिमा रहती है और स्थान-स्थान पर मुहावरों का प्रयोग से एक तीखापन भी आ जाता है। मनो विज्ञान की शब्दावली में पगे हुए उनके सवाद हिंदी कथा-साहित्य की विरल उपलब्धि कहे जा सकते हैं। स्वाभाविकता के नाम पर वे उर्दू अंग्रेजी या संस्कृत शब्दों से कोई परहेज नहीं करते। अन्तर में उनका अंग्रेजी प्रेम बहुत अधिक घनीभूत हो गया है। या उनके सवाद में लिली की ठेठ बोली का पुट सदा रहता है। उनके सवादों में एक प्रकार की 'स्क्रॉनिंग' की प्रवृत्ति भी है, जिससे सवाद पारदर्शी से प्रतीत होने लगते हैं। मन के अतल-नाहन गह्वरा की प्रवृत्ति को उनकी शब्दावली मूत करने में सक्षम है और यही हिंदी कथा साहित्य को उनकी सबसे बड़ी देन है।

सम्भाषणों के ढंग

सम्भाषणों के ढंगों का आधार भी लगभग वही है, जिन्हें हम सवाल के सदन में उल्लिखित कर चुके हैं। सबसे प्रथम हम गाहस्य जीवन से सम्बंधित सभाषणों को लेंगे। इस प्रकार का सभाषण में कोई-न-कोई गृहस्थ-जीवन की समस्या अपने मूलभूत रूप में प्रकट होती है। ऐसी ही एक समस्या विवाह को लेकर सुनीता और हरिप्रसन्न के बीच प्रकट हुई है जिसका विवरण इस प्रकार है

हरिप्रसन्न ने भाभी पर एक दम दया गई हुई कुंठा का अनुभव किया। पाया कि नारी का प्रागल्भ बढ रहा है। उसके भीतर का पुरुष प्रोज्वल हुआ। उसने कहा 'भाभी भूल न होगा। विवाह की बातें विवाहित के नियतमाशा हा मर नियत नहा है। भाभी जब तुम्हारे सामन हैं तब और भी नहीं है। तुम

जानती हा कि तुमने क्या पूछा है ? — वह पूछा है किमना जवाब इन मह में पाठकर बाद नहा हा गया है काई नहीं पा गया है । क्या मैं तुम्हें भी कह दूँ — चना हूँ जाया । नहीं नहीं कह सकता । नहीं इमनिय कह सकता कि मरा का नहा बना है । न काई जनन प्राया है न मैं जनाया है । तुम और तुम्ही । तुम पहनी बार भाभी बना हो और मैं नहा जानता भाभी हाना क्या है । मुझे पहन दो मरे लिए मर तुम हो । पयराया नहीं हा हा मर तुम हा । मुझे पहन ना वह मर मर निय क्या है ?

मुनीता न भटपट-सी मचा कर और नहीं ता घड़ी की घार दगकर बहा घाहा दार् बज गया । मुझे रागी चडानी है ।

रागी चणामोना लकिन धभा टहरो । मैं बनाऊ वह मर मरे निय क्या है ? उम पत्नी म क्या हागा जो गानी पतिव्रता हा । मुझे चाहिये एक प्रतिमा भी जो पतिव्रता चाह न भी हा पर घट्ट हा जो विपत्तिया म एने चमके जम घार घन म विव्रता । मुझे माता भी चाहिये मुझे गानी भी गानिय । लकिन मवम घषिव वह जा म्पूति की मत्र हा किमम प्रेम इतना हा कि हिमा न वह टर नहीं । जा ताल नहू बहता देम बहने दे । पर गानि का स्वप्न किमका घमण्ट रह । ना पताका उटाय और युवक किमक पीछ लहू की नयिया पार करते चन जायें ।

मुनीता ने कम्पित स्वर म कहा ओह—

टहरो भाभी मैं इमनिय विवाह नहीं करता कि मैं पत्नी नहीं चाहता । मैं सब कुछ चाहता हूँ सब कुछ । मुझे चाहिये महात्मग जिसम म प्रराण की किरणें फूटें । महाप्राणता का प्राण किमम म विवीण हा । — भाभी —

हरिप्रसन्न ने हाथ बटाकर मुनीता का हाथ थाम लिया ।

भाभी मैं वह दाय देम रहा हूँ । मैं वह चाहता हूँ । युवक बने चलें और जहा विजय है वहा पदचें । किसक भण्ट क नीच ? किसक म्मिन स उल्साहित हाकर ? किसक भ्रू निपण पर मतवाल बन ?—किसक कटाक्ष पर मचन कर ? उसक किमका मैं स्वप्न दक्षता हूँ ।

मुनीता का हाथ हरिप्रसन्न क हाथा म धमा ही रहा । मुनाता ने उम खीचा नहा । हरिप्रसन्न चाना भाभी मैं नहीं जानता भाभी का क्या होना हाता और क्या नहीं होना होना मुनीता ने अब अपना हाथ खीचकर कहा आह तीन बज गय । दक्षिय मुझे देर हा जायगी ।

हरि ने कहा चली जाना । लकिन मुझे अपनी बात अभी कहना है । "

प्रस्तुत आत्मसभापण मे हरि सब-बुद्ध कह देना चाहता है। भाभी का श्रोतापन केवल एक उपलक्ष मात्र है। हरि की मन स्थिति पर इसस पूरा प्रकाश पडता है क्योंकि यह सभापण आत्मोद्घाटनकारी (रिवीलिंग) है। विवाह के सम्बन्ध में हरि की धारणा यहा व्यक्त की गई है। यह एक ऐसी समस्या है जिसे अब तक टालता आया था किंतु आज उसे टाल न सकेगा। भाभी जो है, सुनने के लिए समाधान के लिये भी। भाभी में उसने 'सब बुद्ध के दर्शन किए हैं। कसर केवल यही है कि उसने गीता के उस श्लोक को याद नहीं किया जिसमें 'त्वमेव बधु त्वमेव माता' कहा गया है। सुनीता को खाना बनाने की जल्दी है किंतु हरिप्रसन्न है कि वह उसे सब-बुद्ध सुनाना चाहता है। वह उसे बार-बार ठहरा लेता है और बताता है कि नारी के रूप में उसे क्रांति की प्रेरणादात्री प्रतिमा चाहिए—ऐसी प्रेरणा, जो हिंसा के रक्त प्रवाह से भी उत्तेजित न हो और शांति का स्वप्न आँखों में आजे हुए बढती चले। हरि ने गीता के श्लोक की आरंभ यह सकेत किया है 'मुझे माता भी चाहिये 'मुझे दासी भी चाहिए। इस ध्वजाधारिणी प्रेरणादात्री नारी के सम्मुख युवका की विराट गति नतमस्तक है। उसके भ्रू निक्षेप पर, उसके कटाक्ष पर शत शत युवाशक्ति विचलित आन्दोलित हो जाती है। जब वह कहता है कि भाभी को क्या होना होता है और क्या नहीं होना होता' तो स्पष्ट ही वह भाभी की मर्यादा का उल्लंघन कर रहा है। उसके मन में भाभी को लेकर जो चोर बठा है, उभी की अभिव्यक्ति यहा है। उसके मन की धुँडी, जैसे सुनीता को लेकर खुलना चाहती है और वह सहज हो जाना चाहता है, अनागत रूप से, किन्ती अनागत शक्ति के बशीभूत होकर यह सभापण हरिप्रसन्न को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें उसके अवचेतन मानस की अभिव्यक्ति है। स्पष्ट ही इसमें सौन्दर्यमयी सुनीता का प्रभाव भी है, जिसने एक अनधीन्ही पीढा हरिप्रसन्न के मन में जगा दी है। प्रस्तुत सभापण में सुनीता की अभिव्यक्तिया केवल साकेतिक है, जैसे वह मूक जनता की प्रतिनिधि हो जो चहरे पर अपने मूक भावा को दर्शा देती हो। सुनीता की अस्पष्ट अभिव्यक्तिया ओह ओहा, ओ आदि इसी मूक जनता की भाव भंगिमाओं को प्रकट करने वाले गन्-सकेत हैं। यह सभापण जहा एक और ग्राह्य जीवन की मूल समस्या—नर-नारी सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है वही इसमें एक क्रांतिकारी के भावोच्छ्वास भी है। इसी कारण यहा हम विक्षेप शाली के दर्शन होते हैं जो वही-वहीं प्रलाप शैली के तटा का सस्पण करती है। इसमें एक प्रकार की गद्य वाक्यात्मकता भी है, जिसमें भावा का प्राजल प्रवाह दृष्ट्य है। एक क्रांतिकारी का पचचेतन जब खुलता है तो उसमें से इसी प्रकार की अभिव्यक्तिया फूटती है।

अवचतन की अभिव्यक्तिया किसी के वास्तविक स्वरूप का ममभन म बढी सहायक हानी हैं ।

गाहस्थ्य जीवन म सम्बन्धित सभापण के रूप म हम त्यागपत्र म एक उदाहरण देना पसन्द करेगे । तुमका लाज छानी है । लाज की बात हा है । लेकिन मैं जानती हूँ कि इस छान्नी का मुझम विरक्ति हा रही है और अपन परिवार की याद आ रही है । जब सबका छाडकर मुझे साथ ल चलने का उतावला था, तब भी मैं जानती थी कि थोडे दिना बाद इस लौकिक अपन परिवार क धीच आ जाना हागा । जानती थी कि इसी अवश अनुरक्ति म स एक दिन प्रबल विरक्ति का भाव पूरगा । जानती थी इसीलिए मैं उस साथ ल आई । वह बरखी का भाव अब गुरू हा गया है । उस अब चल ही जाना चाहिए । परिवार बहा अवला है । वह मुझे नहीं भेन सकता । मेरी कोणिग है कि वह मुझम उकता जाण । अपनी अवस्था मैं जानती हूँ । पेट म बालक है लेकिन एमी अवस्था म भी स्वाय की बात साचना अब ठीक नहीं है । मैं उस उमक परिवार म लौकिक कर ही मानूगी । अब समय आया है कि उसे इस बात की अवल आ जाए । अब उसका माह टूट गया है । वह जान गया है कि मैं उसकी सबस्व नहीं हूँ मैं बस एक वनजात व्यभिचारिणी स्त्री हूँ ।”

उपयुक्त उद्धरण म एक पीडिता नारी का यथाय कथन है । बध गृहस्थी म हनकर उसने जा नई गृहस्थी बसाई है उसकी अन्तिम परिणति के प्रति भी मृणाल जागरूक है । इस प्रकार के सम्बन्ध म आसक्ति एक सीमा के बाद विरक्ति का रूप ल लेती है । विरक्ति के अनुर कायल बाल क मन म फूटन लग हैं इसलिए वह किसी भी दिन मृणाल को अकेला छोडकर पुन अपनी पूर्व स्थिति मे पहुच सकता है । अपने सकल्प को मृणाल न इन गदा म प्रकट किया है प्रमाण इसी से कहती हू कि जब तक पास है तब तक वह पुरप अय नहा है । मेरा सब कुद उसका है । उसकी सेवा मे मैं श्रुति नहा कर सकती । पतिव्रत धम यही तो कर्ता है ।”

मृणाल का समपण भाव उपयुक्त पक्तियो म स्पष्ट रूप म परिलक्षित हाता है । उसन अपने नए दायित्व को भी पतिव्रत धम की सजा दी है ।

मृणाल के उद्गारा म उसकी प्रबल आस्था की भलक हम पाते हैं । इस प्रकार के स्थलो पर ललक व्यास शली मे काम लता है और उसके वचारिक तट मृणाल के जीवन के ओर छोर को छू नत हैं । य सम्भापण कुद्ध-कुद्ध आत्म

वधात्मक-से भी प्रतीत होते हैं।

राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित सभापणों के उदाहरण जयवधन मुक्ति-बोध एव अनन्तर म प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अपने कथन की पुष्टि में हम जयवधन उप-यास से आचाय का एक कथन देना चाहेगा 'ध्यान से वक्तव्य को दखाने तो व्याख्या की जरूरत न होगी। मैं खुद उस वक्तव्य का वकील हा सक्ता हूँ। एक पार्टी मेरी रिहाई का गोर मचाती है। वह पार्टी बध है और खुलकर काम करती है। जतलाना यह चाहती है कि मैं उनका हूँ। वह विराधी पार्टी है। विरोधी पार्टी के पास लोकतन्त्र में काफी वैधानिक हक होता है। जय इस चाल में न आना चाहे तो उसका क्या षोप ? पार्टी मेरे नाम पर अपनी ताकत बढ़ाती है यह सच है कि मैं पार्टी का नहीं हूँ न साथ हूँ न उस रूप में उससे सहानुभूति रखता हूँ। पार्टी वाले यह जानते हैं। पर मेरा जेल में होना प्रचार के निमित्त उहे अनुकूल पडता है। मेरी रिहाई की माग उह बल-सग्रह और लोक सग्रह के लिए एक मुद्दा देती है। जय मेरे प्रश्न को इस प्रपच से अलग रखता है यह ठीक ही करता है। उसका कहना है कि यदि व्यक्ति बधा निक माग का अवलंबन नहीं करता फिर भी निरन्तर राजदोष की बात कहता है तो वह राजनीतिक काम नहीं रहता प्रकट राजद्रोह हो जाता है। रचनात्मकता उसमें नहीं सहयोग की सभावना उसमें नहीं, इसलिए राज्य के पास उसमें और उसके विचारा से लाभ उठान का कोई उपाय नहीं रह जाता, फिर भी हान वाले अलाभ की सभावना कम करने का वक्तव्य राज्य के लिए अवश्य है इसीलिए जेल ही उसके लिए जगह है।"

प्रस्तुत प्रसंग में राजनीति की चर्चा अत्यन्त सुखद है। किस प्रकार विराधी दन बाने किन्ही घटना विशेष को अपना अमोघास्त्र बनाते हैं इसका आचाय ने स्पष्ट संकेत दिया है।

आचाय, जय का भली प्रकार समझने हैं इसीलिए उनके चेहरे पर असहानुभूति की कोई गिक्न नहीं। आचाय का तत्व दर्शन अत्यन्त पारदर्शी है। उसके भाव्यम से उह राजनीति की समस्याओं का मूल पकडने में कोई कठिनाई नहीं हाती। राज्य व्यवस्था में जेल का जो औचित्य है, उसका भी संकेत उद्धरण के अन्तिम अंग में है। इस प्रकार के राजनीतिक सभापणों में एक और तत्व को पकडने की चेष्टा रहती है तो दूसरी ओर समस्या के समाधान में भी कुछ उठा नहीं रखा जाता। तब और विवक की पुष्ट से इस प्रकार के सभापण अछ्द्रे भास राजनीतिक निवच का रूप ले लेते हैं। ।

समसामयिक सदर्थों की दृष्टि से हम अनन्तर के निम्न सम्भाषण का प्रस्तुत करना चाहेंगे। आज के उद्योगपति के मन में जो प्रवृत्तियाँ अपना सिर उठाती हैं उनका मार्मिक अवन प्रसाद और बनानि की बातचीत में हम मिलता है—हु—तो होगी कही—बया आदित्य को वेग में सुध नहीं है। यह आर्थिक स्पृहा और जीत मन पर तरह-तरह के तनाव ले आती है। इसमें ही किसी में अगर कभी भली लहर उठ आए तो उस प्रतिरोध नहीं मिलना चाहिए। मैं आदित्य का जानता हूँ। उपकार उसके बश का नहीं है। जो करता है लहर में करता है उपकार होता तो मैं ही कहता कि न लो पसा देना नहीं या कि कितनी आसानी से वह तुम्हें साफ मना कर गया था। तुमने तब हृत्पहीन माना हागा वही सहृदय हा पडता है। विजनिसे में धचारे का अपनी सहृदयता के लिए मौका नहीं मिलता हम सबको कृतज्ञ हाना चाहिए कि अपरा ने उसके हृत्प के उस तल को छुआ है और—बनानि इसको तुम गलत न समझोगी।”

प्रस्तुत पत्तियाँ में एक उद्योगपति की मानसिक रेखाग्रा का सतह पर लाने की चेष्टा है। उसके मन की प्रवृत्ति को गन्ना में बाधन की चेष्टा की गई है। इसमें उद्योगपति का मानसिक विदलेपण भी कह सकते हैं। जो व्यक्ति एक समय हृदयहीन प्रतीत होता है वही सन्दर्भ के परिवर्तित हो जाने पर सहृदय प्रतीत हान लगता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि कोई बात उसके हृदय को छू जाए, फिर तो वह सम्पत्ति को दोनों हाथों से उलीचने लगेगा। प्रसाद ने आदित्य के सबध में जो कुछ बनानि को कहा है उसमें हम पूजीपति जीवन के समसामयिक सत्य को पाते हैं।

इसी प्रकार प्रकाश के प्रसंग के माध्यम से वर्तमान युवक-युवतियाँ की प्रवृत्तियाँ को आलेखित किया गया है। इस सबध में जो उन्नाहरण सवादा के सिनसिल में दिया गया है वह ही सम्भाषण का भी उपयुक्त उन्नाहरण बन सकता है।

व्यक्तिक जीवन के प्रसंग में सम्भाषण का यह रूप आत्मक्यात्मक सस्करण का रूप ले लेता है। इसका एक विगुद्ध उन्नाहरण कल्याणा से लिया जा रहा है—‘शायद नहीं मालूम। मुझे शायद इस वक्त नगा है पर नगा मैंने किया है और क्या करूँ? एक वह है जो वही हिम्मत दिता कर मुझे छोड़कर चल गए हैं। एक यह है जिन्हें मैं पक्का जानती हूँ कि इन्होंने श्री की हत्या की है। एक आप हैं—जो किसी को कुछ सहारा नहीं देंगे। फिर मैं क्या करूँ? नगा करती हूँ तो कौन कहने वाला है कि क्या करती हूँ? धम भी किया है

पर करने दख लिया है। उससे क्या हुआ ? तवियत होती है कि सब पाड दू सब फव दू, मैंने ईश्वर म विश्वास किया। मैं उसकी राह चली, इस घडी तक चली। चलते चलते मेरे सामने पडते हैं यह देवलालीकर। बचकर मैं कहा जाऊ ? उनके सामने, पर और राह मुझे बंद है। ईश्वर की राह पर घनीश्वरता मिलती है तब मैं क्या करू ? इससे अब मैं कहती हूँ कि अच्छा, यही हो। मैं भी अब और कुछ नहीं चाहती। मैं निराली नहा हूँ। मेरा मन जानता है मैं लाचार हू। तो नशा ही करूगी। मैं सब कुछ भूल जाना चाहती हू। मैं नफरत करना चाहती हू—अपन स, सबने। ईश्वर प्रेम है और प्रेम प्रवचना है। इससे ईश्वर प्रवचना है।”

कल्याणी के वंयत्तिक जीवन की यह अन्तिम परिणति कितनी बरुण है। इस प्रकार क उद्धरण मे विक्षेप शली या प्रलाप शली के स्पष्ट दशन होते है। यह एक ऐसा सभापरण है, जिसमे कल्याणी के मन की आटी तिरछी रेखाए स्पष्ट ही उसके मन की अंत प्रवक्तियों को रेखाकित करती हैं। जब कोई नारी अपने जीवन के भिन्न मे विफल हो जाती है, तो उसके तक और आस्था की यही बरुण परिणति होती है। अन्तिम पक्ति का तक और उसका निष्कप तकशास्त्र के विचार विधेयका का स्मरण कराता है।

सभापरण के वग के अन्त मे हम प्रेयसी प्रेयस के सवाद की भी भलक देना चाहेंगे। मुक्तिबाध म नीलिमा और सहाय के बीच बातचीत कुछ सुन लें ता हज न होगा नीला ने हसकर कहा—‘हराम है क्यो यही ना ‘पर हराम से डर नहा है कि आराम से डरू। तुम नाहक डर रहे हो आराम से और सिफ इसलिए कि किसी न उसके तुक मे पास लाकर हराम शब्द रख दिया है।

यहा नीला खिलखिला पडी और आखा म चितवन डालकर बोली—‘मुझे देखो। मैंने सब गदो को छोड दिया है, इसलिए कि जिदगी को अपना सबू। पूल क मानिद तुम मुझे बताते थे, और मानूम है तुम इस बक्त किसके मानिद दीस रहे हो ? वह सकते हो कि मैं—तुम्हारे लिए बकार हू ? नहीं हू बेकार, तो इसलिए नहीं हूँ ? इसीलिए कि पैसे की कमी नहीं है चुनाचे छोटी मोटी फिन, मुभम दूर रह जाती हैं और मेरी तदरुस्ती को जरा भी कुतर नहीं पाती और मैं खयाल की ऊचाइयो पर पहुच सकती और ठहर सकती हू जो तुम्हे पसंद है।”

प्रस्तुत वार्ता म नीलिमा के मुक्त दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हैं। वह अपने

रामाटिक दान को पूरे सदभों म प्रकट करती है और अपन उनत स्वाभ्यय के रहस्य पर भी प्रकाण डालती है । आधुनिका नारी का जीवन-गान उसक उद्गारा म छनका पढना है । आराम हराम है ।—यह नाग युग-गुरप नेहरू न निया था, किन्तु नीलिमा का इम नारे म सिवाय तुन क और कुठ शौचित्य प्रनीत नहीं हाता । वह समभती है कि यदि हम स्वस्य रहना है और जीवन का उपभोग करना है तो हमारे लिए आराम भी एक अनिवायता हा जाता है । नीलिमा का 'आखा म चिनवन डालकर वानना उमक सौभ्य की गरिमा का और साय हा चचलता को प्रकट करता है । यह सच है कि जिन्गी सिद्धान्त क महार नहीं चलती उसका ता मुक्त प्रवाह है मुक्त प्रवाह म ही उमक अतरग सिद्धान्त अन्तर्निहित हैं । कभी सहाय ने नीलिमा को पून क मानिंद बतलाया था अथात् उमकी ताजगी मटक और कोमलता प्रेरणाकारा हैं । अपन को पून के मानिंद बतनाकर नालिमा ने प्रश्न पूछा है कि सहाय किसक मानिंद दीव रह हैं—इम प्रश्न म व्यग्य की मूक प्रतिध्वनि है और एक हवा-मा आमरण भा है । नीलिमा न छोटी माटी पिना को चूहों क समान बताया है जा कि तदुस्मा का अन्तर ही अन्तर कुतरती रहती हैं । चूहो की बात कुतरन के मकन स ही स्पष्ट की गई है चूहा का वही नाम नहीं आया है । चूकि चूह तदुस्मा को कुतर नहा पाय इमलिए नीलिमा खयाला की ऊचाई पर पहुच पाई पहुचा हा नहीं बहा टिकी हुई भी है । सहाय का उमके विचारा की यह ऊचाइया रचिकर प्रतीत हाती हैं और वे उमस ताजगी प्राप्त करते हैं । इस विवरण मे एक भूम चित्र भी विद्यमान है, कि तदुस्ती का एक ऊचा पहाड है, चूहे उस पहाड की जड मे मुह मार कर अपने दांत ही तोड सकते हैं, उसका कुछ बिगाड नहीं सकते । पहाड अपनी ऊचाई में मौन खडा हुआ है और उसक ऊपर का बातावरण अत्यन्त ही जीवनमय, स्वच्छ एव ताजगी प्रदान करने वाला है । इस प्रकार की अभिष्यक्तियों को गद्य में रूपक का उदाहरण कहा जा सकता है । इसी प्रकार पून के मानिन्द म उपमा की सहज भनक देखी जा सकती है ।

जैनेद्र के सभापणा म—उनकी दानिक मन स्थिति का बडी स्पष्टता से उद्घाटन हाता है । कोई भी पात्र जीवन क किसी प्रमग को लेकर जसे उम अपन विचारा की चिमटी म पकड लता है और उमका अपनी अन्तर्दृष्टि स एमा मनीनिंग प्रस्तुत करता है कि चित्र का अतरग एव बहिरग दाना ही वाक्या की सीमा म आवद्ध हा जाते हैं । एसा प्रतीत होता है कि लखक एम जीवन प्रसगा की ताक म रहना है । उसे जहा भी इसका अवसर मिलता है वह उमका पूग उपयाग करता है । कभी-कभी इस प्रकार के सभापणा पत्रा म भा प्रकट होने हैं कभी-कभी वे गद्य-काव्य का रूप भी निय रहत हैं । अनन्तर म अपन

ने चारू को जो चिट्ठी लिखी है वह इस दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। इसकी कुछ वानगी लीजिये—‘चारू, हम स्त्रिया के शरीर के प्रति पुरुष में बड़ा लालच होता है। वह हममें अपने को खोने को आतुर रहता है लेकिन उससे पहले चाहता है कि स्त्री भी अपने को लेकर उसमें हो आये। पुरुष की यह लालसा स्त्री की शक्ति बन सकती है चारू बसतों कि ऊपर से चाहे जो दीने भीतर से ठडी बनी रहे मुझे ठडी होने की जरूरत नहीं होती। विलायत में इतना कुछ देखा भोगा है कि अब चाह उपजती ही नहीं—और चारू इस सब और हम सब के पार ईश्वर है। असल में वही है उसमें ही सब जीते मरते हैं। जब सोचती हू कि तुम्हारी अपराधिनी हू तो जी होता है कि तुम्हारे आगे खुली-नगी हो जाऊ। जो जितना कपडा में है उनना दुखी है। जितना निरावरण है उतना सुखी है। तुम्हारे आदित्य को मैं प्यार करती हू। जिसे इतना कष्ट दिया है, तुम्हीं सोचो उसे प्यार करने से कस बच सकती हू। उस कष्ट में मुझे ब पीट सके, मार डालन तक के बिनारे आ गये ता उसके लिये क्या उनकी वृत्तज्ञ होने से बच सकती हू। पर उनकी चाह मेरी निपट ठडी वृत्तनता से लौटकर पहल चाहे उनको घायल कर पीछे भरपूर और सम्पन्न बनायेगी इसका मुझे विश्वास है। तब तुम देखोगी कि तुम्हारा पति तुम्हे इतना मिला है कि अब तक नहीं मिला होगा।’”

प्रस्तुत पत्र में नर-नारी सम्बन्धों का विशद वर्णन है और एक प्रकार से अपनी सफाई भी है। यह पत्र इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ कि चारू के मन का सत्र मल धुल गया और वह अपरा के प्रति शकालु के स्थान पर स्नेहालु हो उठा। यह पत्र ही अनन्तर की सबसे बड़ी उपलब्धि है क्योंकि इसी में लेखक के उपवास लेखन का उद्देश्य अतिनिहित है। पश्चिम में भोग की अतिशयता के उपरांत अब अपरा स्वदेश में आकर विशुद्ध प्रेम के महत्व का समझने लगी है—ऐसा प्रेम जिसमें इन्द्रियों का कोई लगाव न हो और जो केवल मानसिक भावना के रूप में प्रस्फुटित हो। सम्पूर्ण जीवन चक्र को पार कर वह ईश्वर तक पहुंच सकी है। यही उसके जीवन का पूणत्व (फुलफिलमट) है। इसी पूणता से उसने चारू के अधूरेपन को पूरा किया है।

सुनीता में ‘ओ तू’ के सदम में हरि के चित्र को लेकर जो गद्य-काव्य लिखा गया है, वह भी इसी प्रकार नेत्रोन्मीलनकारी है। उस चित्र में जैसे हरिप्रसन्न के मन की घुण्डी खुल गई है और वह अपने आप को न केवल स्वयं ही देख पाया है, बल्कि दूसरा को भी दिखा पाया है। जिस कलाकृति के साथ हरिप्रसन्न

नि रात लगा रहा उमी म उमकी जीवनाभिव्यक्ति है । यह चित्र श्रीकांत की दृष्टि म जा इतना महत्वपूर्ण साबित हुआ है वह अकारण नहीं है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि य पत्र, ये गद्यकाव्य और यह सम्भाषण लेखक क महत् उद्देश्य और उमक जीवन-रंगन को प्रकट करन म एक उन्नतनाय भूमिका प्रस्तुत करत हैं । साधारण बातचीत म जा बान प्रकट नहा हा पाती वह इस प्रकार क सम्भाषणा म ब" सटाक रूप म न कवल प्रकट हा हानी है वकि प्रबुद्ध पाठक को अपनी गरिमा स अभिभूत भी कर लना है ।

शैली के मनोवेगात्मक रूप तथा स्थिति

मूल विषय पर आने से पूर्व यह उचित होगा कि हम शैली और मनोवेग को परिभाषित करें और इनके परस्पर संबंध का निर्धारण करें इसके उपरान्त ही अनेक के उपयोगों में विभिन्न मनोवेगों का जो रूप मिलता है उसका विश्लेषण एवं वर्गीकरण सम्भव हो सकेगा। शैली के संबंध में भारतीय साहित्य शास्त्र में अधिक विवेचन नहीं मिलता बल्कि 'शैली शब्द' का प्रयोग भी वहाँ नहीं है आरम्भ में रीति के अंतर्गत शैली का विवेचन मिलता है। काफी बाद में शैली को लिखने के उग के रूप में परिकल्पित किया गया है और उसके तीन भेद बतलाए गए

- (१) व्यास शैली
- (२) समास शैली
- (३) प्रलाप या विक्षेप शैली

व्यास शैली में वेदव्यास के महाभारत की तरह विषय को विस्तार प्रदान किया जाता है समास शैली में सामासिकता की प्रधानता है अर्थात् वात का सक्षिप्तता के साथ प्रस्तुत किया जाए। इसमें गागर में सागर भरने का प्रयास रहता है विक्षेप शैली में भावावेग की प्रधानता रहती है इसे प्रलाप शैली भी कहा गया है अर्थात् लेखक किसी भाव विशेष से परिचालित होकर उसके संबंध में जो भी उसके मन में आए उन्मुक्तता से कह शैली का यह विवेचन विशेष रूप से निबंध-साहित्य के सदर्भ में किया गया है और उसी सिलसिले में उसके तीन गुणों की भी परिकल्पना की गई है

- (१) आज
- (२) माधुय एव
- (३) प्रमात्

गुणा की बात कविता व मदम म अधिव समीचीन प्रतीत होती है। आज गुण व अन्नगत वीरोन्नाम की अभिव्यक्ति हानी है और पात्र व उत्साह की अभिव्यजना रहती है। माधुय व अन्नगत कोमल एव मौम्य भावा को विने पता प्रान्त की गर् है और इसम योवन और सौम्य का विगय रूप स प्रति पान्न हाना है। प्रमात् गुण म दबी व प्रमात् की तरह एक प्रकार की सगमता और मरकी प्राप्ति का भाव अन्ननिहित है। जो बात जिस रूप म कही जाए उम पाठक भी निर्भान्न हाकर उमी रूप म ग्रहण करे यह प्रमाद गुण का अतरग लक्षण है स्वाभाविक ही है कि इसम सरनता एव सहजता का अधिव महत्व निया जायगा।*

पाश्चात्य साहित्य मे गनी के सम्य म दो मत विनेप रूप म प्रचलित हैं एक तो बफन का मत है कि गनी ही व्यक्तित्व है और दूसरा चस्टर फील्ड का कथन है कि शली विचारो का परिधान है। पहल मत का अधिव महत्व प्राप्त है। इसके अतिरिक्त अय परिभाषाए इस प्रकार हैं

- (क) जब विचार को तात्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो गली का उन्म होता है। (जेटो हिने साहित्य-बान — डा० धीरेद्र वर्मा)।
- (ख) गली स बाणी म वणिष्टय का समावग होता है। अरस्तू (अरस्तू का काव्य शास्त्र डा० नगंद्र)।
- (ग) किसी नखक की गनी उसने मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है। (गटे न यू डिक्शनरी आफ धाट टी एडवड स)
- (घ) गली आत्मा की मुखाकृतिशास्त्र है। (गापनहावर एनसाबलापीडिया आफ ब्रिटैनिका खण्ड २१ प० ४२८)।
- (ङ) इस अय म शली कलात्मक विनेपता (या गुण) या अभिव्यजना गक्ति की पर्यायवाची है। (ग्रीनी आट स एड आट त्रिन्सिज्म)।

-
- * (क) ओज समास भूयस्त्वय (समासा की अतिगयता को ओज कहा गया है।) —भाजराज।
- (ख) चित्तद्रवी भावमय आह्लाद माधुयमुच्यत (भावमय और रसगभित गली म माधुयगुण की अवस्थिति है।) —विश्वनाथ।
- (ग) प्रसिद्धाय पदेव यत् स प्रसादो निगद्यते। जहा प्रसिद्ध अर्थो की अभिव्यक्ति प्राप्य है वहा प्रसाद गुण माना गया है। —भाजराज।

- (च) गली भाषा की वह विनोपता है जो लेखक के विविष्ट भाव या चिंतन को ठीक ठीक रूप में प्रकृत करती है। (मिडिलटन मरी द प्रानलम प्राफ़ स्टाइल प० ७१)।
- (छ) शली वह साधन है, जिससे द्वारा मनुष्य दूसरे से सम्पर्क स्थापित करता है माहिरियक गली वह माधन है जिससे एक व्यक्ति दूसरे को उन्गीप्त करता है। (एफ० एल० ब्लूक्स स्टाइल प० ४६)।

इन सभी परिभाषाओं का विश्लेषण एवं सश्लेषण करत हुए डा० गणपति चन्द्र गुप्त न एक सबसम्मत परिभाषा देने का प्रयत्न इस प्रकार किया है 'व्यक्ति विषय भाषा एवं प्रयोजन के विविष्ट के अनुसार अभिव्यजना-पद्धति में जो विविष्ट आ जाता है वही शली है। (माहित्य विधान प० २१६)

इस प्रकार यह परिभाषा वामन की उम परिभाषा व काफी निकट आ जाती है जिसमें उन्होंने कहा है कि साधारण अभिव्यजना से हटकर जो भी भिन्न या पथक अभिव्यजना होती है वह रीति (शली) है।

ससृष्ट काव्यशास्त्र में 'गली' के निकटवर्ती पर्यायों के रूप में वक्ति प्रवृत्ति और रीति है। वक्ति स तात्पर्य है मानसिक तत्त्व उमका व्यक्त रूप प्रवृत्ति है प्रवृत्तिया का समूह शली है और शलिया का सामायीकृत रूप रीति है।

यह बात उल्लेखनीय है कि ये सारी बातें निवध-माहित्य को ही दृष्टि में रखकर कही गई हैं। जब इसी बात को हम उपयाम साहित्य पर लागू करना चाहें तो हम समायोजन की कुल कठिनाई भी हा सकती है। उपयाम की शली के अन्तगत उसका गठन-चयन वाक्य विधान, अनुच्छेद रचना मुहावरा एवं लोकांतियों का प्रयोग अघ्याभा का वर्गीकरण आदि आदि अनेक बातें आती हैं। इसके अतिरिक्त उपयाम आत्मकथात्मक गली में लिखे जाते हैं, डायरी शली में लिखे जाते हैं वणनात्मक गली में लिखे जाते हैं, भावभिव्यजक शली में लिखे जाते हैं और तक एक तथ्यपूण रूक्ष शली में वज्ञानिक उपयाम लिखे जाते हैं या, उपयाम का शिल्प विधान या उसकी टेकनीक भी शली के ही अन्तगत आ जाती है।

मनावेग मन के व वेग हैं जो किसी परिस्थिति विनोप में कारण विशेष से समुत्पन्न हात हैं। इन मनोवेगों का हमारे जीवन में वडा महत्व है। य ही वाय शक्ति व मून प्रेरक हैं और इन्ही के तान-वाने से किमी भी उपयाम का कया का पट बुना जाता है। प्रेम, ईष्या, क्रोध भय करुणा आदि इनके अनेक रूप हैं। कयाकि उपयाम जीवन की प्रतिवृत्ति है इसलिए उपयाम में भी मनावेगों का वही महत्व है जा कि साक्षात् जीवन में। प्राचीन भारतीय साहित्य शास्त्रिया न मनोवेगों को राग विराग के अन्तगत लिया है वस्तुतः मनोवेगों के

रेखांकित करता है वही उसारी सागरी भी तरलता व मानिन्ध्य म प्ररट हा जाती है । तरनना श्रीकात के घोणय की प्रतीक है ।

त्यागपत्र म हम एग उगाहरण देगे त्रिगम लगव की दागनिरता जीवन व मोनिक तत्या का उद्पाटन करती है । इग प्रकार व रूपक थापन म उपयासाकार की विगष अभिरति है समन्तर है । अपनी नहा कागज की हागी निय हम भी उसके तिनारे तिनार मन व निय घा उतर है । पर तिनारे ही कुगन है घाग घाट नहीं है । त्रिमत वान घाग भी बढत है । बढन दूवन है बुद्ध तरन भी दीगने है । पर अधिक्तर ता तिनार पर गास लन भर जगट व निय दीन भगट और हाय-हाय ममान म लग हैं । नही ता व और करे नी क्या ? नडन भगटन अपने छाट म वृत्त की परिधि म घूम सत है और इस भाति जी लन है । सागर तीना धार कम उल्लाम म सहरा रहा है । पर वट सह राता रह—हम अपने पथ है उधर करन का हमारी घास साली नहा है ।

और कम करे उधर घाग उस सागर की सहरा का घनत बहा है ? बूल बहा है ? पार बहा है ? वही पार नहा है वही तिनारा नही है । घासा को टहरान व निय का सहारा नहा है । तितिज का छार है जहा घागमान समन्तर म घा मिनता है । बहा नीता अधियारा दीगता है । पर छोर बहा भी नहा है । बहा छोर तो हमारी अपनी ही दृष्टि का है अथवा बहा भी वसी ही घनून विन्तीणता है ।

घाट ! उधर हम न बढे । घाह नहा है । जल अगम है । मुनने-बोलने का बहा कौन है ? जो है अपने पराथ सब घासपास तक है । बहा तो सनाटा ही सनसनाता है । न उधर न बढेगे ।

तिनार पर ही रह जहा पर धरती स छू जाते हैं । वही तक रह जहा हमारा सगर धरती का पकड न और हम टहर सकें । बस उसक घागे जब तब समन्तर व अगाध फनाव की धार हम देख लिया करें यही क्या कम है । इतना भी बहुत है बहुत है । इससे भी भीतर कप भर आता है । चित्त सहमा रहता है । गिर चकरा घाता है । भला नहीं जाता । जितनी भेल सके उतनी ही विराट की नाकी ल ल और अपनी धरती व पास-पास तिनार तिनार सबसे उलभन-मुनभत निय चल । यही उपाय है । यही उपाय है । यही मानव जीवन है ।

समन्तर के रूपक स जीवन की विराटता का बोध हाता है । नन्हा कागज की डागिया स एक और वचपन की चचलता का बोध हाता है । तो दूसरी धार

मानव जीवन की क्षुद्रता का। इसके पश्चात् मानव-जीवन की विभिन्न श्रेणिया की परिगणना की गई है। जीवन के इस लहराते हुए रूपक से सामान्य मानव को कोई सरोत्तार नहीं। वह इससे असंपक्व अप्रभावित है। भित्तिज म आसमान और समुद्र म मेल से जीवन के मिलन भाव की व्यजना की गड है। जल की अगमता एव अथाह स्थिति स जीवन का लेकर भय की कल्पना की गई है। इस ससार के नामे रिस्ते कितने सीमित हैं इसका सकेत है। समुद्र के अगाध फलाव की ओर देखने से जीवन के विस्तार का सकेत है। इसी के माध्यम से विराट की भाकी ली गई है। इस प्रकार यह समुद्र का रूपक जीवन की विविधता एव विशालता का परिचायक है और इसके माध्यम स लेखक अपने दार्शनिक उद्घापोह का परिचय देता है। इसी समुद्र म बुझा के डूवन-उतरान मे और प्रमोद के द्वारा बुझा को बचाने से दोना प्राणियो के पारस्परिक सबधो की स्थापना हो सकी है। अतत इस बात के सकेत भी मिनते हैं कि वूद का अतिम आश्रय स्थल समुद्र है। इसे कुछ आलोचका ने गस्टाल्टवाद की व्यजना भी कहा है। उपयासकार की इस प्रकार के बखाना म गहरी अभिरिचि है। यह इस बात का द्योतक है कि उपयासकार दशन के आर-धार को पूना हुया अपने जीवन दशन की भी अभिव्यक्ति करता है।

डा० श्यामसुदर दाम ने साहित्यालोचन म भावो के तीन प्रकार बताये हैं। (१) इन्द्रियजनित भाव (२) प्रजात्मक भाव और (३) गुणात्मक भाव।^१ उप-युक्त उद्धरण प्रजात्मक कोटि म आता है। इसम प्रजा के माध्यम से जीवन को समभने का प्रयास है। इस प्रकार के भाव हम जनेद्र व प्रत्येक उपयास म पर्याप्त मात्रा म पा सकते हैं कभी-कभी ता ऐसा होता है कि कथा का सूत्र गौण पड जाता है और यह विवेचन ही प्रधान हो आता है कल्याणी से हम एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जिसम व्यक्ति के आध्यात्मिक भाव की व्यजना है। कल्याणी म कथासूत्र के नायक की पत्नी कल्याणी के आध्यात्मिक भाव को इस रूप म प्रकट करती है उस वकत तो मुझे कुछ गलत नहीं लग रहा था बकि मुझे ही उनकी श्रद्धा छूती थी। उहे अपन जगन्नाथजी की बडी लगन है। अपन मजान के कमरो के नाम भी सब उन्हनि उसी ढग से रख सिये हैं। बताया कि यह जगन्नाथजी का बठकखाना है वह अन्नपूर्णाजी का भण्णार है इत्यादि। मैंने उसस पूछा था कि फिर तुम्हारा क्या है सब कुछ तो जगन्नाथजी और अन्नपूर्णाजी का हा गया ? उस समय उहने खूब गम्भीर होकर बूडाघर को दिखाने हुए कहा कि यह मेरी जगह है। जब मैं जगन्नाथजी को भूलू तो

वस यही पटकन लायक मुझे समझा जाये । मैं उम बस उतक मुझ म इस बात को सुन कर हस मित्तुल नहा मनी थी बुद्ध एमी सोम्यता उनक चहर पर थी । इसी स कह दती हूँ कि लक्षण भन नहीं है ।

जगनायजी व प्रति कल्याणी की यह अतिगय धनुरक्ति व्यक्तियन जीवन की विपनना का ही रूपांतर है । मार जीवन को जा उसने जगनायमय कर लिया है यह अपन ही दुगने हुए घाबो पर मरहम उगान व ममान है । कल्याणी बूडापर का जब अपने जगह बताती है ता उसम यही व्यजिन हाता है कि उमना अपना जीवन बडा पातरी गय अपम रहा है । बूडापर म अधिन वह अपने व्यतिगत का बुद्ध नहीं ममभती । यह एस वान का दानक है कि वह अपने जीवन की बमी को जगनायजी म पूरा कर रती है । कल्याणी का यह भक्ति भाव अनायास नहीं है, उसने पीछे उसक जीवन की सोसली पृष्ठभूमि है । उपयुक्त मनाभाव गुणात्मक कोटि म आते हैं । कल्याणी का व्यक्तित्व आचन रहस्यात्मकता एव आध्यात्मिकता म आच्छन है । इस प्रकार वह भारत की अयोग्य नारी का ही प्रतिनिधित्व करती है ।

सुमदा स हम एक एक मनोभाव को लेंगे जो इन्द्रियजनित भाव की कोटि म आता है । इस उद्धरण म पुण्य की नारी को प्राप्त करन की विह्वलता दृष्टय्य है ठोड़ी पकड कर उन्हाने मेरा मुह ऊपर किया । मेरी आंखा म क्या दृष्टगत थी ? फिर ठोड़ी उन्हाने द्वाड दी । मेरा मह उसी तरह ऊपर की ओर टिया रह गया । तब उन्हाने भुव कर निचल पड मेर बाँय हाथ को ऊपर उठाया और दोना हाथा म नकर उस दबाते और कुचलते हुए कहा मैं क्या कर सुमदा, बता तू मैं क्या करू ?

उन गच्छा की व्यथा मुझ भीतर तक चीर गई और मैं चुप बनी रही ।

तभी एकाएक वे गिर आये और मेरे घूटना म सिर डानकर मुक्क ऊठे—
मैं क्या करू सुनी । क्या करू ?

मेरे भीतर एक भी क्षण किसी आर स बनकर नहीं उठ सका । इस प्रकार गल म पड उस पुरप के बाला का सहलाती हुई मैं बठी रह गई । गायद व्यथा स्वय ही सात्वना है । याद नहा कि मेरी आंखा से आसू बहे कि नहीं । बहे हो कि न बहे हा दोना ही बातें एक है । लकिन मेरी गोद म काफी आसू गिरे । और मैंने पाया कि अपने दोना हाथा मे धीम से उस मस्तक को दोना बनपटियो पर से सभाले हुए मैं बड प्यार से कह रही हूँ उठो लाल उठो ।

वह चहरा उठा । आँखें मेरी ओर हुई आमुघो से धुली वे आस । और

मुह पर लज्जा से लाल, एक फीकी, आकुल तृप्त मुस्करावट ।

उस समय मालूम हुआ कि पुरुष दुदम और दुद्वय कभी कितना निरुपाय है ।^१

उपयुक्त उद्धरण के आरम्भ में लाल की विवशता का चित्र है । उसका भावावग तीव्र रूप में यहाँ व्यक्त हुआ है । लाल के भावावग में और सुखदा के उसके बाला को सहलाने में इन्द्रियजनित भावों की अभिव्यक्ति है । अंतिम पंक्ति में पुरुष की निरुपाय मन स्थिति अपनी चरम सीमा को प्राप्त करती है और यही शेक्सपीयर के उस कथन की सत्यता प्रमाणित होती है कि नारी पुरुष की सबसे बड़ी कमजोरी है । सुखदा के सान्निध्य से लाल को गहरी मनस्तृप्ति प्राप्त होती है । उसका पौरुष उसकी दुःमनीयता और उसकी दुद्वयता जैसे नारी के निकट द्रवित हो जाते हैं । इन्द्रियजन्य भावों का यहाँ विशाल वणन है ।

विवश से हम एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहेंगे, जिसमें प्रकृति भी मानव के तीव्र मनोवेगों की साक्षी बनी है । इसमें वातावरण की विचित्रता और शब्दात्मक वा मार्मिक संकेत हैं । कमर में ऊपर एक रोशनदान था और नीचे की तरफ एक खिड़की । खिड़की बंद थी और रोशनदान बंद न हो सकता था । हल्की सर्दी के दिन थे । बाला पाँच शुरु ही हुआ था । चाद शायद निकला न होगा । या उंचा न चढ़ा होगा । चादनी अंदर न आ रही थी । जितने पड़ा रहा पर नींद न आती थी । सिर दुखता-सा लगता था । वह पड़ा रहा, पड़ा रहा । नींद जैसे भाग गई थी और सिर चकराता था । उठकर उसने खिड़की खोली । खोलते ही हवा का एक भीठा झोका उभे लगा । वह कुछ देर हवा पीता वहाँ खड़ा रहा । आसिरे आकर चादर सिर तक ले पड़ गया । कोशिश की कि करवट भी न ले । आध घण्टे तक उसने करवट नहीं ली । पर नींद पास न आई और सिर की चकराहट बढ़ती गई । अब करवट ली और सिर कसकर आध घण्टे उठी दूसरी करवट पड़ा रहा पर कुछ लाभ न था । ऐसा कितना समय बीता पता नहीं । चादनी बाहर हो, तो भी अंदर न आई थी । खिड़की पीची थी और उसमें स निश्चय न हो सका कि चाद आसमान से उतरा कि नहीं । मानो उसे चाद की बहुत आवश्यकता थी । वह है, मिट नहा गया है इस खबर की बहुत आवश्यकता है । माना वह भ्रंश है और भ्रंश गहरा है इससे चाद चाहिये फौरन, फौरन चाद चाहिये नहीं तो भ्रंश लील जायगा ।

उपर की पंक्तियों में जितने का उद्दिग्ध मन स्थिति का एक मार्मिक चित्र

६ सुखदा पृ० १०२ द्वितीय संस्करण, १९६१ ।

७ विवश पृ० १७८-७९, दूसरा संस्करण १९५७ ।

है। उद्विग्नता मन म ही नहीं है, बल्कि सिर भी चकरा रहा है। मन एव शरीर दाना ही व्यथित एव विक्षुब्ध हैं। चादनी की व्याकुलता स प्रतीका हा रही है। निद्रा की अपभा है, पर मन के तनाव के कारण नींद पास नहीं फन्क रही। जितेन का एसा अनुभव होना है कि जम यह अघकार उसको लील जायगा। यहा मनोवेग एव प्रकृति का अद्भुत सामजस्य है। प्रकृति जहा एक द्वार त्रास देती है वही कभी-कभी उसमे चुनौती भी मिलती है। मन के भीतर जो कुछ होना है वह बाहर आ निकलन के लिय छटपटाता है। जननद्र इस प्रकार के भाव सश्लिष्ट वणन क कुशल पंडित है। इस लिंगा म अनेय का छाडकर और कोई कलाकार उनक सम्मुख नहीं टिक सकता।

व्यतीत स एक एस उगाहरण का चुना जाए जिसम भावनाआ का विशेष है। एसी स्थिति म उपयोगकार छायावाणी कविता का ताना-बाना बुनन लगता है और वह नाव और उसके मस्तूल क प्रतीक स मन की किसी स्थिति विशेष पर प्रकाश डालना है अब मन की बात कहता हूँ हूँ ता कवि ! पर आदमी भी हूँ। भाव विभार हाकर बाहर की सब ठास सत्ता को घूमिल कुहाम म परिणत करके उसम स सब चुनौती और सब सधप छीनकर खीच रहना सब काल सभव नहीं है। चुनौती मिलती भी है। तादात्म्य सग सभव नहीं होता है। कभी उठने और करन और जूमने का भी जी हाना है। करना सब अकविता है मानता हूँ। लेकिन क्या किया जाए वह भी आदमी म है। चन्द्रकला को देखकर नितान्त इस मुक्त सोय हुए का भी माना चोट देती हुई चुनौती मिली। मैं उस चुनौती को नहीं माना माना वही भीतर का भीतर दबा लिया। प्रकट म उसी सहज भाव म चलता रहा। लेकिन ऊचा मस्तूल करके नरे पालों से उडती जाती हुई वह नाव कविता क बादल पर भी प्रतिबिंबित हो आती।^१ हठात् कहता हागा जाने दा। कहकर बाटला को अपने आसपास और सघन बना लेता और तीन हा जाता। लेकिन जीवन क चन-तल पर वह इकहरी सी नाव बिना कुछ जान अपनी मफेण्ड पालें हवा स फहराए कविता की छाया म नीचे थिरकती ही रहती कविता की कुहिनका उसे समाप्त नहा कर पाती। मैं उसकी ओर नहीं दखा। पर जितना ही नहीं देखा उतना ही देखता था। आँखें देखने को बनी हैं, पर देखने वाली आँखें नहीं हैं सिफ दिखाने वाली हैं।^१ सब देखना जिनके पास पहुंचना है वह कभी बिना आखा का बीच म लिए भा दखता है। ऐसे गायद अधिक् दखता है गायण गहन दखता है।^६

प्रस्तुत पंक्तिया म कविता और दागनिक्ता का सश्लिष्ट भाव है और

इसके लिए उपयामकार ने जयंत के माध्यम से सस्मरणात्मक शैली अपनाई है। अतिशय दार्शनिकता की अभिव्यक्ति पाठक को उलभा भी देती और कथा रस में बाधा डालती है किंतु यह जनेद्र का स्वभाव है और व उससे बच नहीं सकते हैं। स्वभाव वह है जो बदला न जा सके। (टेम्परामेंट इज दैट विच कन नाट वी टैम्पड) रेखांकित वाक्य सख्या एक मस्तूल पाल और नाव एव बादल की बात कही गई है। यह नौका जीवन नौका ही है, इस पर कविता के बादल अपना प्रतिबिंब छाड़ते हैं और उसे एक नई आभा से अलोकित कर देते हैं। यह जीवन में प्रकृति का बिम्ब भी कहा जा सकता है। इसके मूल में रूपक की प्रवृत्ति है। रेखांकित वाक्य सख्या दो में साहित्यिक विरोधाभास (लिटरेरी पराडाक्स) का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। आखों के काय व्यापार को एक गहराई के साथ पकड़ा गया है और संकेत किया गया है कि आख तो देखने का निमित्त-मात्र है, देखन वाला तो कोई और है। उसे मन कहिए या चेतना। प्रस्तुत अनुच्छेद में छायावादी गद्य का बंधन भी देखा जा सकता है। यह उपन्यास में कविता है और कविता में उपन्यास है। पते की बात कहने की प्रवृत्ति ही, उपन्यासकार से इस प्रकार के विवरण, प्रस्तुत कर जाती है।

जयवधन से हम एक ऐसा उदाहरण लेना चाहेंगे, जिसमें राजनीतिक चिंतन का नवनीत हो और जो जनेद्र की मनोवेगात्मक शैली के एक भिन्न एवं पृथक पक्ष को उजागर करता हो 'वह होगा, श्रीनाथ, कतव्य के समय उस पर ध्यान न दें। निंदा का प्रस्ताव हो तो बाधा नहीं है। मुख्य यह है कि आप एक नियम पर आ जाए देश पर दलीय शासन समाप्त हो हो तो मिलीजुली सरकार हो। शक्तिया आगे आपस में काट बाट न करे बल्कि परस्पर को पूरता दे। काल की यह भाग है और दुनिया में जिस अनी की घड़ी पर हम खड़े हैं, वहां हम भारतवासी यह करने में चूक गए तो फिर किसी और से यह उत्तर आने वाला नहीं है। इससे भविष्य अंधेरा है, तो उसके भागी हम होंगे।'।

जयवधन स जनेद्रजी का राजनीतिक उपन्यासों का सिलसिला आरम्भ होता है। मुक्तिवाध और अनन्तर में भी यही राजनीतिक गुंज है। उपयुक्त उद्धरण में सबदलीय सरकार बनाने का जय की ओर से संकेत है। वह जानता है कि राष्ट्रीय शक्ति का अविभाज्य रूप में ही राष्ट्र को सर्वोत्तम सेवा दे सकती है। रेखांकित वाक्यों में काट बाट और अनी की घड़ी ये दो विशिष्ट प्रयोग हैं। इन दोनों में ही बोलचाल की शब्दावली की रवानगी है। ऐसा करने की स्थिति

म जो भी भविष्य होगा उसे सब भागीदार के रूप में ही लेंगे। इस प्रकार क चिंतन में राजनीति का पुट गहराई के साथ आ गया है। इस उदाहरण में प्रज्ञात्मक और गुणात्मक—दोनों प्रकार के मनोभावों का सम्मिश्रण है। सब दलीय सरकार की बात प्रज्ञा में ही उपजी है। चूंकि यह आयोजन एक विविष्ट लक्ष्य को दृष्टि में रखकर परिकल्पित किया गया है इसलिए उसमें गुणात्मक भाव की भी परिणति मिलती है। डा० श्यामसुंदरदास न गुणात्मक मनोभाव के सदर्भ में कहते हैं उसका एक सुनिश्चित लक्ष्य होता है।^१ इस की परिणति प्रस्तुत अनुच्छेद में पूरी तरह होती है।

मुक्तिबोध में यद्यपि आवरण राजनीति का है किन्तु उसमें नीलिमा का प्रणय प्रसंग रोमांस का भी पुट दे देता है। नीलिमा की हथेली भरे हाथ को हौले हौले सहलाती रही और मैं सोचता रहा कि नीलिमा कोई नहीं है मैं उसका कोई नहीं हूँ। लेकिन यह हाथ का स्पष्ट जाने एक दूसरे का कितनी सात्वना किनना आश्वासन पहुँचा रहा है। बाहर का होता जाता हुआ तथ्यात्मक या घटनात्मक सब कुछ अंत में जस अलग ही छूट जाता है सार रूप में छोड़ जाता है कुछ वह जो मनोवदना को भुलाता और स्वयं उसमें घुलता रहता है।^{११}

प्रस्तुत पक्तियाँ इन्द्रजनिता मनोभाव का प्रत्यक्ष दर्शन करती हैं। हाथ को हौले हौले सहलाना एक दूसरे की त्वचा का सम्पर्क है इसी कारण इसमें एक सूक्ष्म संबन्ध सन्निहित है। जहाँ इस प्रकार का त्वचा-सम्पर्क हो वहाँ सहाय का यह सोचना कि नीलिमा कोई नहीं है मैं उसका कोई नहीं हूँ—कारण ठीक सा ही प्रतीत होता है। इसे उपयासकार के पक्ष में या सहाय के पक्ष में भावातीत स्थिति भी कहा जा सकता है। हाथ के स्पर्श में जो परितृप्ति प्राप्त हुई उससे दोनों प्राणियों की भूख बुझी यह तो स्वीकार किया गया है। यह भी सचेत है कि ससार में सम्पूर्ण तथ्य एक घटनाएँ अन्त में अपना प्रभाव नकारती हैं और अवशिष्ट रह जाता है मन का वह भाव जो एक दूसरे को भुलाता रहता है। प्रकारान्तर से यहाँ उपयासकार आसदी की ही चरम परिणति की ओर सचेत कर रहा है कि अन्त में प्रेमात्मक मनोवेगों का विनिमय एक गहरी मनोवदना में ही साकार होता है।

अन्त में हम एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहेंगे जिसमें दाम्पत्य जीवन की खीज आक्रोश का रूप ले लेती है और पति पत्नी का मतभेद गौरीरिक

१० डा० श्यामसुंदर दास साहित्यालोचन पृ० २५८ आठवाँ आवृत्ति २००५।

११ मुक्तिबोध पृ० १४३ प्रथम संस्करण १९६५।

स्तर तक उतर आता है, अर्थात् प्रसाद रामेश्वरी को फेंक देते हैं 'मैं पलंग पर बठा का बठा उफननी हुई अपनी पत्नी को देखता रहा। मन मेरा सन्नत होता जा रहा था और ऐसा मानूम होता था कि उस जितने बड़े शब्द मेरे पास जुट नहीं पाएंगे। धीरे धीरे अब वह समय नहीं था, जिसमें मैं चुप था। रोप था, जो मुझे चुप और निष्क्रिय बना देता था। भीतर ही भीतर वह भभव रहा था।'^{११}

अनंतर का यह प्रसंग आए दिन के चलचित्रों जैसे दृश्य को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। अपरा को लेकर रामेश्वरी और चारु यह अनुभव करती हैं कि उनके दामाद का जीवन अभिशप्त हुआ जा रहा है। प्रसाद उनके चित्तन में सहयोग नहीं दे पाते और जब रामेश्वरी उनसे जबरदस्ती अपनी मनचीती करवाना चाहती है तो उनके हृदय में क्रोध का उमड़ घाना और उसी आवेश में रामेश्वरी को फेंक तक देना इन्द्रियजनित भावों की ही कोटि में आएगा यद्यपि यहा राग के स्थान पर विराग का सदभ है। यों भी कहा जा सकता है कि क्रोध और स्नेह एक ही चीज के दो ओर छोर हैं। ऐसी क्रोध की स्थिति का चित्रण प्रायः जनेन्द्र के उप-यासों में नहीं मिलता, क्योंकि वे प्रायः ज्ञानयोग एवं भावयोग में डूबे रहते हैं। मनुष्य को सहज प्रवृत्तियों एवं वासनाओं के चित्रण का उन्हें अवसर तो मिला है, किन्तु ऐसे दृश्यों में कोई अभिर्शचि न होने के कारण इस प्रकार के बहाने जनेन्द्र के उप-यासों में विरल हैं। जनेन्द्र की औप-यासिक यात्रा के इस नवीनतम चरण में उपयुक्त उद्धरण अपनी एक विशिष्टता रखता है। जिस प्रकार किसी साधु-सत या विचारक को हम क्रोध की स्थिति में नहीं देख पाते किन्तु क्रोध के उपनते हुए ज्वालामुखा के सम्मुख एक विचारक भी उसी के मुर में अपना मुर मिला देता है उसका एक जीवित-जाग्रत उदाहरण उपयुक्त उद्धरण में है।

निष्कप

मनोवेगात्मक शली के विभिन्न रूपा के सर्वेक्षण के उपरान्त यह उचित ही होगा कि हम इस सबध में कुछ निष्कप निकालें

- १ जनेन्द्र के उप-यासों में बसे तो सभी प्रकार की शलिया एवं मनावेगों के दशन होते हैं किन्तु ऐसे मनावेगों की अभि-यजना में उनकी शली अधिक सक्षम है जो नराश्यजय एवं मरणधर्मा हैं।
- २ हृषिकेश या उत्साहजय जीवनधर्मा मनावेगों का यहा प्रायः अभाव है।

- केवल प्रभो-मुगता के हास्य विना म ही इस प्रकार क मनावगा का अभि व्यजना हुई है ।
- ३ चूकि अधिकाग पात्र गहर चितन का आवरण आटे रहत है इसलिए जीवन की सूक्ष्म वृत्तिया का पयाप्न विवेचन मिलता है ।
- ४ इनक पात्रा की वातचोत म अनन्त जीवन का मुहावरा बडी कुशलता एव मार्मिकता स अभिन्यक्त हुआ है । आवश्यकता पडन पर इहाने उपमा रूपक एव विराधाभास का भी उपयोग किया है ।
- ५ अधिकाग उपयासा म शली-तत्व का आधार वास्तविकता न हाकर कल्पना तत्व रहा है । गहन दार्शनिक स्थिति क विश्लेषण म यही कल्पना-तत्व बुद्धि-तत्व का आधार अपना लता है ।
- ६ जीवनधर्मा प्रवृत्तिया के स्थान पर मरणधर्मा प्रवृत्तिया की प्रधानता के कारण इनकी गद्य-शैली म एक विशेष प्रकार क नरास्य की अन्तर्धारा सवत्र प्रवाहित है । उसम रूपविग क स्थान पर दुस्तावग ही अधिक मुखर हैं ।
- ७ जनद्र की मनावगात्मक गली का एक विगिष्ट रूप रहा है जो हिंदी उपयास-साहित्य म एक पृथक स्थान और विगिष्ट व्यक्तित्व का अधिकारी है । जनेद्र क किसी एक वाक्य को लेकर यह दाव क साय कहा जा सकता है कि एमा वाक्य तो उनकी ही टकमाल म गढा ना सकता है । एस पृथक व्यक्तित्व एव विगिष्ट प्रतिभा के घना उपयासकार हिंदी म उगनिया पर गिन जा सकते हैं । इनम जनद्र का प्रवतनकारी स्थान है और उनका अपना महत्व है ।

शैली का विचारगत रूप तथा अध्ययन

१ शैली और विचार-तत्व का पारस्परिक संबंध

मानव-जीवन में भाव-तत्व एवं विचार-तत्व का सहस्रस्तित्व है। भाव का संबंध हमारे हृदय की सरसता से है। जब हम ताजे गुलाब की पशुडियों को देखते हैं, तो हमारा मन उनकी सुन्दरता पर रीक घाता है और मन में आनन्दानुभूति होती है। हमारे जीवन की रीढ़ विचार-तत्व में सन्निहित है। भाव यदि हमारे शरीर के मांस और रक्त का रूप लिए होते हैं तो विचार प्रस्थियों के रूप में होते हैं। भाव, हृदय में उत्पन्न होते हैं विचार मस्तिष्क में। शैली के मनोवेगात्मक रूपों के अध्ययन में हमने देखा कि भाव किन किन रूपों में प्रस्फुटित होकर उपन्यास की शरीर रचना का विधान करते हैं। इस अध्याय में हमारा विचारणीय विषय यह है कि हम शैली और विचार-तत्व के पारस्परिक संबंधों का निरूपण कर जैनेन्द्र के उपन्यासों में उनका जो भी रूप मिलता है उसका अनुसंधान करें और तब उसके आधार पर कुछ निष्पन्न निकालें।

शैली-तत्व में विचार-तत्व का बड़ा महत्व है क्योंकि शैली रूपों शरीर का यही मूलधार है। कोई भी रचना यदि विचारों की दृष्टि से खोखली हो, तो उसकी शैली हम प्रभावित नहीं कर पाती। विचारों की दृष्टि से सम्पन्न रचना ही जब अभिनव शैली में हमारे सम्मुख आती है तो हम उसका अनुशीलन कर विशुद्ध आनन्द में लीन हो जाते हैं। मानव आदि काल से नए-नए विचारों का अन्वेषण करता रहा है उसकी प्रगति के मूल में यही वचारिक प्रवृत्ति सक्रिय

रूप में काय कर रही है। किसी भी दंग में जब जाति होती है तो पहल विचार-जगत में उथल-भुयन मचा करती है यह वचारिक विश्वास ही आग चलकर जाति का रूप बनता है और तब समाज में परिवर्तन के अनक रूप दर्शन का मिनत है। काद भी रचनाकार अपनी रचना में विचार तत्व की अवहनना नहीं कर सकता। य विचार ही गली का एक परिष्कार प्रदान करते हैं और उन नए नए रूपा में प्रस्तुत कर मृष्टि के चिन्तन का गतिशील बनाने हैं।

पिछन अध्याय में प्रनात्मक मनाभावा के अन्तगत हमने यह दखा था कि किस प्रकार नए-नए विचार एवं सिद्धांत जनद्र के विभिन्न उपयामा में प्रस्फुटित हुए हैं। जनद्र की बोली में जो मौलिकता देखने की मिलती है, उसका बहुत-कुछ श्रेय, उनके विचारों को दिया जा सकता है। उनके कथ्य में जा बारीकी आई है, उनके उपयामों में जो मन को मय डालने की सामर्थ्य है, उसका आधार उनके मूलप्रायो विचार ही हैं। विचार-तत्व किसी भी रचना की आत्मा होने हैं, तो गली उन विचारों का परिधान, किन्तु वह परिधान से भी आगे बढ़कर व्यक्तित्व की अभिव्यजना का भी सगक्त भाष्यमं वनती हैं। नए विचारा का उपस्थित करने के लिए नई शली एक प्रकार से अपरिहाय है। प्राचुनिकता अपने पूरे रूप में तभी मूल हानी है जबकि हम युग के विचारा का सावधानी में दाहन करत हैं और उन्हा से ससार के प्राणिया का पोषण भी हाता है। जब हम किसी नई साहित्यिक कृति का पठत हैं तो उसकी गली एवं गिन विधान यदि के वास्तव में रचिकर एवं प्रभावगामी हैं तो हमार मन का मोह नेत हैं।

विचार तत्व का मूल आधार है हमारी दानिक कथनाए एवं चिन्तन। जीवन का नकर हम नए-नए तथ्या का अन्वयण करत हैं और उह दानिक जामा पहनाकर ससार के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं इस प्रकार विचार-तत्व का दानिकता में भी घनिष्ठ संबंध है। नवलखन के सन्तम में प्राय नए जीवन मूल्या का तनाग का वान कही जाती है। यह तलाग तभी मायक हो सकता है जबकि हम जीवन की मून प्रवृत्तिया का अपने पूरे मानवीय संवधो के साथ जीवन के नए परिशेष्य में ग्रहण कर सकें। हिन्दी साहित्य-जगत में जनन्द्र की दानिकता बहुचर्चित रही है। इसा दानिकता में उनकी लेखन गनी का भी विविध रूपा में प्रस्तुत किया है। आग पष्ठों में हमारया यहा प्रयल हागा कि हम जनन्द्र के सभी उपयामा का सर्वेक्षण करने हुए गली के विचार गत रूप का अध्ययन प्रस्तुत करें।

समय केवल नर-नारी विवेचन तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह पूँजीवाद की असमर्थियों के प्रति भी जागरूक है। जिनकी ऐसी धीज बन गई है कि बिना पग के नहीं चलती। पाप भस्मों का दूष सफ़र नहीं पा सकते, जब तक कि वे घबरी न हा पेड का पत्र घोर गेज का पात्र नहीं स सकते जब तक वे अपने न हो, वहीं जाना हो तो रेल म बँटकर नहीं जा सकते जब तक टिकट न हो। इन सबके लिए फिर पसा चाहिए। यह पसा टबगाल म टुकता है या सरकारी छपेगाने म छपता है। यह पसा की मर्या बड़ी पेचीला हो गई है। अनुत्पादक आलाकियों से सोने का डेर बन जाता है, उत्पादक छोट मेहनत करने पर तबि के पतों का भी भरोसा नहीं बनता। अब सराबी क्या है? सराबी उन स्याली कीमता म है जो हमने चीजों को दे रखी है। हमारा समाजशास्त्र हमारा अध्यासत्र हमारा नीतिशास्त्र और हमारा धर्मशास्त्र सब उन कीमतों को मान कर चलते और उनको मजबूत बनाते हैं। हम उनमें एबन्म परिवर्तन साना होगा। परा तन जो है वे ऊपर दीसंगे, फिर चड़े परती धूमंगे।'

प्रस्तुत पत्तिया में जनेन्द्र के विचार-तरव का राजनीतिक पहलू प्रकट होता है। स्पष्ट ही इस पर तत्कालीन समाजवादी विचारों का प्रभाव है जो कि सुनीता के रचनाकाल के समय हवा म पन हुए थे। सन् १९३५ म हमारे ज्ञानिकारी समाजवादी के अधों को गीता की तरह पढ़ रहे थे और उनके चिन्तन-लेखन म उगी की अनुगूज थी। रेखांकित वाक्य म पूँजीवाद की अनुत्पादक आलाकियों का सचेत है और इस बात पर दुस प्रकट किया गया है कि उत्पादक श्रम को हाव के पसा का भी भरोसा नहीं बनता। इस समाज म इसी कारण जनेन्द्र असमर्थियों पर पसारे बँटी है। सुनाना का हरिप्रसन्न इन्ही असमर्थियों को दूर करना चाहता है। हरिप्रसन्न के माध्यम से सखब का ही समाजवादी चिन्तन प्रकट हो रहा है।

त्यागपत्र का सधारिक पत्र और भी अधिक सपन है। ऐसा प्रतीत होता है कि त्यागपत्र तब आने-आते जनेन्द्र के चिन्तन में परिपक्वता भा गई है।

बटुला घाती है और तुम्हारे सपन से उसे बल बना रहती है। तुम्हारा प्रेम मुझे स्वच्छ रखता है, पर डर है कि यहा आधो और वहीं बचा-खुचा तुम्हारा प्रेम भी भरे हाथों से जाता रहे। तब मेरा क्या हाल होगा? जीना दूभर हो जाएगा मेरा बल गिर जाएगा, श्रद्धा धमेगी कैसे? कल्प ही तब सब और से घेर कर मुझे छू लेगा। तब इस जिन्दगी के बीच किस एक भवलम्ब के सहारे में त्रिकूनी? अब तो मन को ऊँचा उठाकर साफ हवा फेंफड़ो में भर लेती

हू और इस विदाक्त वातावरण में सहज भाव से जिए चलती हू। वह न रहा, तब मैं कैसे टिकूगी ? मर जाऊंगी, इसका सोच नहीं है। पर जीवन की टेक हाथ से छूट जाएगी, यह तो बहुत बड़ा भय है। श्रद्धा के साथ मरना भी सायक है, पर श्रद्धा गई, तो पास क्या रह गया ?”

उपयुक्त उद्धरण में विचार और भाव सश्लिष्ट रूप में एक दूसरे में समाए हुए हैं। घपिता एव लाघिता मृणाल उस सडाद भरे जीवन में एक ही सम्बल के सहारे जी रही है वह है प्रमोद का निष्कपट स्नेह। यही निष्कपट स्नेह, स्वच्छ वायु की तरह उसके प्राणों में जीवन का सवार करता है। रेखांकित वाक्य में विचार का नवनीत है। वस्तुतः कोई व्यक्ति आस्था एव श्रद्धा के सहारे ही जीता है, भ्रमया जीवन में इतनी भ्रसगतिया हैं कि उनके सहारे चले तो मरुभार में ही डूब जाए।

बल्याणी से हम एक ऐसा उद्धरण लेंगे जो विचार-सत्य का जमा हुआ रूप कहा जा सके (क्रिस्टलाईज्ड फाम)। 'सत्य किसी से बहिगत नहीं है। न सत्य से कुछ बहिगत है। भेद इतना ही है कि जितना और जो दीधने-जानने में आता है सत्य उतने में समाप्त नहीं है। पर सत्य से वह भ्रमया भी नहीं है। इससे माया भी सत्य की ही माया है।”

प्रस्तुत पक्तियों को पढ़ते समय हमें ऐसा नहीं लगता कि जैसे ये उपयास की पक्तियाँ हैं, बल्कि यह प्रतीत होता है कि हम कोई दार्शनिक निबन्ध पढ़ रहे हैं। सत्य की सर्वोपरी सत्ता को ही यहाँ मुखरित किया गया है। सत्य के अन्तगत जीवन के सभी रूप आ जाते हैं। वह भ्रमोचर की सीमा के परे भी है। वह भूत, वतमान एव भविष्य में भी समाया हुआ है। माया भी उसी का एक रूप है यद्यपि उसमें सत्य नहीं बल्कि सत्याभास है।

राजनीति के सन्दर्भ में भी अनेक का मौलिक चिन्तन कई प्रसंगों में उभरा है। ऐसे ही प्रसंगों में से एक है, सुखदा में ताल का पत्र, जिसमें यह स्थापना है कि पारिवारिक सस्कृति और भारतीय नतिकता की धारणा क्रान्ति के माग में अवरोध उपस्थित कर रही है 'घर गिरस्ती में यहाँ का व्यक्ति अब तक जुटा है और भारतीय नतिकता उस परिधि में घेर कर उसे बन्द और निस्पद किए जा रही है। अब पारिवारिक नहीं सामाजिक सस्कृति चाहिए। परिवार स्थापित स्वाय वनता है और सावजनिकता में गाठ पड़ा करता है। हमारी सस्कृति ने हमें परिवार में जड दिया है इससे हम पिछड़ रहे हैं। छाटे-छोटे

४ त्यागपत्र पृ० ६४ ६५, २२ वा सस्वरण, १९६७।

५ बल्याणी पृ० ८६ राजकमल पब्लिशिंग हाउस, १९६०।

स्वार्थों के भवना में धनराशत रह जाने हैं वरु नहीं पाते । विवर बन रन्ने हैं राष्ट्र में हारर महज द्दष्ट नहीं हो पाते । मूय में है ऋय के हमाग विवाह, जो प्यार का बाधता है मानता नहीं । प्यार ही एक साधन है बध बटी ता मय गया ।^१

प्रमनुत घुच्छु म माल ने जा घात रणी है उगम एगा प्रताप हाता है कि वह अपनी व्यक्तिगत दुबलता के लिए बौद्धिक आधार ढूँढ रहा है । इस दुबलता का बुद्धित (रक्षा-सदृश) रूप भी बना जा सकता है । फिर भी इगम जो बात नहीं गई है, उसका सध्य का भुट्याया नहीं जा सकता । यह मय है कि पारिवारिकता व्यक्ति का पगु बना देती है और वह कुछ करने करने लायक नहीं रहता ।

इसी बात का एक दूसरा पहलू हम विवत में मिलता है । तब हम अपने में आगा रख सकते हैं । तब दण हममें आगा रग सकता है और कानि हममें आगा रगती है । जासम यदि हमारे लिए मल है तो यही चाहिए । छिपकते हैं जो जिन्दगी से, वे ही उसका स्वाद नहीं जानते । जीते हैं वे जो मोन से सेलते हैं । मगर रगया काम में आणा । येसारे का यह सहारा दगा भूया का राना दगा ।

पना कानिवारिया की बातचीत का एक अंग है । उह जीवन का माह नटा है । व मोन में निनवाढ करत है । इस प्रकार के अवसरों पर जने-त्र मिलुल कानिवारिया की बासी में बालन लगते हैं और वहा उनकी बचाव पणभूमि काफी सबल हाती है । जने-त्र यद्यपि अहिंसक विचारधारा में आस्था रखते हैं फिर भी एक उपासकार के नाते वे अपने स्वभाव के परिधि से हट कर भी विवरण दे सकते हैं । उपासकार को तो अपनी बचावता को मभी परिस्थितियों के ढाचा में ढालना पडता है । इस दृष्टि से जने-त्र की देन महत्व पूण है ।

१ व्यतीत में जने-त्र का विचार-सत्व एक प्रच्छन्न व्यग का जन्म देता है । एक ऐसा व्यग जो मन को बचोट से, शाम का बघावर के साथ उनकी पत्नी आई । दखकर चमस्टन और प्रसन्न हुआ । आयु बहा टहरती नहा थी, माना थी ही नहीं, इतनी प्रफुल्लिता थी । कुछ हो भी, तो प्रसाधन का साधन साथ था । यह आयु-काल को अलग सभ्रम से लडा रख सकता था ।^६

६ मुग्गल पृ० १११ द्वितीय संस्करण १९६१ ।

७ विवत पृ० १२६ दूसरा संस्करण, १९५७ ।

८ व्यतीत पृ० म० १३६ दूसरा संस्करण १९५६ ।

पक्षियों में वाम प्रवृत्ति का बिन्दुपण है। वाम प्रवृत्ति गन्व घनृप्त रहने के लिये ही है। जब प्रत्येक पुरुष आत्मा-मुक्त हो जायेगा, तभी वह पुरुषातीत हो सकेगा। वाम प्रवृत्ति का बिन्दुपण भी आध्यात्मिकता के स्तर पर हुआ है, यह कुछ व्यक्तियों को घटपटा सम सक्तता है, किन्तु ऐसे घटपटेपन में ही जनेन्द्र की मौलिकता निहित है।

मुक्तिबोध और घनन्तर में जनेन्द्र विचारों के गगन में सहज सामान्य भूमि पर पाय हैं किन्तु उनकी दार्शनिकता की प्रवृत्ति फिर भी कुठित नहीं हुई है। एसा ही एक उदाहरण हम सहाय के निम्न उद्गारा में मिलता है मैं कहा हूँ ? मामूम होना है वहीं भी नहीं हूँ। अनिश्चय में हूँ और उधर में हूँ। पक्षी उड़ता है वृक्ष जैसे झालकर अपने एक जगह सजे रहने हैं। आत्मी घर बनाता है इधर उधर भी घनता फिरता है। पासने की तरह उसका घर एक नहीं हो सक्तता। मामूम होता है कि उत्कट जीवन उतना ही गतिमय होगा। स्थिति निष्ठ गायद उस जकड में जड पडता जायेगा। सगता है स्थिति को राजश्री के निगाय पर छोड देना चाहिये और अपने लिये मुझे गति का ही ध्यान रखना चाहिये। विचार की इस सगति में मुझे फिर नीला का ध्यान आया और उसके स्वभाव के प्रति जम एक स्पहा-सी मन में उत्पन्न हुई। माना वह है जो घनकी नहीं है। सग जीवन्त और सहरीली है।^१

सहाय अपने और नीलिमा के चिन्तन के सदम में सोच रहे हैं कि गति नीलिमा क्या है कुठा क्या है ? के पाने हैं कि आदा चिन्तन ने उन्हें कुठित कर दिया है और उधर नीलिमा निरन्तर गतिनील है। उसकी गतिनीलिता का रहस्य उसकी जीवन्तता में है। वह चिन्तन में गही व्यवहार में जीती है इसी लिये उसका चिन्तन सहाय की तरह कुठित नहीं है। प्रवारान्तर से नीलिमा को ही प्रेरणा का जीवन सात बताकर उसके महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

घनन्तर में जनेन्द्रजी का चिन्तन आर्थिक समस्याओं के घरातल पर ही उतरा है। इसी सवध में उनका निम्न कथन श्चटव्य है वसा समाज के गरीर का प्रवाही रक्त है। वह है क्योकि उस पर सरकारी मोहर है। मोहर की वजह से बोरा कागज भी कितनी कीमत का हो जाता है और सरकार वह है जा प्रशासन के बल पर समाज को अनुशासन में रखती है। शासन की इस सस्था से समाज की स्थिति बनती है। मुझे सगता है कि उस मुविधा के लिये शासन का होना और उसके अधीन शासित का होना अनिवार्य है। या ता सग है धारा-समायें हैं धन-तन को लोकतन की दिगा में उठाते जाने के अय यत्न

हैं। बीच-बीच में इसके लिये क्रान्तिया भी होती हैं। और शासन द्वारा पक्ति बढ़ होकर मानव-समूह रह रह कर आपस में युद्ध लड़ लिया करते हैं। नहीं तो बताइये लोगो की बेतहाशा बढ़ती फूलती समस्या कैसे काबू में आये ? शासन में इसकी व्यवस्था हो जाती है। बिना ऊपर सरकार हुए सोचिये कि प्रजा में से फौजें कैसे बनें ? फौजें हो भी तो लड़ाई कैसे छिडे ? लड़ाई की तयारी न हो तो सुरक्षा कैसे सुरक्षित रहे ? इस तरह सरकार बहुत ही सायक सस्या है।”

ऊपर की पक्तियों में सृष्टि-चक्र के मूल रहस्या को पकड़ने की चेष्टा की गई है। इन पक्तियों में एक प्रकार का निर्व्याज व्यंग्य है जो जनेन्द्र की मूल आही दृष्टि का ही प्रतिफल है। अथतत्र एव राजतत्र पर कितना मार्मिक व्यंग्य है। सरकारी माहुर सत्ता का प्रतीक है, उसी के ठेके सब चलते हैं। बढ़ती हुई अबादी को कम करने के लिए युद्ध होते हैं और तब जनसख्या का सन्तुलन स्थापित हाता है। दुनिया काल्ह के बल की तरह एक ही लीक पर चक्कर काटे जा रही है। यह मानवीय निपति का कितना बड़ा अभिगाप है। इसी तथ्य की ओर उपन्यासकार अपने पाठको का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है।

जनेन्द्र के उपन्यासों के इस विचारगत सर्वक्षण के उपरान्त हम सहज ही निम्न निष्पन्न निकाल सकते हैं

- (१) जनेन्द्र का मौलिक चिन्तन सभी दिशाओं की ओर प्रभावित होना है। वे अनायास ही गहरे पठकर मूल्यवान् मशिरस्तों को निकाल लाते हैं। उनके विचार एक विनोद साचे में ढले होते हैं उन्हें पढ़कर सहज ही यह कहा जा सकता है कि ऐसा तो जनेन्द्र ही लिख सकते हैं।
- (२) दार्शनिक ऊहापोह के कारण उनका चिन्तन सदैव एक उच्च धरातल पर रहता है कभी-कभी तो यह धरातल इतना ऊर्ध्वगामी हो जाता है कि पाठक का दम फूलन लगता है। क्या रस में जहा इस प्रकार के वचारिक चिन्तन से त्वरा भाई है वहा तब यह प्रवृत्ति प्राण्य है पर जहा इससे क्यानक में व्याघात पहुचता है वहा यह अवाछनीय लगने लगती है।
- (३) जनेन्द्र के उपन्यासों में विचार और भाव का समुचित सामंजस्य नहीं है। भावों पर विचार हावी हो गए हैं, इसलिए इनमें एक प्रकार की वचारिक क्षमता है। जहा विचारों एव भावों का सहप्रस्तित्व सन्तुलित रहा है, वहा औपन्यासिक उपलब्धिया महत्त से महत्तर हो गई हैं। ज्यो-ज्यो उनकी औपन्यासिक मृष्टि में विचारों का जजाल बढ़ता गया है त्या-त्या उनकी भावमयी दृष्टि उपेक्षित हाती गई है। अपने कथन के प्रमाण में कहना

चाहूँगा कि जनेन्द्र के पूववर्ती उपयास अधिक सफ़्त हैं और परवर्ती उपयास क चौकट में ही नहीं आत ।

- (५) विचारा की प्रधानता क कारण उनकी गती में एक प्रकार की सम्पष्टता भी आती जा रही है । उनका चिन्तन रहस्यमय आवरण में निपटता जा रहा है यह चिन्ता की बात है किन्तु यह मजबूतना बढ गया है कि वे पीछे नहा लौट सकते । उनकी साधना सहजता में आरम्भ हुई थी किन्तु अब वह विचारा की मग मरीचिका में इस प्रकार खानी जा रही है कि सहजता का स्थान जटिलता में ले लिया है ।
- (५) जनेन्द्र के पास दुनिया के लिए मन्त्र तो है पर वे उसे शरीरवर्षित (गुणरकाटक) नहीं कर पा रहे । आधुनिक चिन्तना विज्ञान में शरीर के प्रति महत्वपूर्ण बातें जा रही हैं पर जनेन्द्र इस ओर ध्यान नहीं दे पा रहे । इसीलिए उनके उपयामा हलक में एक बहुत तिन स्वाद छाड़ जाते हैं । उनका उपयास पाठक का मनो निरन्तर क्षीण होता जा रही है ।
- (६) जनेन्द्र की औपचारिक मृष्टि में मनोविज्ञान शलीनत्व सर्वाधिक मुखर है इसलिए प्रबुद्ध पाठक में वे पुनः-पुनः पडे जाने हैं और जवा-ज्या पाठक उनके चिन्तन की गहराई में जाता है त्या-त्या वह मुख हुए बिना नहा रह सकता । वे साधारण पाठक के उपयामार नहा हैं वे तो विद्वान् पाठक एक ममभंगी ग्रन्थेपका के उपयासकार है । उस प्रकार क पाठक में उनका भविष्य सुरक्षित है किन्तु साधारण पाठक उन्हें उपन्यासकार ही नहा मानता कारण कि वे उपयास में भी निबध लिखन लगते हैं और शान की परतो-पर परतें खालने लगते हैं ।
- (७) छायावाणी गद्य-शली का बभव हम उनके पूववर्ती उपयासा में देख सकते हैं पर अपनी परवर्ती मृष्टि में वे समसामयिक सन्दर्भों में जतना उलझ गए हैं कि उससे उह निम्तार नहीं मिल सकता । नर-नारी की मूल प्रवृत्ति क सधान में और शासनतंत्र की बुराईया में इतना अधिक निमग्न हो गए हैं कि उह एक अच्छा खासा गाताखोर कहा जा सकता है । जिन खोज तिन पाइया गहरे पानी में । गहरे पानी में उपयासकार तो पठता ही है किन्तु साथ ही यदि पाठक भी गहरे पानी में पठने लगे तो उनके मृजन के प्रति अधिक शाय कर सकता है, किन्तु यह आगा आज दुरागामान ही सिद्ध हाती जा रही है ।
- (८) जनेन्द्र ने अपनी विचारगत शली में न केवल परम्परागत मुहावरा को अपनाया है बरन् नए मुहावरे भी गडे हैं उनके वाक्यों का ध्वन्यात्मक

सौन्दर्य अप्रतिम है। वे विराम चिन्हा के प्रयोग के प्रति भी अतिव्य जाग
रुक हैं किन्तु यह जागरूकता क्षीण होती जा रही है। उनके आरम्भिक
उपग्राम मौलिक उत्प्रेरणा के फल थे, किन्तु इधर वे उपग्राम किसी पत्र
या रडियो की माग से लिखे गए हैं। प्रेरणा का जितना बाह्यीकरण
होता गया है, उतनी ही उनकी श्रौप्यासिक सृष्टि श्रौपचारिक बनती जा
रही है।

चेतन और अचेतन की प्रक्रियागत स्थिति और भाषा-शैली

मनुष्य की मनोरचना बड़ी जटिल एवं सश्लिष्ट है। फ्रायड ने मानव मस्तिष्क के तीन स्तर स्वीकार किए हैं

- (१) चेतन
- (२) अद्वैतचेतन (अपवा अचेतन)
- (३) अचेतन

‘अचेतन की कल्पना फ्रायडियन मनोविश्लेषण का आधारभूत सिद्धांत है, जिसके सम्बन्ध में अत्यधिक लिखित सामग्री उपलब्ध है और सबके विचारों में साम्य ही, सो बात नहीं। पर इतना समझ लेने से काम चल जाएगा कि मानव मस्तिष्क का तीन चौथाई अंश इसी अचेतन की परिधि के अन्दर है और मनुष्य के विचार, उसके व्यवहार तथा रहन-सहन के ढंग की स्वाभाविकता या अस्वाभाविकता का मूल प्रेरक यही है। जिस तरह एक नदी में तरते हुए बर्फ की चट्टान का अधिकांश जल प्रवाह की तह में पड़ा नजरो से अभिन्न रहता है, तिललाई पडने वाला तो थोड़ा-सा ही है। ठीक इसी तरह मस्तिष्क का चेतन अंश जहाँ पर सोच समझकर ऐसा-वैसा इस तरह के व्यापार चलते रहते हैं वह महज छोटा भाग है पर वास्तविक रूप से उसके व्यापार की प्रेरणा तो अचेतन से ही मिलती है। चेतन मस्तिष्क तो अचेतन के हाथ का एक तरह से कठपुतली-सा है और वही अचेतन छिपे छिपे ढोर हिलाया करता है। नदी में तरते हुए बर्फ की चट्टान को न देखकर केवल नदी को ही देखिए। पानी का वाह्य स्तर ही दीख पड़ता है। पर उसके नीचे पानी की एक अविचल राशि

प्रवाहित होती रहती है। इन दोनों में पारस्परिक आदान प्रदान बना रहता है और नीचे की तह में रहने वाली जल धारा उठ-उठ कर ऊपर की जलराशि के रूप रग तथा तापमान में परिवर्तन उपस्थित करती रहती है। उसी तरह हमारे व्यावहारिक जीवा के सारे कायकलाप अचेतन से प्रभावित रहते हैं, अचेतन ही उनकी डोर हिलाया करता है।

इन दोनों स्तरों का मध्यवर्ती स्तर है अर्द्धचेतन, या कहिए स्वल्पचेतन, जो वर्तमान में ज्ञान और अनुभूति का विषय तो नहीं होता, पर थोड़े ही प्रयत्न के बाद अनुभाव्य हो सकता है। मस्तिष्क में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण अर्द्ध अचेतन में हमारे जन्म से लेकर अब तक की अनुभूतियां पडी रहती हैं और विशिष्ट प्रयत्नों के द्वारा ही उन्हें पाया जा सकता है। चेतन और अचेतन के बीच एक प्रहरी (सेंसर) बठा रहता है, जो अवाञ्छनीय विचारा को घाता देख दरवाजा बन्द कर देता है।”

डा० नगेन्द्र ने अपने निबन्ध ‘फ्रायड और हिंदी साहित्य’ में चेतन अचेतन का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है

“हमारे मन के दो भाग हैं चेतन और अचेतन (अर्द्धचेतन)। इनके बीच में एक तीसरा भाग भी है जिसकी स्थिति चेतन से कुछ पहले है—इसे फ्रायड ने प्री-कॉन्सस अर्थात् पूर्व चेतन कहा है। यह अचेतन के लिए एक प्रवार का द्वार है। चेतन की अपेक्षा अचेतन वही बृहत्तर और प्रबलतर है। फ्रायड ने इसके स्पष्टीकरण के लिए एक ऐसे पत्थर का दृष्टान्त दिया है जिसका तीन चौथाई भाग जल में है और एक चौथाई जल के ऊपर। यह तीन चौथाई अचेतन है और एक चौथाई चेतन। चेतन वह भाग है जो सामाजिक जीवन में सक्रिय रहता है, जिसकी क्रियाओं का ज्ञान हमें रहता है। अर्द्धचेतन वह भाग है, जिसकी क्रियाओं का ज्ञान हमें नहीं होता, परन्तु जो निरन्तर क्रियाशील रहकर हमारी प्रत्येक गतिविधि को अज्ञात रूप से प्रेरित और प्रभावित करता रहता है। यह अचेतन हमारी उन इच्छाओं और चेष्टाओं का पुञ्ज है, जो अनेक सामाजिक कारणों से मूलतः सामाजिक स्वीकृति अथवा मान्यता के अभाव में चेतन मन से मुह छिपाकर नीचे पड जाती है और वहां से अभिव्यक्ति के लिए सघन करती रहती है। इस अवस्था में उन्हें अघोषक (संसार) का सामना करना पडता है जो हमारी सामाजिक मान्यताओं का प्रतीक रूप है। वह इन अज्ञात सामाजिक इच्छाओं का दमन करने का प्रयत्न करता है। परन्तु यह दमन एक छल

मात्र हाता है दमित इच्छाए धनक छद्म रूप रखकर अपनी अभिव्यक्ति का माग ढढ लेती हैं । ये माग हैं स्वप्न स्वप्न चित्र और कला-साहित्य आदि । इस प्रकार ये सभी स्वप्न क विभिन्न रूप हैं । इस प्रकार स्वप्न की व्याख्या फ्रायड के गाम्भीर्य त्रिधान का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है ।

मन का विभाजन फ्रायड ने एक और प्रकार से किया है । यहा भी उन्होंने उसके तीन अंग माने हैं—इड ईगो और सुपर ईगो अर्थात् इद अह और अति अह । परन्तु ये वास्तव म नमरा अचेतन चेतन और अधीनक (मेन्सर) से बहुत भिन्न नहा हैं । इड या इद हमारे रागो का पुज है, जिसमे अचेतन का ही प्राधान्य है । इसकी धारणा बहुत-कुछ हमारी वासना से मिलती जुन्ती है । अह चेतन मन है जा नीचे इड या इद म से इच्छाओ के धक्के खाता हुआ सामाजिक मूल्यों क प्रति सचेष्ट रहता है और अति अह सचिन सामाजिक मायताया का प्रतीक है जिसका काम आलोचना और अधीक्षण करना है । फ्रायड के गण्य में अह इद का वह भाग है जिसका निर्माण ऐंद्रिय ज्ञानमय चेतन के माध्यम से बाह्य जगत के सम्पर्क द्वारा हुआ है । इद का प्रेरक सिद्धान्त है आनन्दवाद और अह का प्रेरक सिद्धान्त है वस्तुवाद । अह म ज्ञान का प्राधान्य है और इद म वासना का अह विवक और बुद्धि का प्रतीक है और इद रागो का आवास है ।

हमारा अचेतन जिन दमित इच्छाओ का पुज है वे मूलत काम के चारा आर केन्द्रित हैं । इस प्रकार जीवन की मूलवृत्ति फ्रायड के अनुसार है काम । उनके अनुसार जीवन मे दो वृत्तिया प्रधान हैं—एक प्रेम करने की प्रवृत्ति 'इरास' अर्थात् काम, दूसरी नाग करने की प्रवृत्ति अर्थात् थनेटास । इसमें भी मुख्य है पहली अर्थात् काम दूसरी उसका विषय मात्र है । इसी काम का फ्रायड ने 'निवने' कहा है । हमारी सभी ध्यष्टिगत क्रियाओ तथा चेष्टाओ म यहा तक कि समष्टिगत क्रियाओ तथा चेष्टाओ म भी काम के मूयम अनर-मूत्र विद्यमान रहत हैं ।¹¹²

फ्रायड के मनोविज्ञानपरकवाद का एक उत्तरपक्ष भी है जो कि भावमवादी विवचका की दृष्टि म इस प्रकार है— 'फ्रायड' के अनुसार मनुष्य की चेतना का निर्माण प्रवृत्तिया और अवचेतन के दमन से होता है पर तय्य यह है कि मनुष्य की चेतना का निर्माण सामाजिक कार्यों के दौरान ऐंद्रिय अनुभवों से होता है । फ्रायड ने अवचेतन म केवल दमित इच्छाओ, सवैगों तथा विचारा का अस्तित्व माना है, जबकि वास्तविकता यह है कि मनुष्य की 'इच्छा-शक्ति' जिसका कि

यह सामाजिक बाध करते हुए विधाता बनता है उसके अंतर्गत पर अनुमान रखकर भी मनुष्य को बीमार नहीं होने देती, यही कारण है कि हमारे यहाँ याग का और प्रायश्च के यहाँ समाग या महत्व दिया गया है।

प्रायश्चिद म दमित इच्छामा, मयगो और विभारा का सबध देण और वान से सबधित नहीं माना गया, यह इस मन का एक और दुराग्रह है।”

प्रायश्चिद भाविधान के पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष के इस विवेचन के सदभ मे इस अध्याय मे हमारे लिए चेतन और अचेतन का अधिक् महत्व है, क्योंकि उपयासकार की भाषा शैली में मन व यही दो स्तर अपने आपको प्रकट कर पाते हैं, यद्यपि अचेतन के सवेग और भावनाए बहुत दूर तक इन अभिव्यक्तिया को प्रभावित और नियंत्रित करती हैं। प्रायश्चिद मनोविधान की मीमांसा को ध्यान म रखते हुए नी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि “शरीर-तात्त्विक अध्ययन म चेतन और अचेतन की प्रतियोगिता भाषा शैली का अध्ययन हमारे लिए विशेष रूप से उपयोगी होगा। अपने पष्ठा म जनेत्र व उपयासा स इसी प्रकार के प्रसंगा का उद्धृत और विश्लेषित किया गया है।

अब हम यह पता लगान की चेष्टा करेंगे कि चेतन मन की प्रविधा मे किसी भी पात्र की वाक्य रचना, गल्प-वचन और अन्तत उसकी अभिव्यजना किन रूपो म अपने आपको प्रकट करती है। जनेत्र आरम्भ से ही एक मनो वचनिक उपयासकार रहे हैं इसलिए परल स लगाकर अनंतर तक इस स्थिति का सर्वक्षण करना और तदनन्तर उसस कुछ निष्पन्न निबालना हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। परल से कुछ उदाहरण लिए जाए

(१) सत्यधन और गरिमा काश्मीर की मनोरम पष्ठभूमि म एक दूसरे से मिलते हैं। परिवार व अय सदस्य जानबूझकर उन्हें एकांत देते हैं। गरिमा का कटो और सत्यधन के सबध शात हैं किन्तु फिर भी वह कटो की पराम्त कर सत्यधन को अधिवृत्त किया चाहती है। इसी री म जब गरिमा सत्यधन को कटो के बारे म बतलाने के लिए विवश करती है तो वह अपनी जान छुड़ाने के लिए केवल यही कह पाता है ?

—वह गवई लडकी है मड़ी पगली है। उसका क्या सुनोगी ?

—बड़ी पगली है।—मुनूँ तो उसका जरा पागलपन ?

—उह छोड़िए।

—वह लकिया भी तो उसी का पागलपन है न !

वह चीन्हा । दगा बान बड़ रही है ।—तो यह लोग में भी रहती है । तबिए का भी पना सगा रता है । यह बान है । मरा तो अधिभार कृष्ण है नहीं धान अधिभार की सतबता ग रधा भी करनी आरम्भ कर दो । पर अब यह बात म कहा तक भुजता जाण ? बाना—हां है ता ।

—है तो ?—बड़े ठडे रिस से बहते हैं यह घाप ।

—नही ता क्या

—अच्छ जान दो । गरिमा ने कहा घोर सभी एक ताने उटे हुए भाव से उतारा चेहरा चमक गया, पूछा, अच्छा, मैं बसी ही बन जाऊ तो बसा ? तुम्हें बसा सगगा ?

—तुम बन नही सकती ।

—बा गबनी हू यही ता तुम जाने नही ।

‘घाप’ से ‘तुम’ पर यह बच उत्तर घाई धी, सो उसे पता नहीं चलता ।

प्रस्तुत उद्धरण म एक नगर-बालिका युवक सत्यधन पर घणना अधिभार घाटनी है । इस अधिभार प्राप्ति व माग म बट्टा बाटे की तरह घुम रही है । इस बाटे को किसी तरह निवास देना ही गरिमा का सत्य है । उनके चेतन मन म अधिभार प्राप्ति की भावना है अथवा चेतन मन म अधिभार प्राप्ति की भावना म बाधा डालन वाली बानिजा को अपने उद्देय व पय म हानन की प्रक्रिया है । तबिया प्रणय प्रतीक है । गरिमा का बट्टा जमी ही बन जाने की भावना उसके व्यक्तित्व पर अपने व्यक्तित्व को आरोपित करने का एक सबल प्रयत्न है । ठठ दिन स कहने की बान म एक अच्छेन व्यंग्य है जम यह कोई एक सीसी विमटी हा जिसकी मरु से वह सत्यधन के मन म स बट्टो का निवालकर बाहर फेंक दगी । गरिमा का घाप म तुम पर उतर घाना उमकी अधिभार भावना का घातक है । सत्यधन चेतन रूप से गरिमा के प्रति सम्मोहित हैं किन्तु उनका अथवा चेतन म बट्टो का प्रभाव अविगिष्ट है । इसी अविगिष्ट प्रभाव को गरिमा एक प्रगल्भ युवती के समान बडी कुशलता से निवाल फेंकना चाहती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत उद्धरण म चेतन मन की प्रक्रिया भाषा को एक द्रुत रूप प्रदान करती है और उसम मन की प्रवृत्त अप्रवृत्त भावना का स्पष्ट प्रतिबिंब रहता है । इन भावनाओं के विस्तारण मे हम किसी भी पात्र के मन का ‘स्कीनिंग’ कर सकते हैं । मनोविज्ञान का यह एक अमोघ अस्त्र है ।

(२) बट्टो के तेल से गीने हो रहे घाने वाले कमरे म विहारी और उसके

बीच जो बातचीत हुई है वह न केवल सम्वाद सौष्ठव की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण है बल्कि उसकी व्यंजना, चेतन और अवचेतन के अनेक पटों का खोलती है। बिहारी के चेतन मन में यह भावना है कि वह कट्टो को सत्यपन के प्रति विरक्त कर दे और अवचेतन मन में यह भावना है कि सत्यपन के रिक्त स्थान में अपने लिये स्थापना बना लें, किन्तु क्या यह संभव हो सकेगा? इसी सन्दर्भ में हम निम्न उद्धरण पर विचार करेंगे, 'पर देखो-देखो, कट्टो अचेत मूर्च्छित होकर गिरी जा रही है। बिहारी ने झट से सभल लिया। सत्य पर उस बड़ा गुस्सा था रहा है। सत्य यहाँ होता तो उसका सिर पक्कड़ पर इस कट्टो के पैरों के पास घूम म इतना घिसता कि बाल सारे उड़ जाते। हाय, कर्म्यस्त स्वयं के इस अद्भुत पारिजात की गंध को झूठा करके छोड़े जा रहा है।

कट्टो को साट पर लिटा दिया। कुछ उपचार से होश आया। कट्टो ने जगकर देखा कि बिहारी सुथूपा में लगा है।

बिहारी बाबू आप जाओ। उनसे कह देना अपने कामों में कट्टो की गिनती न करें। मेरे पीछे उधे थोड़ी सी चिंता भुगतनी पड़ी तो मैं अपने को क्षमा न कर सकूँगी। मैं क्या रही, जो मेरे पीछे उन्होंने दुःख भुगता। न हो तो मैं ही उनमें कट्टो। कहूँगी अपनी कट्टो पर इतना अहसान का बोझ न लादो, मुझसे उठाया न जावेगा, मैं उसका नीचे सदा दुःखी रहूँगी। इससे मेरी गिनती छोड़ दो। तुम्हारे सुख से ज्यादा मुझे कुछ नहीं चाहिये। उसी को नष्ट कर दूँगी, तो कहीं की न रहूँगी। बिहारी बाबू आप जाओ। बड़ा कष्ट पहुँचाया आपको। पर कट्टो बड़ी सुखी है। बहुत दिनों के बाद आज मालूम होता है वह कुछ दे सकेगी, जो उनकी खुशी की राह खोल दे। बड़ा सौभाग्य है कि अश्विन मैं उनके किसी काम आऊँगी। उनसे कहना, कट्टो पर विश्वास रखें वह उनकी बड़ी श्रेणी है।—नहीं मैं ही कहूँगी।

बिहारी ने कहा—दुनिया में सभी सत्य नहीं हैं, बिहारी भी है। तुम्हारी तरह पुरुष भी है, जो बिना लिये दे सकते हैं।

—नहीं, सभी उन जैसे नहीं हो सकते। वह जो करेंगे, ठीक करेंगे। और ठीक करने में अपने को बचायेंगे नहीं। देने लेने का कुछ सवाल नहीं है।

—लेकिन

—नहीं तुम उधे नहीं समझ सकते।

इस तरह कह कर बिहारी चुप खड़ा रह गया। इस लड़की का विश्वास जो अब गडकर हिलने का नाम नहीं लेगा—चाहे प्रलय आ जाये, चाहे हिमालय ढह पड़े, जो अटल अडिग खड़ा रहेगा। हो जो होना हो। इस विश्वास को

देखकर वह स्तम्भित रह गया।^५

उपयुक्त उद्धरण म विहारी और कट्टो व मन व द्रत का लेखक ने अभि व्यक्ति दी है। चतन की प्रनिया म पढकर अबचतन विन विन रूपा म अपनी पखुडिया को प्रस्फुटित करता है, इसका यह एक प्रतिनिधि उदाहरण है। कट्टा सत्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं सुनना चाहती क्वाकि उसके मन म एक अटल अडिग विस्वास है। घूल म शतना घिसना कि बाल सारे उड जाते।' इस अभिव्यक्ति म विहारी के मन के अमण की प्रवल व्यजना है। इस वाक्य का दूसरा पहलू यह भी है कि वह सत्य को अपात्र सिद्ध करके उस अखून पारिजात की गध का स्वय लिया चाहता है। रखाकित वाक्य सख्या दा म प्रणयोत्सग का चित्र है। सच्चा प्रेम कुछ लना नहीं चाहता वह तो अपन को दवर ही पनता फूलता है। रखाकिन वाक्य सख्या तीन म विहारी प्रणय भावना की विमलता की दृष्टि से अपन को कट्टो के समकक्ष सिद्ध बिया चाहता है। इसम अप्रत्यक्ष रूप स यही भावना है कि कट्टा और सत्य व स्थान पर कट्टो और विहारी की जोड़ी ही अधिक उपयुक्त रहगी। रखाकित वाक्य-सख्या चार म नारी के अटल अडिग अखड विस्वास का एक सजीव चित्र है। प्रणय के एस निमल रूप का चूकि विहारी ने अभी तक नहीं दखा था इसलिय वह स्तम्भित रह गया। इस प्रकार स्तम्भित रहन म उस अपन प्रणय की विफनता भी दिखाई दी अर्थात् वह कट्टो का दाम्पत्य के प्रणय-सून म आबद्ध न कर सकेगा। प्रस्तुत सम्वाद म मन व चेतन और अबचतन द्रतमयी मृष्टि के जड और चेतन की तरह एक दूसर व प्रगाड आलिंगन म आबद्ध हैं।

(३) परख के अन्तिम स पूव व प्रकरण म हम सत्य का गरिमा के प्रति विशुद्ध और उसस कटा हुआ पात हैं। एसी स्थिति म कट्टा उसस मिलन आती है और सत्य के पर पकडत हुए कहती है मेरी जाजी का तुम कुछ नहा कह पाओग। क्या मैं तुम्हारी नहीं हूँ ?

—नहीं काई नहा हो। मैंने अपन हाय से तोडकर तुम्ह दूर फक निया और उस



अगले राज आई चालीस हजार के नकद नाट सामने क्रिय।

—न-न-न

—बोला नहीं वह चुक हा।

५ परख पृ० ६६७० द्वितीय आवृत्ति १९४१।

६ परख पृ० ११३ द्वितीय आवृत्ति १९४१।

—बट्टो ।

—देखो, तुम जुबान हार चुके हो ।

—बट्टो मुझे नरक में मत घसीटो ।

—हैं यह क्या अशुभ लाते हो मुह पर ।

—उहें म्पये की जरूरत थी । वह उनकी आदत में पड़ गये थे ।

यही कमी थी, जिसने 'न न' को कम करते-करते आखिर अनमने मन से लेने को बाध्य कर दिया ।*

उदररुण सख्या दो म, दो विरोधी भावनाओं की अभिव्यक्ति है । एक और कट्टो यह भी नहीं चाहती कि सत्य गरिमा की आलोचना करे । दूसरी और वह सत्य के प्रति अपनी प्रबल आत्मीयता भी प्रकट करती है । एक उत्सगमयी नारी का मन तलवार की ऐसी ही दुधार पर चलता है । सत्य के मन में विश्वास है कि उन्होंने अपने हाथ से तोड़कर कट्टो को दूर फेंक दिया और उस मायाविनी गरिमा के चक्कर में फँस गये । उदररुण-सख्या तीन में सत्य की 'न-न' चुपके से हा में परिणत हो जाती है, क्योंकि उनके मन के चेतन में अस्वीकृति का भाव विद्यमान है और अचेतन में पैसे का लोभ कुडली मार कर बड़ा हुआ है । मन के ऐसे ही द्वत भावों की अभिव्यक्ति में चेतन और अचेतन का विरोधाभास स्पष्ट रूप से लक्षित होता है । रचनाकार की यही मन स्थिति आज सचेतन कहानी में अपनी अभिव्यक्ति ढूँढ रही है । मनुष्य का मन स्वीकृति और अस्वीकृति के आवरण में लिपटा रहता है और उसकी अस्वीकृति कब स्वीकृति का रूप लेती है और कब उसकी स्वीकृति, अस्वीकृति में बदल जाती है इसी रहस्य के संधान में आज का उप-यासकार निरत है । मन में जड़ और चेतन का जो सम्मिलित प्रभाव अगड़ाई ले रहा है उसी की यह अभिव्यक्ति है । मनोविज्ञानपरक शली तात्विक अध्ययन में इस द्वत स्थिति का महत्व निर्विवाद है ।

सुनीता

सुनीता भोजन के लिये हरिप्रसन्न की प्रतीक्षा कर रही है । बारह बज गया, एक बज गया दा बज गया वह नहीं ही आया । इस प्रतीक्षा के भार को हलका करने के लिये वह भूले सितार को छेड़ बठी है ।

'सितार के सुर मिलाकर उसने बजाना आरम्भ किया । जाने भीतर क्या रका था जो सितार के सुरा में बज उठा । उस सुर में प्रणय भी नहीं है,

अभियाग भी नहीं है। मात्र एक निवेदन जैसे है। उसमें शिकायत नहीं है, केवल उच्छ्वास है। सितार में से किसके प्रति यह संगीत उत्थित हो रहा है वह नहीं जानती। वह तो बजाये जाती है उस संगीत के भीतर का प्राण उसकी आत्मा में से निकलकर सितार के तार के सहारे गूँज रहा है कि फिर इस गूँज की गाद में खो जाये। वह गूँज कर कमरे में भर गया है और वह बजाये जा रही है।”

जस बत्ती साने से पहले एक साथ विस्फारित हो अतिगाय उदीप्ति से जल उठे मानो वैसे सुनीता की अगुलिया की कठोर ठोकर से दो एक अतीव सगत स्वर कापते हुए तार में से निकले। गूँज से अधिक उनमें चीख थी। फले नहीं वे गूँज में भरे अवकाश का चीरते हुए चढ़ते गये चढ़ते गये। दम रहा तब तक चम्ते गये कि अन्त में दम हार, वे स्वर शीघ्र से गिरकर पाताल में आ एकदम मूच्छित हो सोये।

संगीत चुक गया। तब सितार को सुनीता ने धीमे से अलग रखा और आहिस्ता से वह उठकर चल पड़ी।

मानो अब कोई बात नहीं है। अब वह हस भी सकती है। यदि कुछ था तो सितार से सुबक कर वह चुक गया है। अब सब ठीक है।^८

प्रस्तुत पंक्तियाँ में सुनीता के मन में प्रतीक्षा की चेतना है। किसी के लिये जब प्रतीक्षा की जाती है, और जब वह नहीं आता तो मन खीझ उठना है। किन्तु ऐसा तभी होता है जब प्रतीक्षा करने वाला प्रतीक्षित के प्रति दिल चस्पी रखना हो। कहा गया है कि यह दिलचस्पी मात्र एक निवेदन है। उद्धरण के उत्तराद्ध में एक वाक्य है गूँज से अधिक उनमें चीख थी। यह चीख किसी के मन की कातरता को प्रकट करती है। यह भी सक्त लिया गया है कि यदि कुछ था तो सितार में से सुबक कर वह चुक गया है। इसमें सुनीता सामान्य (नारमल) हो आई। उसने अपने मन की भावनाओं का आरोपण सितार पर किया और इससे वह हल्की एवं प्रकृतिस्य हो सकी। प्रश्न उठता कि प्रतीक्षारत सुनीता के अवचेतन मन में क्या है। यहाँ निश्चय ही उसके अवचेतन में एक पुरुष के प्रति कौतूहल भावना है। वह प्रतीक्षित के प्रति एक लगाव अनुभव करती है। सितार के सुरों में उसने अपने विमोक्ष को ही ऋकृत किया है। चतन मन की प्रतीक्षा अवचेतन मन में कौतूहल का रूप ले लेती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति की सम्पूर्ण क्रियाओं के मूल में उसका अवचेतन मन ही काय करता

८ सुनीता पृ० ६५ दूसरा संस्करण १९४१।

९ सुनीता पृ० ६६।

है। अचेतन मन की अभिव्यक्ति से ही व्यक्ति सहज हो जाता है, जस सुनीता सितार के सुरा में अपने आपको व्यक्त कर हल्की हो गई है।

सुनीता की सितार-साधना के समान ही हरिप्रसन्न की चित्र साधना उसकी आत्माभिव्यक्ति की प्रबल साधना है। हरि ने अपने चित्र का शीपक रखा है ओ तू। पन्सिल की मदद में उसी तू को कागज पर बाधने के प्रयास में वह लग रहा है और लग रहा है।

श्रीकान्त ने रात को काइ बारह बजे उठ कर देखा बिजली जल रही है और हरिप्रसन्न चित्र में लगा है सो लगा ही है।

फिर अचानक तीन बजे के लगभग वह फिर चौंक कर उठ बैठा। तब भी देखा बिजली जल रही है। धीमे धीमे परा से गया कि कहे हरि बहुत हुआ, सोओ। किन्तु पास जाकर देखा, तो हरि दोनों हथेलिया पर ठोड़ी रखे, उगलियों से कनपटी पकड़, सामने बिछे कागज पर काली लकीरो से बने आल जाल को ऐसा खोया सा देख रहा है मानो वहा उसके प्राण कील दिए गए हा। दखवर श्रीकान्त चुपचाप लौट आया।^१

प्रस्तुत विवरण में एक चित्रकार की तन्मयता स्पष्ट ही आभासित होती है। उसके चेतन मन में यह भाव है कि वह अपने मित्र श्रीकान्त के यहा उसकी सौंदर्यमयी भार्या सुनीता के निकट सम्पर्क में आया है। उसके अचेतन को इससे गुदगुदी हाती है। क्यों? सम्भवतः सौंदर्य का सम्मोहन कुछ ऐसी ही प्रतिक्रियायें मन में जगाता है। इसी सम्मोहन की अभिव्यक्ति वह अपने चित्र में किया चाहता है। उस चित्र के प्रति उसकी तल्लीनता उस सौंदर्य के प्रति उसकी तल्लीनता को भी प्रकट करती है। जहा चेतन में उस सौंदर्य को अभिव्यक्त करना ही उसका उद्देश्य है वहा अचेतन में कुछ ऐसी भावनाएं भी हैं जो अपने असली रूप में प्रकट नहीं हो सकती। उनके लिए किसी कलाभिव्यक्ति का सम्बल चाहिए। यह कलाभिव्यक्ति उसकी भावनाओं का प्रक्षेपण है। यदि हम इस चित्रकृति का विश्लेषण करें तो सहज ही उसके प्राणों की याह को पाया जा सकता है, और तब हम समझ सकते कि उसका प्राणों में सुनीता का सौंदर्य किस प्रकार कील दिया गया है।

चेतन और अचेतन की आख मिचौनी का प्रतिनिधि उदाहरण सुनीता का निवसन प्रकरण है। कभी-कभी ऐसा होता है कि सकट की स्थिति मानव-जीवन के यथाय को सतह पर ले आती है। युद्धकाल में आदश नहीं चलने। मनुष्य का देवत्व और दानवत्व दोनों ही प्रकट हाते हैं। जब हरिप्रसन्न के सिर पर सकट

मडरा रहा था तो उसकी इस शोचनीय अवस्था को देखकर सुनीता उस किसी बात के लिए ना नहीं कर सकती थी 'उस समय उसकी बाहुमा म धिरो हुई अनुग्रहीता की भाँति चलन लगी । माना इसमें उसे कुछ जीवनवृत्तापता ही उपलब्ध हुई ।''

जिस वातावरण में हरि और सुनीता का मिलाप होता है वह भी बड़ा सम्मोहक एवं मन के अवचतन या चेतना की मत्तह पर ल आन वाला लगता है वह एक घिसी चट्टान थी । चट्टान का स्पष्ट ठरा था । ऊपर तार पे । बपार धीमी धीमी चल रही थी । आगपास मनुष्य का पता न था । गहर दूर था बहुत दूर । यहा वन था वनस्पति थी । धीरे धीरे म वन मोया था वनस्पति भी चुप साईं थी । हवा म कभी भाँडियों की कुछ फुनगिया जरा हिनती चोनती थी ।'' एमे उद्दीपक वातावरण में हरिप्रसन्न ने जो अपनी बाहुमा स अपनी जधा का सहारा देकर लिटा लिया है सो वह भी वहा लेट गई है । वह वृत्तन है ।''

हरिप्रसन्न ने कहा सुनीता मैं अब तुम्हें भाभी नहीं कहता जिन्हें भाई कहता हूँ उनकी ही माफत तुम तक पहुँचू अब ऐसा नहीं है । मैं तुम्हें सुनीता कहूँगा । हम सीधे एक दूसरे के सामने हैं । किसी की माफत हम दोनों के बीच में नहीं है । श्रीवात तुम्हारा पति है, मेरा मित्र है । पति एक होता है मित्र भी नायद एक ही होता है । मेरे लिए तो वह एक ही है । लेकिन मौत से बड़ी क्या चीज है ? अगर कोई प्रभु है ईश्वर है तो मौत में मैं उम देखता हूँ । यह जो हमारे ऊपर मौत का हाथ है यही उस प्रभु की रक्षा का हाथ है । सुनीता अब मैं और मौत आमने-सामने हैं । मैं उससे आख मिचौनी नहीं खेलूँगा । मैं खुली छाती पर उसे लूँगा । अब यह दिना की बात है । दिन उगली पर गिन जाए इतने भी अब हम दोनों के बीच में मत समझना । उस महाशक्ति के सामने होकर मैं झूठ नहीं बोलूँगा । मैं सच कहूँगा । मैं सच कहता हूँ मरी सुनीता—

और निश्चल पड़ी हुई सुनीता की बाहु को उठाकर उसने अपनी आखा से लगा लिया । उसका कण्ठ भर आया उसकी देह कापने लगी । वह जैसे डर से भर गया ।

मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ—प्रेम ? लेकिन मैं भी नहीं जानता हूँ सुनीता ।

११ सुनीता पृ० १७७ ।

१२ वही पृ० १७७ ।

१३ वही पृ० १७७ ।

और बिल्कुल अपने मुख के समीप ही ठहरे हुए उस सुनीता के मुख को टकटकी बाघवर वह देखता रह गया। "

प्रस्तुत प्रकरण में एक पुरुष अपने सम्पूर्ण आवरणों का परित्याग कर एक नारी के समान है। धामन सामने की यह स्थिति हम डी० एच० लारेस की उस मायता की याद दिलाती है जिसमें कहा गया है कि स्त्री पुरुष के सामाजिक संबंध केवल एक प्रवचना हैं मूल में वे नर-नारी ही है। सम्प्रति और सस्त्रि के आवरणों में उठ देकर भाभी भाई-बहन अथवा माता-पुत्र बना दिया है किन्तु इन सामाजिक संबंधों से परे वे निरपेक्ष एवं निरी नारी ही है। हरिप्रसन्न का आदिम मानव जतन यहां जाग गया है और उसका जागना ही हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जिस चेतना और अचेतना के बीच का विभाजक आवरण हट गए हैं और दोनों मिलकर एक हो गए हैं। ऐसी मानसिक प्रक्रिया में जनेत्र की भाषा शैली यथाथ तत्त्व को ओवर ही चलना चाहती है। सक्क की छाया में सुनीता की वरुणा का भी उलसाया गया है। सुनीता के द्वारा जब हरिप्रसन्न के इस व्यवहार को सह्य नहीं गया तो हरिप्रसन्न ने कहा सं चले जाने की बात कही जा कि उन परिस्थिति में एक धमकी भी कही जा सकती है। हरि वास्तव में कहा से नहीं जानता चाहता था किन्तु प्रकट में वह सुनीता से जाने की अनुमति ले रहा था। ऐसी स्थिति में प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप नायक एवं नायिका की सहायता करता है रात का दो ढाई बजे के करीब चांद निकल आया। दूध-सी चादनी बिछ गई। आसमान हसता दिखाई दिया। प्रकृति भी उसके नीचे खिनी। वातावरण में अजब माह था। बयार में गुलाबी सर्पें थी।



और एक घड़ी बीती, दो घड़ी बीती। जितनी घड़ी बिताई जा सकी बिताई। वह इसमें हारता ही गया फिरता ही गया। अंत में उठा। उठकर चला। वह कुछ नहीं जानता। (") जा रहा है क्योंकि पाव ले जा रहे हैं। कहा जा रहा है?—जहा पहुंच जाए। जहा कहीं उसके भीतर का दाह उसे टैले लिए जा रहा है। (") उस ओर, जहां कोई सोया पडा है। कहा, जहा विश्व का केन्द्र है, जहा से सबको जीवन प्राप्त है, जहा से फिर सबको मौत भी मिलती है।

सुनीता खुल पत्थर पर सो रही है। तकिया बाह का भी नहीं है। वही है और कुछ भी नहीं है और वह सो रही है। ओह रेशमी वस्त्र चान्नी में कैसे बिल रहे हैं। और यह मुखड़ा विनिर्दिष्ट, सम्पुटित कसा प्यारा लग रहा

है। क्या प्यारा और क्या जहर।



वह आया था कि बस, एक बर उस साती हुई का दग न कर वह उन्ही पाव लौट जाएगा। लेकिन वह तो उस दगन का बहा पान लगा। पीत-मीन क्या हुआ कि एकाएक बटकर उम नारी क धरणा की उगनिया का उसन धीम स चूम लिया। ऐम धीम कि शायद घाटा न छुप्रा नी नही।

किन्तु लहक ता लहकती ही गई। वह पाम धाकर बटा। धीम स उमर हाय का न्याया और मुह स लगाया गन दान फिर सुनीता की दह पर उमन हाय परना गुर किया। मन् जस उस पर चढ़ता ही जाता था।



क्या चाहता हूँ ? तुम पूछोगी—क्या चाहता हूँ ? ता सुना तुमका चाहता हूँ समुचा तुमका चाहता हूँ। उसके बाद।"

रगाकिन वाक्य मख्या एव म चेतन मन, भवचतन क द्वारा ठना जा रहा है। नारी-मौल्य का विद्व का कद्र बनाया गया है क्योंकि प्राणा का उत्तम नही अन्तर्निहित है। दागनिवता की मुग्ध म यह भी कहा गया है कि उमा जीवनन्यायिनी नारी स अतत मृत्यु भी प्राप्त हाती है। इमी तथ्य का कवि पत ने इस प्रकार व्यक्त किया है -

यदि स्वर्ग कही है इस भू पर
तो वह नारी उर क भीतर।
यदि नरक कही है इस भू पर
ता वह भी नारी उर के भीतर।

एमा कहकर कवि और उपयामकार इसा तथ्य का सम्पुष्ट करत हैं कि नारी सौन्दर्य जहा एक अर जीवनन्यायिनी है वहा उसक प्रति अनिगम अनु रकिन बिनागमारिणी भी है। चेतन और भवचेतन को कुहेलिका म जनेद्र गद्यकाव्य लिखने लग जाते हैं। इसका उदाहरण 'विनिद्रित एव सम्पुद्रित मुलह वाला प्रकरण कहा जा सक्ता है।

दगन म चुम्बन तक की स्थिति आ गई और वासना थी कि लहकती ही गई। प्रमुप्त वासनाए भवचेतन के द्वार को खालकर चतन क धरातल पर आ जाती हैं और मुलरर मलना चाहती हैं और उसका चरम सीमा है—समूची सुनीता का चाहना। यही चाहना सुनीता को निवसन करता है और उस रूप का भन न पाकर हरिप्रसन्न भाग खडा हाता है। प्रदन उठता है कि क्या यह

स्थिति सम्भाव्य है ? इसका उत्तर हा और ना दोनों ही रूपा में दिया जा सकता है किन्तु जनेद्र का यह एक प्रिय व्यसन है कि वे नायक को चरम सीमा तक ले जाकर पीछे धकेल देते हैं और जिसे नदी के द्वीप के सन्दर्भ में अज्ञेय ने 'फुलफिलमट' कहा है, वह नहीं हो पाता । कुछ आलोचकों ने इस स्थिति को गांधीवादी उप-यासकार की संज्ञा भी बनाया है । जब नारी अपने को देने को तैयार हो, तो प्रसुप्त वासना से विवहल पुरुष भला कैसे भाग सकता है, किन्तु ऐसे स्थल पर जनेद्र दाशनिक्ता का आवरण डाल देते हैं । वे कहते हैं कि हरिप्रसन्न उस निवसन रूप को सह नहीं पाया और भाग खड़ा हुआ । ऐसा करके वे सम्भवतः इस बात की आशंका करना चाहते हैं कि सौन्दर्य के प्रति आसक्ति तब तक है जब तक वह दबा डबा है और जब वह निरावरण हो जाता है तो मोह भंग की स्थिति आ जाती है । हरिप्रसन्न अपने चेतन मन से समूची सुनीता को प्राप्त करना चाहता है उसका अचेतन मन भी उसे इसी ओर डेल रहा है किन्तु इसकी अंतिम परिणति दाशनिक्ता का रूप ले लेती है । ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि चेतन और अचेतन के बीच जो विभाजक रेखाएँ हैं वे हट गई हैं और व्यक्ति का आदिम रूप अपनी पूरी नग्नता और यथायथा के साथ पाठक के सम्मुख प्रकट हुआ है । हिन्दी उप-यास साहित्य में यह प्रकरण अत्यंत विवादास्पद रहा है किन्तु यह भी एक तथ्य है कि इसी प्रकरण ने सुनीता की लोकप्रियता को बढ़ाया है । इसमें जा ऐंद्रियता का तत्व आ गया है वह आगे के उप-यासों में क्षीण से क्षीणतर हो गया है । गांधीवाद की गहन दाशनिक्ता ने उप-यासकार के इस पुस्तकमय रूप को आग चलकर लीज लिया है ।

त्यागपत्र

चेतन और अचेतन मन स्थिति के अध्ययन की दृष्टि से त्यागपत्र का जनेद्र के उप-यास साहित्य में एक विनिष्ट स्थान है । सबप्रथम हम उस प्रकरण को लेंगे जहाँ डॉक्टर के खत को लेकर प्रमोद लौटा है । इस खत को लेकर तो बावेली मच गया था । बुद्ध ने कहा 'तू बुद्ध नहीं जानता । तू गधा है । मेरे दिल में आग लग रही है ।

मैं चुप था ।

' तू जानता है दिल की आग क्या हाती है ?

किसी दिल की आग का सचमुच मैं नहीं जानता था, लेकिन उस समय बुद्ध को देखकर उनकी उस क्षण भर में हाँकर उसी क्षण बुझ जाने वाली अनबुझ मुस्कान को देखकर मेरे मन की पीड़ा बहुत धनी हो गई थी । मन में होता था

कि किस तरह से मैं इनके काम आ पाऊँ कि उनका जी हल्का हो, और नहीं तो उनके गले लग कर फूट ही पड़ूँ।

उन्होंने कहा 'देख प्रमोद, शीला के भाई का कोई पगाम आया है कि मैं छत से गिर कर मर जाऊँगी। मुझे उन्होंने क्या समझा है? मैं कहना चाहता था कि शीला के भाई ने कहा है कि वे अभी एक महीना यही हैं और कि वे मुझे बच अच्छे मालूम होते हैं लेकिन तभी बुआ ने कहा जाकर शीला से कह देना। मैं सच कहती हूँ, मैं मर जाऊँगी। मृणाल का कौल भूठा नहीं होता।' —बुआ ने यह ऐसे कहा कि माना अभी यह काफी नहीं हुआ अभी तो और भी पक्के तौर पर अपने को समझाना है कि ऐसी हालत में मरना ही होगा कुछ भी श्रय सोचना विचारना न होगा।''

दिल में आग लगना मन की द्रुत स्थिति का परिचायक है। मृणाल के चेतन मन में पतिव्रता का भाव विद्यमान है और अवचेतन मन में डा०प्रेमी का प्रसंग काटे की तरह कसक पदा कर रहा है, इसी से उसके दिल में आग लगी है। इसी बात को न समझ पाने के कारण प्रमोद को गधा कहा गया है। अनबुझ मुस्कान में एक प्रकार व्यंग्य है जिसे यह मुस्कान एक प्रहेलिका हो। छत से गिरकर मरने की बात में पातिव्रत्य के सक्ल को दोहराया गया है और यह भाव भी व्यक्त किया गया है कि शीला के भाई का पगाम आना अनुचित है इससे पातिव्रत्य को टेंस लगती है। मुझे उन्होंने क्या समझा है मैं भी यही अंतर्ध्वनि निहित है कि वह एक पतिव्रता नारी है विश्वासघातिनी नहीं। मृणाल के चेतन में पातिव्रत्य का भाव प्रबल है किंतु उसका अवचेतन उसे प्रणय प्रसंग की ओर टेनता है। ऐसी मानसिक स्थिति में वह प्रकट करती है मैं सच कहती हूँ मैं मर जाऊँगी। मृणाल का कौल भूठा नहीं होता।' इस वाक्य में सच कहने की बात की टेक मन के भूठ को दवाने का एक प्रयत्नमात्र है। दूसरे वाक्य में फिर इसी सक्ल को दोहराया गया है जिससे यही प्रतीत होता है कि भूठ दब नहीं रहा है उभर उभर कर वह मन के ऊपर आ रहा है जहाँ नतिकता की भावना मन को दबोच देती है। यह प्रयत्न ठीक बसा हो है कि जैसे कोई कहे कि मैं चोरी नहीं करता। चोर के ऐसा कहने में समाज और पुलिस का आस है मृणाल के ऐसा कहने में समाज और पातिव्रत्य का आस है जो कि सत्य के प्रति निष्ठा में प्रकट हो रहा है।

उद्धरण के अंतिम वाक्य में यही बात फिर धुमा कर कही गई है। कुछ भी श्रय सोचना विचारना में यही सक्ल है कि मृणाल को रह रह कर अपने

प्रणय प्रसंग की याद आती है और अज्ञात रूप में यही भावना उस समुदाय जाने के बारे में उत्साहित नहीं करती ।

ज्यो-ज्या जान का दिन आता उनकी निगाह कुछ बघती-सी जाती थी । जहाँ देखती, देखती रह जाती थी । जैसे सामने उन्हें और कुछ नहीं दीखता । सब भाग्य दीखता है और वह भाग्य चीन्हा नहीं जाता । ऐसी आपेक्षित पूछती हुई-सी निगाह से देखती मानो प्रदम रोक कर भी उत्तर मागती हो कि मैं कुछ चाहती हूँ, पर अरे कोई बतायेगा कि क्या ? ११

उद्धरण का अन्तिम वाक्य मृणाल की स्थिति का स्पष्ट दर्पण है । वह स्वयं नहीं जानती कि वह क्या सोच रही और क्या कर रही है । ऐसी ही अनिर्णीत मन स्थिति में व्यक्ति भाग्य का साहरा लेता है सो मृणाल ने भी लिया । और इतनी उधेड़बुन के बाद उसका यही निष्णय था कि वह दवा के नाम पर डाक्टर से जहर मगवाये और उसे खाकर अपने जीवन को समाप्त कर ले । इससे यही प्रमाणित होता है कि जिस बात का निष्णय किया गया था वही बात प्रकट में हो रही है । डाक्टर के पास दवा के नाम की परची भेजना एक प्रकार का प्रतीकपूर्ण संदेश है, कि उसके मन को इतना आघात लगा है कि वह जिया नहीं चाहती । और मरेगी भी तो उही के द्वारा भेज गये जहर से । यह भी अपनी भावनाओं के विनिमय का एक तरीका है जिस कि मृणाल व अचेतन मन ने दूढ़ निकाला है । चेतना के स्तर पर जिस बात को वह स्वीकार नहीं कर सकती उसी को अचेतना के स्तर पर स्वीकार कर लेती है । ऐसे प्रसंगों में जनेन्द्र की भाषा अत्यन्त प्रसूत एवं वापसी हो जाती है और यहाँ हम उनकी शब्द लाघवता की शक्ति एवं व्यञ्जना की क्षमता का दर्शन करते हैं । मन की आड़ी तिरछी रेखाओं को अभिव्यक्त करने में वे अप्रतिम हैं । प्रेमचन्द की भाषा-शैली से उनकी भाषा शैली में यहाँ एक स्पष्ट अंतर आ जाता है और पाठक को यह अनुभव होने लगता है कि जैसे उपयोगकार एक नई भाषा को गढ़ रहा हो, जिसमें प्राणों की दीप्ति हो और अचेतना का अंग हो ।

त्यागपत्र में एक ऐसा प्रसंग आता है, जिसमें भूत वतमान और भविष्य तीनों में मृणाल की दृष्टि दौड़ती है । प्रकरण बुझा भतीजे की बातचीत का है 'अच्छा, जाने दा इस बात का । यह बता मैं चली गई तो तू मुझे याद करेगा ? उस समय मैं कहा बुझा मैं तुम्हें पीछे बहुत याद करता था ।'

—मर जाऊँ, तो भी याद करेगा ?

मैं तब समझदार था । कहा, ऐसी बात मत करा बुझा । मैं नहीं सुनना

पाहता ।

—प्रच्छा एक बात बना । तू बड़ा ही जादगा, तब मैं बुलाऊँ ता तू घायेगा ?

—पौरन घाऊगा

—कगी भी हालत म हुई तू घायेगा ?

—हा घाऊगा ।

—तो मुन मैं कहती हूँ तू नहीं घायेगा । मैं तुम बुलाऊंगी ही नहीं । कहती हूँ तुम सब साग मुझे भूल जाना । मैं जसी गई कगी मरी । इमन बाग मैं तुम सागा का बिन्दुल तकलीफ नहीं दूगी । पाढी देर बाग बुधा न मुमम पूछा, तू जानता है पति का घर क्या होता है ?

मैन कहा कि मैं नहीं जानता ।

—स्वग हाता है ।

मैन मान लिया कि स्वग हाता हागा । लकिन मर इम सहज भाव स मान लन स उन्हें जस सात्वना नहीं हुई । बोली वह तो स्वग ही हाता है, जिगव निये ऐमा नही है वही घभागिनी है ।“

प्रस्तुत प्रमग म घनन भविष्यत् जीवन को लेकर बुधा की भागका उपयुक्त पत्तिया म स्पष्ट भाव रही है । उम इस बात स कुछ सात्वना मिलनी है कि उसका भतीजा प्रमान उम बहुत याद करता है और चाहता है । मैं जसी गई कगी मरी ।—इस वाक्य से यह स्पष्ट भावामित होता है कि समुराल को लेकर मृणाल के मन म कोई उल्लास नहीं है बल्कि सत्रास है । चेतन मन स वह पति क घर का स्वग बतनाती है लकिन यही स्वग भवचेतन म मुह पाडना हुआ घाना है और उम लील लता है । दूसरे ही पल मृणाल यह भी सावनी है कि जिस युवनी क लिए पति का घर स्वग नहीं है वह घभागिनी है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि उमके मन म एक धार तो समुराल का आत्मावाणी चित्र है और दूसरी धार भवचेतन म वह उस बटकित अनुभूति भी प्रमान करता है । मार ही दोष को अपने ऊपर लेकर मृणाल ने वस्तु-सत्य पर लीपा-पोती कर दी है । यह भारतीय नारी का स्वभाव भी है । वह परिस्थितिया स समझीता करने का प्रयत्न करती है चाह इसम उसका व्यक्तित्व धार-धार ही क्या न हो जाय ।

उपयुक्त उद्धरण म घनन भवचेतन की घास मिचौनी स्पष्ट रूप स दखी जा सकती है ।

चेतन मन कभी-कभी भवचेतन की बात को स्वीकार करने म भयकर वाप्ट

एक त्रास का भी अनुभव करता है। ऐसा ही एक उदाहरण हम प्रमोद और उसकी मा की बातचीत में मिलता है, "घर पर मा ने पूछा, 'कहाँ रह गये थे?' सतीश कहता था कि तुम एक रोज उससे पहले कालिज से चल दिये थे।"

'मैंने कहा 'बुझा को खोजता हुआ रह गया था। वह उस नगर में रहती है।

जैसे किसी ने उह डक मारा हो मा ने कहा, 'कौ—न।'

बुझा। मैं उनसे मिलकर आ रहा हूँ।'

क्या—आ।'

'मा, वे यहाँ नहीं आ सकतीं?'

मा ने जोर से कहा 'सुन प्रमोद, तेरी बुझा अब कोई नहीं है मेरे सामने उसका नाम न लेना।

लेकिन सुनती हो अम्मा,' मैंने कहा, 'मैं उनको भूल नहीं सकता हूँ।' मा ने कहा, तू जो चाहे कर। पर खबरदार जो मुझसे उसकी बात कही-कुल बोरन कही की।'"

उपर्युक्त पत्रियों में मा का चेतन मन बुझा को पहचानना नहीं चाहता, इसकी अभिव्यक्ति 'कौ—न' शब्द में हुई है। जब प्रमोद ने उनसे मिलकर आने की बात कही तो मा का मुँह फटा का फटा रह गया। क्या—आ में इसी भाव की व्यञ्जना है। मा का चेतन मन बुझा से सम्बन्ध विच्छेद कर चुका है और वे उसे किसी भी रूप में स्वीकार करना नहीं चाहती क्योंकि वह 'कुल-बोरन' है। किंतु प्रमोद है कि वह बुझा को भुला नहीं पाता, और मा की डाट डपट के बावजूद भी वह बुझा से सम्बन्ध बनाये रखता है। यहाँ प्रमोद के चेतन और अचेतन में कोई भेद नहीं है पर उसकी मा ने चेतन और अचेतन के बीच इतनी ऊँची दीवार खड़ी कर दी है कि जहाँ से कोई किसी को देख न सके। यह मा का कट्टर आदर्शवाद ही है, जो कि वस्तु-सत्य को नहीं देख पाता और परिणाम में उनका चेतन, अचेतन को दबाये रहता है। ऐसी मन स्थिति में जनेद्र घृणा एवं जुगुप्सा के सूक्ष्म भावों को बड़ी नाटकीयता के साथ प्रकट करते हैं। 'कौ—न,' 'क्या—आ,' मेरे ज्ञान के साक्षी हैं। एक से विस्मय और दूसरे से क्रोध की नाटकीय व्यञ्जना हो रही है।

कल्याणी

कल्याणी का जनेद्र की औपन्यासिक सृष्टि में एक विशिष्ट स्थान है। उसने

सम्पूर्ण जीवन पर एक रहस्यमयी आध्यात्मिकता का आवरण पडा है। वह जो कुछ प्रकट म दिखाई देती है, उससे बहुत कुछ भिन्न है। उसके बाह्य और आंतरिक रूप म एक बडा भारी विरोधाभास है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके जीवन की सभी अतः प्रवृत्तियाँ अवचतना म ही सास लेती हैं। वह हीनता की भावना से त्रमित है उसे अपने अतीत जीवन का भूत सदा सताता है। इसी स कारण पाने के लिए उसने अपने घर क बड़े मे कमरे को जगन्नाथधाम का रूप दिया है। यह धाम उसकी आस्था का प्रतीक है। इस मंदिर म जात-जात धर्म-सम्प्रदाय अमीर-नरीब किसी का भेद नहीं है। जगन्नाथजी की लगन म वह अपना सब कुछ भूल गई है। उनका सब कुछ जगन्नाथजी और अनपूर्णाजी को अर्पित है। बूढाघर को वह अपनी जगह समझती है। जगन्नाथजी का पल भर को भी यदि विस्मरण हा तो इसी 'बूढाघर' म वे अपने का पटकने लायक समझती है। ऊपर से अंग्रेजी सभ्यता की प्रतिच्छवि उनके पहनावे म दीखती है लेकिन अदर जगन्नाथधाम की ही भावना प्रबल है। मजे की बात यह है कि जब से मंदिर हुआ है उनकी आमन्नी तब से बराबर बढ़ती जा रही है। रागिया की परिचर्या ही उनके जीवन का लक्ष्य है। इसी परिचर्या म वे भगवान के रूप का देखती हैं। पति के प्रति उनका दृष्टिकोण इस प्रकार है "आप उन्हें नहीं जानते हैं। शारीरिक क अलावा वह मुझे और कष्ट नहीं दे सकते। मैं अपने ऊपर उनके प्रेम क दावे को जानती हूँ।^(१) प्रेम करते हैं, इसी से मार तक सकते हैं। लेकिन वह छोड़िए। मेरे शरीर को उहाने इतनी साज सज्जा म रखा है अगर उसको वह बड़ी चोट भी द तो उनको अधिकार है। उनके दड मे मैं बचू क्या ?^(२) क्योंकि जो पुरस्कार सिंगार वह मुझे देते रहे हैं, वह मेरी पात्रता से बहुत था। उसको मैं अपना प्राप्य नहीं माना। इससे। जितना मुझ म छोना जाता है उतनी मुझ पर कृपा की जाती है उतना ऋण उतरता है। पर आप सच मानें, डाक्टर साहब शरीर के अतिरिक्त मेरा कुछ न छुएंगे। और शरीर -रोज तो रागिया को देखती हैं। उसकी यथायता पर मुझे जुगुप्सा होती है। उसकी मगता क्व मुझ म बस नहीं सजती। शरीर की ममता। आह मैंने किस किस अवस्था म उसको द्रखा है। इससे दह को साज से सजाया जाए बेंत स उधेडा जाए, या औजार से चीरा फाडा जाए, सब एक बात है।^१

रेखाकित वाक्य सख्या एक म, कल्याणी न एक विचित्र किंतु स्वाभाविक तक लिया है जा प्रेम करता है वह मार भी सकता है। इस प्रसंग का वे प्राण

नही बढ़ाना चाहती कारण कि इससे उनकी दुखती रग छिल जाएगी। रेखांकित वाक्य-सख्या दा म हीनता की अभिव्यक्ति है। 'पुरस्कार' और 'सिंगार' को कल्याणी पतिप्रदत्त वरदान मानती है। उद्धरण के अंतिम अक्षर म शरीर के विभिन्न विवरणों में एक दाशनिकता का आरोप किया गया है इसी के बीच बैठ स उधेडे जाने की बात भी आई है। जो नारी बैठ से उधेड जाने और देह को सजाने इन दोनों को एक ही चीज के दो छोर समझती हो उसकी दाशनिकता की तो हम प्रशंसा कर सकते हैं, पर यह भी निश्चय है कि वह एक असामाय नारी है। वकील की पत्नी ने कल्याणी के चरित्र में जिन असाधारण लक्षणों का जायजा लिया है वे निराधार नहीं हैं। यह कसी नारी है जो पति के द्वारा दी गई यातना को फूला की महक के साथ सूघती है और जिसे अपनी स्वाधीनता का अपहरण किंचित भी अपमानजनक प्रतीत नहीं होता।

कल्याणी के उद्गारों में भारतीय सस्त्रुति एवं नारीत्व का गौरव-गान है, किंतु वह जिस रूप में ससार की घटनाओं को ग्रहण करती है उससे उसकी दाशनिकता ही प्रकट होती है, और ऐसा लगता है कि कल्याणी के कठ में स्वयं उपयासकार बोल रहा है। मन के इसी द्वैत भाव की अभिव्यक्ति उस स्वप्न के विवरण में स्पष्ट रूप से आभासित हाती है, जो कि पुरुष-कठ और स्त्री कठ के माध्यम से वर्णित किया गया है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि प्राणी अपने ही त्रास को, अपनी बुभुक्षा को एक रूपक दे देता है। ऐसा ही एक रूपक निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है एक पुरुष कठ ने कहा - "चुप नहीं रहेगी, क्यों?"

स्त्री-कठ ने उत्तर दिया- मैं नहीं रहूंगी चुप। कभी नहीं रहूंगी। मुझे मार क्या नहीं डालते? लेकिन चुप मैं नहीं रहूंगी। मैं

'नहीं रहेगी? मुझे गुस्सा मत दिला।

जो मन में है पूरा क्यों नहीं कर डालते हो? लो मुझको मार डालो। पर समझ रखना, चुप मैं मरने के बाद भी नहीं रहूंगी।'

नहीं रहेगी?'

'नहीं, नहीं, नहीं रहूंगी।'

दख मैं फिर कहता हू

नहीं, नहीं, नहीं हा, घोटो गला '

नहीं? तो ले, मत रह चुप

उसके बाद आवाज कुछ भर्राई-सी निकली छटपटाहट सुनाई दी और धीमे, धीमे सब शांत।^{३१}

प्रस्तुत उद्धरण में असरानी-दम्पति के वास्तविक जीवन की अभिव्यक्ति है। वह अपने ही अत्यक्तित्व का इस रूप में साक्षात्कार करती है। जिस जीवन पर आध्यात्मिकता एवं आदर्शवादिता का आवरण पड़ा हुआ है उसका असली रूप उपयुक्त पत्निया में अभिव्यजित है। ऊपर हमने कहा है कि कल्याणी के जीवन में अवचेतना ही चेतना बन गई है और चेतना अवचेतना के रूप में या उसके माध्यम से ही प्रकट होगी है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपयामाकार ने उपयुक्त शब्दों में कल्याणी के वास्तविक स्वरूप का एक रे चित्र ही प्रस्तुत कर दिया है। छीना भपटो गाली-गलौज धमकी और डाट डपट की ही भावनाएँ इन पक्तियों में अभिव्यजित हुई हैं।

कल्याणी में हम एक ऐसा प्रसंग भी मिलता है जिसमें हम चेतन मन की अभिव्यक्ति मान सकते हैं किन्तु इसकी जड़ें भी दूर वही अवचेतन में हैं। 'मैंने उन्हें कहा कि अपने को हीन मानने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन मैंने जो क्रमशः सुना मैं मानूँ कि उससे मैं दग रह गया। वह प्रसंग दोहराने के लिए नहीं है। पर उससे मालूम हुआ कि इस विवाह के लिए कितनी होशियारी उन्हें खेलनी पड़ी थी। जो आज पत्नी है विवाह से पूर्व वह क्या प्रातः भर की रत्न न थी? अच्छे-से अच्छा सबंध क्या उन्हें दुलभ था? फिर भी मैं सफल हुआ तो पर वह इस कथा से प्रसगांतर है जाने दीजिए। किन्तु मुझे यह सब सुनकर अत्यंत कष्ट हुआ। लेकिन देखता हूँ कि डाक्टर जिसको अपनी कारगुजारी मानते आए थे उस पर उन्हें अनुताप भी है। अब वह उन्हें अपनी महिमा नहीं लज्जा मालूम होती है।"

प्रस्तुत प्रसंग में असरानी-दम्पति के सम्पूर्ण जीवन का एक विहंगावलोकन आ गया है। डाक्टर अपने कुटुम्ब को स्वीकारता है जिस चीज को लेकर उसके मन में कभी महिमा जागी थी आज वही चीज उसकी लज्जा एवं सकोच का आधार बनी हुई है। इस अनुच्छेद में वरुण गली जैसे हवाई उड़ाने भरती है और जीवन का बीता हुआ रूप जो कि अवचेतना की जटिलता में खो गया था आज चेतन मन के घरातल पर तरता हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार की स्थिति में जनेन्द्र की भाषा शली अनेक सम्भावनाओं से परिपूर्ण लगती है। जिस प्रकार चेतन और अवचेतन एक-दूसरे से प्रगाढ आलिंगन में आवद्ध हैं उसी तरह पात्रों का अतीत वर्तमान एवं भविष्य भी इस प्रकार के वरुण से भाकता हुआ प्रतीत होता है। इस कालातीत स्थिति में कह सकते हैं। एक दार्शनिक के नाते जनेन्द्र इस अमृत स्थिति को भी अपने गन्ध में मूतिमान कर

देते हैं यह दूसरी बात है कि इस प्रकार के वगना में एक प्रकार की रहस्यमयी जटिलता भी आ गई है जो कि तत्कालीन युग प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं जा सकती है।^{१३}

सुखदा

सुखदा में हम एक ऐसी नारी से परिचित होते हैं, जो कि अज्ञात रूप से क्रांतिकारी जीवन के प्रति सम्मोहित है। इन क्रांतिकारियों की कहानी के सम्मुख वह अपने पति को अपदाय समझती है—वहती है उसके पर की घूल भी तुम हो? क्रांतिकारियों के प्रति गौरव और पति के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा सुखदा के मन में इस कदर भरी हुई है कि वह एक दिन अपने हाथ की, सोन की चूड़िया, अंगूठी गले का लाकड़ उतार कर जोर से फस पर फेंक देती है और अपने पति से कहती है—'लो, यह अपनी चीजें रखो। इन्हीं का तुम्हें डर है न?

पति कुछ देर चौंक हुए खड़े रह गए और फिर उन पत्नी हुई चीजों को उठा कर ताक में रख दिया। फिर अपने आप घरती पर बठ गये। बोले, 'हां मैं डरपोक हूँ। शायद तुम्हारे लायक नहीं हूँ।

मुझे वे शब्द काट गये। तख्त पर से ही बोली 'जा लायक हो, उसे घर में क्यों नहीं लाते? मैं जानती हूँ वह कौन है।

पति का नेहरा राख जैसा सफेद हा आया। लेकिन मैंने कहा तुम्हारा जा कुछ है मुझसे ले लो। मुझे न जेवर चाहिये, न दुलार चाहिये और न कुछ चाहिये। उस वक्त न जाने मेरे मन में क्या हो रहा था। जो हाता था कि जो ये कपड़े पहन रही हूँ चीर चीर कर फेंक दूँ। लेकिन बठी रह गई। पति नीचा सिर किये बठ थे।

समझ में नहीं आता कि मनुष्य में क्या क्या कुछ दबा रहता है। मुझे नहीं पता था कि जिसके लिये मेरे मन में से अगाध प्रेम का भाव समय-समय पर फूटा है, उसके लिये अपार घृणा भी मेरे मन के भीतर हो सकेगी। पर उस समय वहा तख्त पर बठे बठे जसी हिंस्र भावनायें सपटें दे देकर भीतर सुलग आह, आज उनका विचार कर भी काप जाती हूँ।^{१४}

।। प्रस्तुत पत्निया से एक बात स्पष्ट है कि सुखदा भी कल्याणी की तरह

२३ कल्याणी का रचना-काल सन् १९३९ है इस समय हिन्दी साहित्य में छायावाद रहस्यवाद अपने अंतिम सोपान पर था।

२४ सुखदा पृ० २०-२१, द्वितीय संस्करण १९६१।

अवचेतन में जीती है और वही अवचेतना, प्रति क प्रति धिक्कार में उसके मन में फूटती है। रेखांकित वाक्यों में सुखदा की आत्म स्वीकृतियाँ स्पष्टतः अंकित हैं। उसका प्रेम कव घृणा का रूप ल लेगा और उसका अनुराग कव हिंस्र भावनाओं की लपटा में परिणत हो जायेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। वस्तुतः वह अतिवादी भावनाओं में जीने वाली नारी है जिसके लिये कभी भी कुछ भी कर सकता संभव है। अपने अतिवादी के कारण ही वह आज सनीटोरियम में बंदी हुई जीवन के तान-बाने बुन रही है।

एक और प्रसंग में लाल का पत्र मिलने पर सुखदा की मन स्थिति देखिये 'नहीं जानती कि पत्र में क्या था। मीठी बातें नहीं थी कहीं तो बहुत उघड़ी भाषा थी। पर मेरे वह बहुत भीतर तक पहुँच सका। जैसे पत्र नहीं वह व्यक्तित्व ही है।'^{११}

सुखदा के मन में आत्मिकारी जीवन क प्रति जो ललक है उसी ने उसे लाल का सम्पर्क दिया है। इस लाल के प्रति वह अपने आप को समर्पित समझती है यही कारण है कि उसके पत्र में वह उसके व्यक्तित्व की ऊँचाई का स्पष्ट पता है। लाल उस पारिवारिकता की परिधि से निवाल कर उमुक्त एवं निवृत्त यौन जीवन की प्रेरणा देता है और सुखदा है कि लाल की बातों में धनजाने ही वही चली जाती है। उसका विवेक जम गया है और अवचेतन में जीने वाली सुखदा केवल मनोवेग के घरातल पर ही गतिमान है।

सुखदा की ललक की अंतिम परिणति निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है वह क्षण मुझ भूलता नहीं—जीवन और मृत्यु के बीच का क्षण। दोनों मानो एक होकर उस क्षण में पिघल आये थे। इस तरह बाध के से अपने सख्त पत्रों में मरे कथा को कस मेरी आँखों को वह ऐसे देख रहे थे जैसे नहीं बूझ पाते हो कि मैं हूँ कि क्या हूँ कि नहीं हूँ वह क्षण अनन्त होता चला गया। समय तब न था और वह पल त्रिकाल जितना अन्तिम था। देखते-देखते असह्य हिंसा से उन्होंने मुझ अपने में जकड़कर दबोच लिया।

उस समय मैंने शारीरिक और आत्मिक दोनों किनारों से अनुभव किया कि मैं नहीं हुई जा रही हूँ। मरी जा रही हूँ निश्चय जीने से अधिक हुई जा रही हूँ।

कव मुझे अलग किया और छिटका कर दूर फेंक दिया मैं नहीं जानती। मैं सोके में आ गिरी। वह कोच में हो बठे कहा जाओ कव गई तुम। वह हसे कैंसी वह हसी थी।

बोने 'इस बार बच गई आगे मौत मत बुताना ।

मैं उठकर आई और उनके परो म बठकर बोनी, मुझे मार दो मार दो ।"

क्रान्तिकारियों के प्रति सुखदा का आक्षेपण प्रणय में बदल गया है । लाल के प्रति वह अनुरक्त है । यह अनुरक्ति जब अपनी चरम परिणति को प्राप्त करती है तो सुखदा को एक विलक्षण परिवृत्ति अनुभव होती है । चेतन मन में क्रान्ति और क्रान्तिकारियों के प्रति आक्षेपण था लेकिन अचेतन मन में यह भावना प्रसुप्त थी कि ये लोग बड़े निडर होते हैं मौत का इह डर नहीं । क्रान्ति के लिये अपना सब कुछ अर्पण कर देंगे । ऐसे व्यक्तियों के प्रति सुखदा के मन में करुणा का सोता फूट पड़ता है और वह स्वयं उसमें भीग जाती है । तब इस बात को जानता था इसीलिये उसने कहा 'तुम गलत समझती हो कि मैं मरने वाला हू इसी से तो मुझमें आने से अपने को रोकना मुश्किल पाती हो । मेरा नहीं है जानता हू वह मौत का आश्वासन है, उसका आक्षेपण है ।"

सुखदा अपने अचेतन में अपने पति क्रान्त को घृणा करती है । उसका अपने सामने विनत हो जाना और उसकी आत्मा का पालन न करना उसे हीनता के चिह्न ही प्रकट होते हैं । इसलिये सुखदा को किसी ऐसे व्यक्ति की प्रतीक्षा है जो उससे प्रबल हो और मौके पर हिंस्र भी बन सके । वासना के प्रबल वेग में जब लाल ने उसे दबोच लिया तो सुखदा ने शारीरिक और आत्मिक दोनों किनारों से अनुभव किया कि मैं नहीं हुई जा रही हू । मरी जा रही हू, निश्चय जीने से अधिक हुई जा रही हू ।" स्पष्ट ही यह सुखदा के जीवन की साधकता (फुलफिलमेंट) है इसीलिये वह लाल के पैरों में बठकर बोली 'मुझे मार दो मार दो ।"

नारी को पुरुष की हिंसा में भी एक अजीब स्वाद अनुभव होता है—विशेषकर सुखदा जसी नारी को जो कि अचेतन में दमित वासना से पीड़ित है । रत्यत में उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति देखते ही बनती है । जब वह लाल के कहने पर उसके साथ दादा से मिलने जाती है तब का विवरण इस प्रकार है ? लगा जैसे जाने क्या ऊपर से उतर गया है सामने से हट गया है भीतर से खुल गया है । मानो मैं हल्की हो आई । जस मीठी धूप में लजाती खिलती झलकाती हल्की फुल्की बदली होऊ ।'

- २६ सुखदा पृ० १७० ।
 २७ वही, पृ० १७० ।
 २८ सुखदा पृ० १७० ।
 २९ वही पृ० १७० ।
 ३० वही पृ० १७१ ।

प्रसन्न पत्निया म गणन रति व उपगत सुगता व हानयन का चित्रण है । उगता भीतर म गुन जाना हन्वा हा जाना लजाना लजाना—मत्र रयन व उन्नाम व धोतर ३ । उगता धयानन रमित मानम जान व मगग म सामाय (नाग्मन) हा धाया है । इग प्रकार यहा हम दयन है कि जनक का भाषा-गता यह मूम मगता व धाधार पर चरती है—दनेने मूम मगता व धाधार पर कि माधारण पाठक का उगक वस्तु मय का जान भी नहा हा पाता किन्तु प्रबुद्ध पाठक उन्हीं मूम मगता स एक बाल्यनिक चित्र गन लता ३, और उमक निय यन गन नाथवता मगतात्मकता और प्रतीकात्मकता गती-वर्णिक्य व ममुचित उपाहरण बन जात है ।

विषय

परम म लकर बन्ध्याणा तब तीमरा व्यति पृष्भूमि म रहा है किन्तु विषय म वह पति व साथ सहप्रस्तित्व प्राप्त कर लता है । एमा ही प्रमग नरा और माहिनी के बीच है । धर क्या हुआ है तुम्हें ? माहिनी न हाय का ट्रे का मत्र पर रम दन व बाट कहा । 'दना चाय धा गर्द ।

नरा ने कहा— भई वह तुम्हारा क्या हाता है ? हा तुरीय तोच ।

वहा पदुचा हुआ था । वहा म चाय तब गिरन म क्या कुद भी समय नहीं दना चाहती ?

घाहा । ता किमक साथ वहा धूम रह य ? माहिनी ता यहा चाय की पातान भूमिका पर थी ।

एक कार्द मग्माहिनी थी अब धाय मानकर दयता हू कि वह भी ता माहिनी हा था ।

धाय ता बविता करन लग । जनाव एम वरिस्ट्री कम कीजियगा ?

तुम्हारी मग्माहिना म बग्मिटा जाता रह ता वह घाट का बान नन्ही । मुना हमार रकीब माहव—अजी विगडिय नहीं रफान माहव अब ता भल चग है न । चाय पर न धा मक्केगे ।

मोहिनी ने मुनकर पति की ओर देखा । पति ने कहा— उन्हें बुनवा न त्रिया जाव क्या ?

अभी ता—

अभी ता बहती थी साम अच्छ है । भई जाया दना ।

ता कू किमा का भी बुला लाय ।

कन्गी क्या जाक साथ न क्या नन्ही घाता ?

माहिना न घटा वजाई ।

नरेश ने कहा—'क्यों यह क्या ?'

मोहिनी गम्भीर रही, बोली नहीं और आदमी के घाने पर उसने कहा—
देखो, मेहमान के कमरे में जाकर बट्टा कि साहब चाय पर हैं और आपको याद
करते हैं। आयें तो उन्हें यहां ले आओ।' आदमी के जान पर नरेश ने कहा—
'मोहिनी।'

मोहिनी के भीह के बल कम नहीं हुए और अपने हाथा तयार होने हुए
प्यालो से निगाह उसने उपर नहीं उठाई।

नरेश ने कहा—'तीसरा प्याला ?'

मोहिनी ने जस सुना नहीं।

मोहिनी। सुन रही हो क्या ?'

मोहिनी ने कहा—'हो जायेगा।'

नरेश ने आगे कुछ नहीं कहा।''

प्रस्तुत प्रसंग में दाम्पत्य वार्ता की चुहल है जिसे तुरीय लोक कहा गया
है वह वास्तव में अचेतन लोक है। नरेश खुला व्यक्ति है विलायत में पना है
अनेक युवतियों के ससंग में आया है इसलिये मोहिनी के ससंगों के प्रति आशक्ति
नहीं है। वह पहले रकीब साहब कहानर-फिर रफीब साहब कहता है, क्योंकि
मोहिनी के तेवर उसने देख लिये हैं। वह बड़े खुलेपन में उस चाय पर बुलाना
चाहता है और मोहिनी से निर्दोष करता है कि वह स्वयं जाकर उसे साय ल
आये किंतु मोहिनी घटी बजाकर नीकर के द्वारा उसे बुला भेजती है। मोहिनी
का स्वयं न जाना इस बात को प्रमाणित करता है कि उसके दिल में अपराध
भावना है। आयें तो उन्हें ले आओ, इस वाक्य में ध्वनि यह है कि मेहमान पर
जबदस्ती नहीं करनी है न ही किसी प्रकार का जोर डालना है यदि वे स्वयमेव
आना चाहें तो आ सकते हैं। इसका मतलब यह भी है कि वह पति के सम्मुख
जितेन को नहीं बुलाया चाहती। उसे अपनी प्रिय के खुल जाने का डर है।
मोहिनी के भीहा के बल कम न होता और अपने हाथा तयार होते हुए प्याला
से निगाह न उठाना इसी बात के द्योतक है कि उसकी चोरी पकड़ी गई है और
वह पति से आखे चार नहीं कर पा रही। नरेश जब तीसरे प्याले की आवश्यकता
जतलाता है तो मोहिनी उस अनसुना करती है। अपने प्रश्न का फिर दोहराय
जाने पर वह ही जायेगा कहकर जस टालना चाहती है। उसे मालूम है कि
जितेन यहां नहीं आयेगा, इसलिये वह तीसरे प्याले को अनावश्यक समझती है
और पति की बात को वह आई-नाई कर देती है।

नरेश और मोहिनी की बातचीत में चेतन और अवचेतन की घुपछाही आख मिचौनी है। उन दोनों का आचरण और उद्गारों में यहाँ तक कि शब्दों के उच्चारण में भी एक बड़ा बारीक खेल है जिसे प्रत्यनपूर्वक ही पकड़ा जा सकता है। यदि हम इसका विश्लेषण करें तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि मोहिनी अपने दाम्पत्य-जीवन की परिधि में तीसरे व्यक्ति का प्रकट रूप में प्रवेश नहीं देना चाहती पिछले द्वार से यदि वह आ जाये तो उसे एतराज नहीं बल्कि वह उसका स्वागत करेगी क्योंकि उसका अतीत जीवन इस तीसरे व्यक्ति से हिला मिला हुआ है। चेतन में जिसका स्वीकार नहीं करना चाहती वही अवचेतन में चेतन का ठेककर अपना माथ स्वयं बना लेता है। ऐसी मन स्थिति की प्रक्रिया में उपयासकार की भाषा उस कुशल गृहिणी के समान हो जाती है जो कि बड़ी बारीकी से घटाई पर भावों की बड़िया चुआती जाती है। उपयासकार ऐसी स्थिति में एक बारीक चिमटी से काम लेता है और गल्लों का आवश्यकतानुसार बड़ी स्वेच्छाचारिता की त्वरा में प्रयुक्त करता है। यही कारण है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों की पकड़ में उसे कोई कठिनाई नहीं हाती वह एक कुशल चित्रकार की तरह अपनी तूलिका से ऐसी आड़ी तिरछी रेखाएँ अंकित करता है और उनमें इस तरह रंग भर देता है कि धूप की जगह धूप ही लग और ज्ञाया का जगह छाया ही की प्रतीति हो। उनकी शली में सबके भावों की चादनी अवचेतन में पत्तों पर जैसे फिसल फिसल पड़ती है।

विवत के अन्त में जितेन और तिनी का प्रसंग विस्तार से आया है। यहाँ उसकी उहक में उसके अवचेतन का उमोचन देखा जा सकता है

तिनी क्या कहे ? वह बहक का सुनती रही।

बहक ही थी। जितेन ने तिनी की तरफ देखकर कहा— साना पीला होता है पर कभी अच्छा भी लगता है। भाति भाति के आकार भाति भाति के प्रकार। पर भारी बहुत होता है। खिलौने हा ता अच्छे पर खेला न जाए उनसे इतने भारी हा ? और ये पत्थर हा पत्थर पर हीरा पना मानिक लगते सुंदर हैं। क्या तिनी नहीं लगते सुंदर ? मैंने कहा मैं सुंदर बनाऊंगा दानता है वहा सुंदरता लाऊंगा क्या तिनी सुंदरता नहीं चाहती ? तिनी उठी।

जितेन बोला— क्यों उठी क्या ?

दाल जल न जाए।

आज क दिन जलने दो उस सब जलने दो। और तुम सुना।

पर तिनी न नहीं सुना। कारण वह दाल के या किसी के जलन से सहमत नहीं थी।

जितेन ने उसके जाने पर हाथ की अंगुलियों से अपनी दोनों बदनपटिया का कमबर दबाया। दाईं ओर अगूठे और बाईं ओर चारो अंगुलियों के कसाव के नीचे सिमटा हुआ उसका माथा दुखने लगा था। वह चुपचाप उसी तरह कुहनी को भेजपर टेके, हाथ में माथा भुकाए, देर तक बठा रह गया। क्या यही उसका भाग्य है ? अपने भीतर की एहन को शब्दों में लाकर कही भी तो वह दे नहीं सकता बहा नहीं सकता। वह अलग है सबने छिटका हुआ सबसे दूर। कभी होता है कि इन दीन हीन तिनी के चरण पकड कर विद्य जाए और अपने को रीता कर दे। पर हाथ तिन्नी भी इतनी दूर, इतनी ऊची हो आती है कि—।”

जितेन क मन म क्रांति, एक कृतव्य के रूप में सदब तरती रहती है। सुदरता को न कभी उसने समझा न जाना। आज माहिनी के गहनो ने उस अलकारा के बार म सोचने का अवसर दिया है। क्रांति उसके जीवन का श्रेय नहीं है, किन्तु सुदरता और उसको उजागर करने वाले गहने, आज तिनी के सदभ म उसके लिए प्रय हो रहे हैं। उसके अवचेतन में सुदरता की आराधना का विचार है, किन्तु वह जब यह कहता है कि दीनता है वहा सुदरता लाऊगा, तो फिर उसका कृत्य उसके प्रेम म से भावने लगता है। वह सुदरता के विचारो में इतना लीन है कि उसे दाल जल जान की आशका में तिनी का उठ जाना अच्छा नहीं लगता। वह आग्रहपूर्वक उससे कहता है

आज के दिन जलने दो उसे सब जलने दो। और तुम सुनो’—इस वाक्य म जितेन का अवचेतन मुखर है। उसकी यह भावना पत की रोमानी कविता स मिलती जुलती सी है

आज रहने दो यह गृह काज
प्राण ! रहने दो यह गृह काज ।
आज जाने कमी वाताम ।
छोडती सौरभ श्लभ उच्छवास
प्रिये लालस-सालस वातास ,
जगा रोमो म सौ अभिसाप !”

उद्धरण के अन्तिम अनुच्छेद म जितेन की बदनपटिया का विवरण देकर उसके शारीरिक तनाव को स्पष्ट किया गया है। ऐसी मन स्थिति म वह विरक्त और एकाकी अपने आपको अनुभव करता है। तिनी के चरण पकडकर विद्य

जाना और अपने का रोता कर देने की भावना में उसकी दमित अवचेतना के रूप को हम अत्यंत प्रखर रूप में देख सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नारी पुरुष की नियति है चाहे वह भ्रातिकारी हो, या सामान्य मनुष्य। नारी के सामान्य में पुरुष का अवचेतन अपने आपको प्रकट करने के लिए विवश हो जाता है। ऐसी स्थिति में उपवासकार की भाषा गली सभी तनावों को—चाहे वे गारीरिक हों या मानसिक—पूरा वाणी देन में सम्मिलित है। जनेन्द्र की विशेषता यही है कि वे सभी मानसिक स्थितियों में अपने आपको 'फिट' कर लेते हैं और उन्हीं के अनुरूप उनकी गली भी ढल जाती है।

व्यतीत

व्यतीत एक एम व्यक्ति की कहानी है जो कि ४५ वर्ष की अवस्था में यह अनुभव करने लगा है कि मैं व्यतीत हूँ। एम व्यक्ति के मन में चेतन और अवचेतन की प्रतिच्छाया दूर निकालना बड़ा मशरूब है।

चन्द्रकान्ता का दमा है। जीवन वहाँ ज्वार पर है। ठाठ पर ठाठ दकर लहरें आती हैं और उम पर पेन सा बमेर जाती हैं। बड़ी कमनीय है। यह भी देखता हूँ कि सहसा वह गान्ध है। उसकी प्रकृति के लिए यह काफी सूक्ष्म है। गायद नीचे भयकर कुछ हा। पाल उठाए पीतनी बन्ती चला आई है ठाकर कही नहीं खाई। अनुभव कर सकता हूँ कि कुमार किस कठिनाई में है। ऊँची की आगका को भी समझ सकता हूँ। इस अन्त्य बग का सामन्य देखकर ऊँची अपने अस्त का कल्पना से सिहर आए इसमें कुछ अनहाना नहीं है। कुमार के साथ मुझे महानुभूति है। विवाह का तीन ही वर्ष हुए हैं और अपने एक नन्ह में मुन्न को घर पर दागे के पास छोड़कर बड़े चाव में दम्पति विलायत की यात्रा के लिए निकलें हैं। बड़ा काम करेंगे और निबर होकर एक-दूसरे के लिए रहेंगे। पर चन्नी का विघ्न आ पडा है। मुक्ति लता यह है कि हटाव नहीं आया है बन्त कुद्व कुमार की ओर से निमित्त हाकर आया है। विघ्न बड़ा मनाहारी है अपनी विघ्नता तक में अनजान है उमा से ओर भी प्रतिपद्य है। सकट समझता हूँ लकिन ।

उन्निता ने कहा साय ले क्या नहीं जात उस ? अपने खच से जाती है। गायन वहाँ अनन्य इन्तजाम के लिए राजी हा जाए। तुम्हें मकान्द हा तो मैं कहकर दनू ?

बानी सब समझकर यही तुम कहत हा जयन्त ? वहाँ जाकर मर कमम "हा क्या न मर जाऊ ?"

इन पक्तियों में कुमार, उदिता और चन्द्रकला का प्रसंग है। उदिता के चेतन और अचेतन में कोई अन्तर नहीं है वह पूरे जोर से चन्द्रकला का उनके साथ विलायत जाने का विरोध करती है। कुमार प्रकट में तो विरोध ही करता है किन्तु उसकी अचेतना में यही भाव मनभनाता रहता है कि चन्द्रकला उनके साथ विलायत चले। उदिता इस प्रवृत्ति को अपने दाम्पत्य जीवन के लिए अभिशाप समझती है इसी प्रसंग में जब जयन्त उदिता को समझाने की चेष्टा करता है तो उदिता दो ठूक बात कहती है ? 'वहा जाकर मरू इससे यही क्यों न मर जाऊ ?' इस वाक्य में उदिता का चन्द्रकला के प्रति आशंका भाव पूरात पुष्ट हो जाता है और वह जयन्त की बात मानने से इन्कार करती है। इससे यही सिद्ध होता है कि उदिता के अचेतन में चन्द्रकला के प्रति एक गहरी ईर्ष्या का भाव है जिसके कारण वह उसके सम्पर्क को किसी भी रूप में स्वीकार करने के लिए तयार नहीं होती।

व्यतीत' से ही एक प्रसंग और ल ।

परो पर शॉल डालकर जरा पलग के सिरहाने झुकते हुए कहा जयन्त क्या बात है ?

कुछ तो नहीं, अनीता ।'

बहुत कविताएँ लिखी हैं ?

लिखी तो है कुछ पर अनीता चंद्री अन्नग सोना चाहती है ।'

तुमने जयन्त ब्याह क्यों किया अब किया है तो

गलती नहीं सुधर सकती है ? चाहो तभी सुधर सकती है । चाहते हो ?

'अनीता ।'

'अपने का जलाए बठ हो दूसरा को जलाने क्यों बठ गए जयन्त ?

मैं जानता नहीं था ।'

क्या नहीं जानते थे ?

कि मैं-मैं बफ था ।'

बफ पानी होता है जयन्त । तुम पानी नहीं होना चाहते नहीं चाहते तो मरो पर दूसरे को मारते क्या हो ?

अनीता । —मैं पास सरक आया । हाथ बढ़ाकर उसके बालों में अंगुलिया फेरने लगा । उसने बजन नहीं किया । वह हिला भी नहीं । कुछ देर बेभान-सी ज्यो-की-त्यो अधलेटी सी बठी रही ।"^{१५}

उपयुक्त उद्धरण में जयन्त और अनीता का बातचीत उनकी मन स्थिति का

एक प्रतिनिधित्व नहीं जा सकती है। जयन्त का मन में चर्चा के प्रति उन्मत्तता है। उमरा मन का प्रति धवचनन में परिष्कारित है, धनीता का ध्यस्तित्व पर महारा रहा है। यह उमरा साथ ही नहीं चाहता बल्कि उमरा धाना में अनुनियता में फेरता है। इसमें उमरा मन का विमोक्षण कृष्ण अनुभव हागी है। चर्चा धन धनन में म इन मन धाता का जाननी है। उसमें तारीजनातिन र्प्या स उमर उठन की दामता है। यह धनन की काम धाम में सगावर जयन्त और धनीता का मितन का धवगर निया चाहती है। उपर धनीता यह समझती है कि जयन्त न धनी भावनाधा का ता जमाया ही है पर उम क्या अधिचार है कि वह चर्चा की भावनाधा का भी निरन्तर जमाता रह। धनीता प्रकट मन में इस धान का धारणित जन्म करता है पर उमरे धतमन धवचनन में इस स्थिति में महारा कृष्ण का भाव भी है। धनान रूप में वह चर्चा पर धनी महता का—धनी गरीमा का धारण करना चाहती है। वह विवशिता है और चर्चा पराजिता है। चर्चा का धाहन महम् इन स्थिति में पुनरार गवता या किन्तु उमरी उन्मत्तता की दान ही स्त्री हागी। वह विवाहित हान पर भी जयन्त का प्रति धनता अधिचार नहीं जतनाती। त्रिम प्रकार विवत में नरुण भुवनमाहिनी का माय तामर ध्यक्ति जिनन का सहप्रस्तित्व स्वीकृत करता है उसी प्रकार चर्चा भी तीमर ध्यक्ति—धनीता का सहप्रस्तित्व स्वीकार करती है। यहा उमरा का दृष्टिबाल माय है—उमरा धनी इस मायता का एका धिव बार भिन्न भिन्न परिस्थितिया में दोहराया है। उपर जयन्त धनन मन का वध बननाता है किन्तु धनीता उसे या नियाती है कि वध पानी भा हो सवता है। वध जस चनन का प्रतीक हो और पानी जस धवचनन का। उद्धरण का अन्तिम दो वाक्य उमालनकारी (रिबीलिंग) हैं। धनीता का बाला में अनुनियता फेरने पर जब वह जयन्त का वजन नहीं करती तो इसमें एक प्रकार का स्वीकार ही है। उसका वमान होना इस बात का परिचायक है कि वह इस स्थिति में महरी परिष्कृष्ण अनुभव करती है या इस स्थिति में एक प्रकार की अभिनयात्मकता भी है। इस मन स्थिति का यति विवशण करें ता यहा निष्कष निकलेगा कि धनीता का चनन मन में इस ऐत्रीयता के लिए एक प्रकार का निषध है पर चूँकि चनन पर धवचेतन हावी हो गया है इसलिए वह वेमान-सी ज्या की त्या धय-नटी-सी पदी रहती है।

व्यतीत में चनन और धवचेतन की प्रक्रियागत स्थिति का उपयुक्त उदाहरण एक सुन्दर निदान कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में लेखक द्वारा नियोजित वातचीन बड़ी मूग्म एव भाव प्रवण हा जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जस धवचनन में प्रमुत्त मनावग एक के बाद एक धगडाइया लत हुए उठ

रह हा। हृदय के सक्षिप्त उद्गारा म लेखक बहुत कुछ अनकहा छोड देता है, इससे पाठक की कल्पना को एक भावोत्तेजना मिलती है और वह अघूरे चित्र को पूरा करने म सृजनात्मक आनन्दानुभूति म लवलीन हो जाता है। ऐसी स्थिति म मीन ही वाचाल हो जाता है, और यह मुखरित मनोवेग पारदर्शी भाषा-शैली का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है।

व्यतीत मे नर नारी सम्बन्धो के अनेक चेतन, अचेतन प्रसंग भरे पडे हैं। उसका अन्तिम निष्कप है जयन्त का सयासी होना, चद्री का कुमार के पास चला जाना और अनिता का विफल होकर पुरी के पास लौट जाना। ये निष्कप इस बात के द्योतक हैं कि मानव की नियति अन्तत चेतन के ही हाथ बनती सवरती है अचेतन मन को स्थिति म अधिक् टिका नही जा सक्ता, यद्यपि वह बडा प्रबल होना है, और मन का मय कर रख देता है।

जयवधन

जयवधन म उपयास का क्याकार राजनीति प्रधान हो गया है। व्यक्ति से हटकर समष्टि की आर उपयासकार उन्मुख हो गया है किन्तु उसकी मूल चेतना व्यक्तिपरक समस्याआ की ओर ही है, यद्यपि ताम भ्राम सामाजिकता और राष्ट्रीयता का भी है। अपने कथन की पुष्टि मे मैं आचार्य के विलवर के प्रति कहे गय निम्न उद्गारा को प्रस्तुत करता हूँ क्या यह चाहते हो कि मैं बाहर जाऊँ और विद्रोह का झण्डा ऊचा करूँ? लेकिन वह असम्भव है। जयवधन हा मूला है। वह प्रपच मे पड गया है। सीखा था कि भौतिक माया है, आत्मिक ही है सो है। राज पर पहुच कर जयवधन यह भुला बठा दीखता है। यह चर्खा देखते हा पर वह कातना भूल गया। सुनता हूँ चर्खा कातने की बात पर वह अब हस भी लेता है। अर्को म वह रहने लगा है। इसलिये परिणाम म उसे मोह उपजा है। बहुत और बडा और शानदार उसे चाहिये। यह मोह उस पर सवार है और नकेल बाधकर उसे खीचे लिये जा रहा है। यह महत और बहुत और तुरत की चाह मूल रोग है। इस वेग की वासना मे स वह आसुरिकता उपजी, जिस हमने सभ्यता कहा। आशा थी कि उस चगुल से जगत छूट रहा है। जयवधन से मुझे और सबको इसी दिग्ग म आशायें थी।

पर होगा वह जो ईश्वर को मजूर होगा गामद प्राण म अभी समय है। माया म जो हम भूलते हैं तो वह माया भी तो ईश्वर की आत्मा से ही मोह जाल लेकर आती है। इसी से यहा बठा मैं प्रायना करने और चर्खा कात लने के सिवाय और कुछ कम अपने लिये नहा देखता हूँ।"

रेखांकित वाक्यों पर गौर करिये। ये जनेन्द्र के गली वणिष्टय के स्पष्ट उदाहरण हैं। इनकी वाक्य रचना, गल्प चयन पद विन्यास और विराम चिह्न सब पर लखन के व्यक्तित्व की छाप है। आचार्य के चेतन मन की अभिव्यक्ति में उनकी स्थितप्रज्ञता भाव रही है। उन्होंने अपनी दृष्टि में यहाँ जयवधन का मूल्यांकन किया है और अपने साथ उसके मतभेद की चर्चा की है। यह वास्तव में दो व्यक्तियाँ—दो जीवन प्रणालियाँ का अन्तर है। आचार्य की दृष्टि मूल ग्राही है उमम विनोदपण का चमत्कार और चिन्तन का ओज—याना ही है। अन्त में उनका उद्गारा में एक प्रकार की आध्यात्मिक नियतिवादिता प्रकट होती है।

भाव सश्लिष्टता की दृष्टि से लिजा के निम्न उद्गार बड़े महत्वपूर्ण हैं वह भरी थी और अस्थिर बोली अभी सास तो नहीं। लेकिन आप क्याना कर सकते हैं? कोद कल्पना कर सकता है? मेरे साथ तनिक एकान्त पाया ता बाल, श्रीमती क्या मैं एक निवेदन कर सकता हूँ? मैं डर आई। चहरे पर उनका ऐसी विनम्रता थी मानो आवास्ता बोलें क्या मैं कुछ सहायता आपसे माग सकता हूँ? पास कोई न था। नाथ दूर थे मुझे भ्रम हुआ कि क्या मुझे ही कहा जा रहा है? धीमी-सी वाली ऐसा मेरा परम भाग्य। बाल नाथ असहमत तो न होंगे? मुझे आश्चर्य हुआ और हृष्य। कहा नाथ—वह मेरी पूर्ति में बाधक न हो सकेंगे। आप कहिए। बाले आप घूराप जा सकेंगी रह सकेंगी? मेरी विनोद प्रतिनिधि? दग रह गई। सहसा काना पर विन्वाम न हुआ। क्या यह संभव है? भाव विभोरता में मुझमें कुछ उत्तर न बना। वम उम आत्मी का देखती रह गई एक हल्की-सी रख मुम्बराहण उनका चहरे पर थी क्या मैं मुग्धा बन आई थी सुना वह कह रहा है मैं आपसे भूल नहीं कर सकता। आइए, निश्चय हो जाए। गायन मि० नाथ मेरी पीठ पर कहीं आसपास होंगे या उस ओर आ निकल होंगे कि आग बढ कर जय न उह लिया, कहा मि० नाथ आइए। आप हितपा हैं और मुझे चिर कृतज्ञ कर सकते हैं। श्रीमती नाथ राय के हित में उपयोगी हो। इसमें आपकी अनुमति का प्रार्थी हूँ। उह तो आपत्ति नहीं है—श्रीमती मैं गलत तो नहा हूँ? घूराप में हम एक निजी प्रतिनिधि चाहिए। आपकी अनुमति यदि हो नाथ इस आकस्मिकता का क्या समझत। वह और भी चकित हुए पर अघूरा घाँ ता जय कम? उन्होंने बढ़कर नाथ के हाथ का अपने हाथ में थामा कहा मैं आपका दाना बघुआ का कृतज्ञ हूँ। अतिनाय कृतज्ञ फिर मुड़कर मेरा हाथ भक्भोरा और मानो निश्चित और अमलग्न एक ओर वग गाँ जम इन दो वाक्यों में सब सम्पूर्ण हो गया थी हृम्भन आपका जय विस्मय

पुरष यह दूसरे पहर की बात है जब एक बड़े डेप्यूटेन में हम वहा थे अब बताइए, इसकी प्रसन्नता में अपने में सभाल सकती थी ? नाथ जाने क्यों प्रसन्न नहीं है ? पर नहीं, यह प्रसन्न है आप ही सोचिए कैसे हो सकता था कि इस पर यह भाज न हो। अकेले लेती, तो क्या इस समाचार के आश्चय से मैं मर जाती। अब आप, हाथ जोड़ती हूँ, मग्न दीक्षिए। क्योंकि इससे बड़ा पव मेरे जीवन में नहीं आया।

उसकी बात बिलरी थी, उल्लास उम सयत न रहने दे रहा था। क्या समस्त उल्लास पद-नाभ का ही था ? इतना सर्वांगीण इतना घनिष्ठ ?

जो हो, मुझे स्वयं इस सूचना पर विस्मय है। निश्चय ही जय अतक्य है। कितना बड़ा खतरा लना है यह कि निजा जसी नारी को यूरोप सबधी भारतीय षूटनीति के स्रोत पर रखा जाए और नाथ ?

निजा पश्चिमी नारी की प्रतीक है उसका अपना व्यक्तित्व है अपनी आकाशयें हैं। पति तो उसकी इन आकाशाओं की सम्भूति का साधनमात्र है। प्रस्तुत पत्नियों में निजा के व्यक्तित्व की रेखायें इसी रूप में उरही गई हैं। जय ने निजा की महत्वाकांक्षा को छु भर दिया है और निजा है कि भीन आवपक परिधान में होटल के ब' आमोद भवन में चहक रही है। निजा, इस अपने व्यक्तित्व की विजय, अपने सौंदर्य का समादर समझती है कि उसे यूरोप में जय की विशेष प्रतिनिधि के रूप में नियोजित किया जा रहा है। जय के मन में एक योजना है और उसी योजना में वह नाथ-दम्पति को साधन बनाया चाहता है। प्रस्तुत स'भ में निजा के अचेतन के परत पर-परत खुलते जा रहे हैं और वह अपने सही रूप में पाठक के सामने आती है। वह हल्के-से उपयास कार ने विवरण के अंत में, एक प्रश्न के साथ पाठक को चौंका दिया है 'क्या वह समस्त उल्लास पद-नाभ का ही था ? इतना सर्वांगीण इतना घनिष्ठ ?

इन दो प्रश्नों से पाठक की चेतना झूठ हो जाती है और वह भुग्धा निजा की मानसिक प्रतिक्रिया को अपने सही परिप्रेष्य में समझने लगता है। निजा इस नियुक्ति में, अपने प्रति जय की आसक्ति को भी अनुभव करती है यद्यपि नाथ इस आकस्मिकता से उतना प्रसन्न नहीं है।

ऐसे स्थलों में उपयाकार हाथ भावों का चित्रण बड़े बारीकी से करता है। उसके रंग चटकीले होते हैं और वह मन की चेतन अचेतन स्थितियों को छु भर देता है। पाठक की भावोत्तेजना के लिए वह पर्याप्त उपकरण जुटाता है। निजा की बातचीत का सहजा, उसका कटाक्ष, उसके परिधान, सब मिल

कर एक घटवती हुई, हुससती हुई युवती का रूप स्पष्ट करत हैं। इस प्रकार के चित्रणों में एक प्रकार की गतिशीलता रहती है, किन्तु उपनामकार का मूलपात्री दृष्टिकोण ऐसी स्थितियों को उपलक्ष्यमात्र ही बनाता है, वह इनमें न स्वयं भटवता है और न पाठक को भटवने देता है।

उपनामकार के मन में श्री क्लिबेर डूमन ने बुद्ध वाग्मविरताओं के आधार पर इसा और निजा का बानचीन के बुद्ध बगना चित्र प्रस्तुत किए हैं। इन्हीं चित्रों में इसा का एक विस्तृत मभाषण भी आता है जिसमें वह अपने और जय के मभाषा का एक स्पष्टीकरण देती है। चुप रह सकती है। पर क्या तुम जय का प्रेम करती हो ? नहीं भी तो गराहना तो करती ही हो। फिर निजा क्या तुम ही उनकी सायबना में बाधा बनना चाहती जो साबनी हो वह बिनकुल नहीं है पर छादन में कोई प्रतिभिया नहीं है किचिन् भी पराजय या निराशा नहीं है। कोई भी आहत अभिमान का भाव नहीं है। कहती है तुममें कि तुम यह मान लो इस राज में अब उन्हें पूरि नहीं दाखनी है। राज की समूची धारणा ही अब अपने लिए उन्हें असंगत और भिष्या गना है। और मैं नहीं हूँ उसमें निमित्त। माना निजा मैं नहीं हूँ। मैं बभी उन्हें अपनी और नहीं मोहना चाहा है। साथ और सम्भुग इगलिए रही है कि अभाव के कारण कहीं हटाव मरी और उमुष न बन। तुममें सब कहती हूँ मानती हूँ स्त्री इसलिए नहीं है कि पुरुष को अपनी और ल। उसकी वृत्तापता स्त्री में है कि वह पुरुष का प्राग और उत्तरात्तर करे। वह पीछे रहने का है इसलिए कि पुरुष किसी भाति पीछे न हो पाय इसलिए निजा नाराज होकर न जायो। प्रेम का आधिपत्य नहीं जाना है। न मान लो कि मरा आधिपत्य है या हागा जय तुम्हारे इन ही हैं। लेकिन क्या यह प्रेम है निजा जो आरोप लाता है ?

सुना राज पर होकर जय विहग में मुक्त न रहेंग प्राण उनमें उसी मुक्ति को छटपटाता है। तुम साग राज की बाता का लकर क्या उह बाधना चाहत हो। स्वाय हो तो भी समझ सकती हूँ पर क्या कोई स्वाय तो नहीं दीखना है। क्या उनका यही कहना नहीं है कि आप सब लोग मिनकर साथ मभाल लीजिए। आप लोग का जो विरोध में है हित और स्वाय क्या इसी में नहीं है कि मिलें और शासन को हाय में ले लें ? इसकी सुविधा यदि जय करत हैं तो क्या बुरा करते हैं। आपके लिए बुरा नहीं करत हैं ना मैं कहना चाहती हूँ कि अपने लिए भी बुरा नहीं कर रहे हैं। क्योंकि यह उनके मन के गहरे की बात है और उसी में उन्हें परम वृप्ति है। तुम नाथ की पत्नी हो उनके साथ विरोधी दल की नेत्री भी हो। मान लो वह तुम उतना नहीं हो जितनी जय की प्राप्ति हो तो अच्छा यही सही। लेकिन तब भी यह पहचान कर कि इसी में उन्हें परम

लान है, तुम क्या जबरदस्ती उसमें बाधक बनकर खड़ी होना चाहती हो यह तो मरी किसी तरह समझ में नहीं आता है, लिजा मेरे साथ विवाह क्या यह किसी तरह तुम्हें स्पर्द्धा के भाव का कारण हो सकता है ? पर विवाह मेरे लिए स्वामित्व तो है नहीं, वह तो धम की एक सुविधा है। उससे प्यारी एनिजावध तुम्हारे लिए क्यों विरोध अन्तर होना चाहिए ? मैं तो पहले भी साथ रहती थी।”

प्रस्तुत प्रसंग में इला ने अपने चेतन मन से नर-नारी-संबंधों में प्रेम और विवाह पर अपने विचार प्रकट किए हैं। कहीं-कहीं वह लिजा के अचेतन को भी स्पष्ट करती है, जैसे कि उसके द्वारा लिजा को जय की प्रशंसिका बनाना या उद्धरण के अन्त में जय को लेकर लिजा की स्पर्द्धा भाव की ओर संकेत करना। इला की दृष्टि में बिना विवाह के भी स्त्री-पुरुष साथ रह सकते हैं जैसे कि वह स्वयं रही है। इला यह भी स्पष्ट करती है कि जय के प्रति उसका आकर्षण उसके राष्ट्रनायक होने के कारण नहीं है, वह तो केवल जय के मानवत्व और उसकी सम्भावनाओं को पूर्ण विकास देने के लिए उसके साथ है। इला की दृष्टि में नारी-जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य यही है कि वह पुरुष को आगे बढ़ाए। यदि नारी पुरुष को आगे बढ़ाने में सहायक नहीं होती है और उसे जगत्-जाल में बंद करने का एक साधन मात्र बनती है तो यह उसके जीवन की सबसे बड़ी विफलता है।

इस प्रकार की मन-स्थिति में उपन्यासकार अपनी भाषा शली को इस प्रकार डालता है कि वह उसके नए विचारों एवं नए सबल सवाहक बन सके। लेखक ऐसे स्थलों की तलाश में रहता है कि जहाँ वह किसी जीवन-सत्य का उद्घाटन कर सके या किसी मूल सत्य को पकड़ सके। कहीं-कहीं तो यह विवेचन इतना सघन और सकुल हो जाता है कि पाठक का ध्यान जवाब देने लगता है। नए पत्रिका कृतियों के उद्घाटन हेतु जनेद्र अपने उपन्यासों को एक प्रबल माध्यम बनाया चाहते हैं। इसमें वे बहुत दूर तक सफल भी हुए हैं। अनुच्छेद के बीच में अनेक वाक्यों के बाद डाट के चिह्न का आना इस बात का द्योतक है कि लेखक अनावश्यक विस्तार से बचना चाहता है या यों भी कह सकते हैं कि ये डाट के चिह्न पाठक की कल्पना को आदोहित एवं उत्तेजित करने के शक्तिशाली प्रतीक हैं। लेखक पते की बात कहना चाहता है और मूलग्राही दृष्टिकोण के सघन में उसकी वाणी में अनेक स्थानों में स्खनन आ जाता है। ये रिक्त भाग उसी मानसिक स्थलन के द्योतक हैं,

जस तरह कुछ विचार त्रिभुजु जुग रहा है और पाठक का चाहिए कि वह रिक्त भावा का स्वय ही भर दे। इस प्रकार के प्रयोगों की जेनेट्र म प्रति है। इस दार्शनिकता का आडम्बर भी कहा जा सकता है किनु कहा कहीं संग्रह ऐस मणिरत्ना को दूढ़ साता है कि हम प्रवाक विम्मित उमकी यणन गती की टुहार्द दने रह जात हैं। प्राय यह भी देना गया है कि इन भावा का अभि म्यका करने म सतत काफी शूट सता है और वह दग्ना एव मुगावरा का अपने ही दग सं प्रयोग करता है। सला की सतम बडा कसौती यही है कि वह प्रचनित सं भिन्न हा। जयवधन मे जनेट्र एव सगश्त गलीकार के रूप मे अवतरित हुए हैं, उहोनि पाश्चात्य गिष्टाचार का भी सफल निर्वाह किया है। उनका युग-बोध भी सबध अद्यतन रहा है, किनु उनका सन् २००० का कल्पना चित्र हमे उसना प्रभावित नहीं कर पाता। कारण कि य सब विवरण वतमान सदभों के आधार पर लिखे हुए हैं। इनम प्रागामी कल का भजन बवल मूल सत्वा के आधार पर ही मिनती है।

मुक्तिबोध

मुक्तिबोध समसामयिक राजनीति को लेकर लिखा गया है किनु राज नीति सा उपन्यासकार के लिये उपलक्ष मात्र है। वह सा मन की उपेठ-बुना का चिनेरा है। सहाय अपने शयन-कक्ष म साठे दस बज के करीब पत्नी की प्रतीणा म है किनु वह बीरेन्वर के सबध में ठानुर सं विचार विमग म लीन है। एसी ही मन स्थिति म सहाय के अवचेतन का द्वार खुलता है मरी और सं कभी राजधी पर विरोध ध्यान खच नहीं हुआ है न परिवार व दूसरे लागा पर। लेकिन अब इस शयन-कक्ष के अबल म साठे दस बजन पर अच्यदा नहीं लगता है यह कि पति का पत्नी को इतना कम ध्यान है। बिताव लेकर मैं बठा रहा और इधर-उधर का जान क्या-क्या सोचता रहा। मन म रह रहकर चुभन होनी थी। सब तरफ खयाल जाता था पर चुभन का काटा दूर नहीं होता था। ग्यारह हा गया साठे ग्यारह भी बीन गया। मैंने घड़ी को बार-बार दखा। अपनी ओर से राजधी के अब तक न ध्यान को तरह-तरह का समधन लिया। कायद है कि नीला के विचार ने अब तक उसका दूर रखा हो। स्वीकार करना चाहिये कि नीला के सबध म यद्यपि मैंने प्रकट चोरी नहीं रखा है, पर वह सबध सीधा है, पत्नी की भारपत नहीं है। मैं साफ-साफ समझ नहा पाता हू। पति पत्नी का सबध केन्द्र है। वह ध्रुव है कि जिसके आधार पर परिवार की एकत्रता और समाज की मर्यादागलना खडी है। सही-गलत सब उसके सतम सं बनना चाहिये। लेकिन मैं नहीं जानता कि नीला को लेकर मुझमे

क्या हाता है ? एक आत्मिक स्फूर्ति-सी मिलती है । राजश्री को लेकर वह नहीं हो पाता । वह विवाहित है मैं विवाहित हूँ । इसी कारण उस मुख सौहाद को क्या निषिद्ध बना देना होगा ? ' १

प्रकट है कि यह सहाय का आत्म विश्लेषण है । जा अवचेतन म था उसे चेतना म लाकर स्वीकार किया गया है । अनुच्छेद क अत म धीमे से एक प्रश्न सरका दिया गया है जिसका भाव है कि 'पराया मुख' निषेध की बीज नहीं होना चाहिए जबकि उससे आत्मिक स्फूर्ति मिलती है ।

पति पत्नी के बीच यह तनाव की स्थिति अधिक देर टिक न सकी और मान मनावन का अत इस प्रकार हुआ । उस समय राजश्री जो बयस्क पुन-पुनियो की माता थी जाने बस पोडशी हो आई । वह ऐसे मुस्कराई और छोटे छोटे बदमा स ऐसी अजब चाल से बिस्तर पर गई और मुझे देखती हुई उसे रजाई म दुवका कि सब मुझम से काफूर हो गया । मैं पिघल कर हर तरफ स मोम हो आया । ' २

इन पक्तिया म दाम्पत्य की मधुरिमा का यथाथ चित्रण है । बीच म जो मान मनावन की स्थिति आई थी उसस प्रेम और उमड आया । पत्नी की दृष्टि मे एक ऐसी जादू की छडी है जो सारे त्रोध और मानसिक तनाव को पल भर मे पिघला देती है । चेतन मन की लहरा का इन पक्तिया म अच्य अचिन्त है ।

एक अय अवसर पर सहाय और ठाकुर के बीच वीरेश्वर की बात उठती है । वीरेश्वर ठाकुर के साथ फाम पर काय कर रहा है कि तु ठाकुर को लगता है कि इसस वीरेश्वर की महत्वाकांक्षा की पूर्ति न हागी । ठाकुर का विचार है कि यदि वीरेश्वर कुवर के साथ इण्डस्ट्री म लग जाय तो वहा उसे अपन उद्देश्य की प्राप्ति हा सकती है । सहाय को यह सुभाव अच्य नहीं लगता । वे इस पर यो कहते हैं 'हा वही मैं सोच रहा था कि कुवर के साथ इण्डस्ट्री म उसे लगाने की बात नहीं आनी चाहिए ।'

क्या, उसका मन बहा खुने तो क्या हज है ? सच बात यह है सहाय कि तुम जहा ही बहा नीत की भाषा और नीत का बाना चल सकता है । वीरेश्वर का मन अगर नहीं चाहता है सेवक बनना तो सेवा की वाता को उस पर थोपने की जरूरत क्या है ? आदमी भरता है और फलता है तो आप ही भुक्त आता है । उससे पहले मन मे उठने बड़ने की चाह रहती ही है और वीरेश्वर कोई औरों से अलग नहीं है । तुम हमेगा अपनी मिमात देन लग जाते हो । मैं

तो साचता हूँ कुवर के साथ हाकर एक बार चल निबलगा ता कहा नही जा सवता कि यह कहा तब पहुचगा ।'

महाय वीरस्वर पर अपनी बात आरोपित करना चाहता है । इसमें चेतन मन के आत्म का व्यञ्जना है किन्तु आज के युग में आरोपण नही चल सवता । अब नई पीढ़ी का अपना व्यक्तित्व है अपनी महत्वाकांक्षाएँ हैं । वह दूसरे की नही गुनना चाहते अपने मन की करना चाहते हैं क्योंकि उनका अबचेतन स्वाधीन है और इस स्वाधीनता में भले ही कितना ही विगाड क्या न हा वह किसी भी स्थिति में दूसरे का आरोपण नही सह सवत । ठाकुर जसा अनपढ़ व्यावहारिक व्यक्ति इस तथ्य को जानता है पर गांधीवाणी महाय अपने किसी आत्म की भाव में इस तथ्य का विस्मय कर रहे हैं ।

प्रस्तुत उद्धरण में हम भाषा की एक नई धारणा पाते हैं । नीति नीत' हो गई है वीरस्वर वीरस्वर बन गया है । आत्मी का भरना और फलना एक एमा देहाती मुहावरा है जो भाषा में नया आज और नई दीप्ति लाता है । रेखांकित वाक्य की व्यञ्जना बड़ी अर्थपूर्ण है । उठने बैठने की चाह और कोई औरा में अलग नही है — इन मुहावरा में इस बात का प्रमाण निहित है कि हमारी देहाती बोली कितनी समय एव व्यञ्जनापूर्ण है । जिन बातों को गहरी सोच किताबों में सीख पाते हैं, उन बातों को देहाती लोग सीधे जीवन से ले लेते हैं । देहाती की साजगी एव जीवन्तता ठाकुर की बोली में फूटी पड़ती है । हम परब की बट्टो, उसकी मा और बिहारी की बातचीत याद हो आती है, जिसमें कि ऐसी ही रवानगी और साजगी थी । यद्यपि जनेद्र की औपचारिक सृष्टि में इस प्रकार के पात्र और इस प्रकार की बोलियाँ कम ही हैं किन्तु उनका निराला अस्तित्व है ।

'मुक्तिबोध के अन्त में एक और कुवर के चक्कर में फसने की बात है और दूसरी आर सहाय के मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होने की सुरसराहट है । इन्हीं दाना वाता की तीखी नाका के बीच सहाय और नीलिमा की बात चल रही है । नीलिमा के उबसाने पर सहाय आत्म-स्वीकृति के रूप में कुछ ऐसी बातें कह जाते हैं जिसमें प्रेयस प्रेयसी के सम्बन्धों पर और उनकी सीमाओं पर एक नया प्रकाश पड़ना है । सहाय के अबचेतन मानस में जो कुछ है वह चेतना के स्तर पर आ जाता है और वे बड़े हा पले की बात कहते हैं नीला इस बारे में मुझमें न कहो । जितने शब्द बाहर में आते हैं सब मुझमें प्रतिरोध पदा करते हैं । इसमें नही चाहता कि एक भी शब्द कतव्य घम के बारे में मुझ तक आये ।

वही मुझे सहज नहीं रहने देता और प्रतिरोध जगाता है। देखो नीला, कभी तुमने मुझे कुछ नहीं कहा है। जसा हूँ स्वीकार किया है। यही बल है जो तुमसे मुझे मिला है। दूसरे सुधार चाह सकते हैं मुझमें सगीघन चाह सकते हैं, मुझे अच्छा देखना चाह सकते हैं। (१) पर प्रेम चाहता नहीं है, बस मान लेता है। मुझे खुद नहीं मालूम। मेरे बारे में जो होगा उसे क्या तुम वैसे ही स्वीकार नहीं कर सकोगी। (२) नीलिमा, तुम हो कि जहा पर मैं अपने पर कोई आवरण नहीं रख सकता और न आवरण ले सकता हूँ, न आवरण का, न सिद्धांत, न धम का। इसलिये मेरी निपट निजता में से आन दो जो आये। अच्छा-बुरा स्वायत्त स्वायत्त जो भी हो वही ठीक होगा। वही मुझे और तुम्हें मजूर हाना चाहिये। कृत्व जिसमें न मेरा हाँ, न तुम्हारा हो बस एक एसी अनिवायता हो जिसमें मैं-तुम कुछ रह ही नहीं।

नीला सुनती रही। उसने फिर मेरे हाथ को अपनी हथेली में लिया और उठा कर धीमे से चूम लिया। कहा, मैं तुम्हारा अंत करण चाहती थी। अब समझती हूँ वह झूठ था। प्रेम का भी यह बंध नहीं है। सबके अन्तरंग में बस वह है जो एक है सब है और इसीलिये परम है और भाग्य है।^{१३}

प्रस्तुत पत्तियाँ में सहाय अपनी निपट निजता में बोल रहें हैं। उन्होंने प्रेम की इच्छा निर्धारित कर दी है। रेखांकित वाक्य-संख्या एक और दो इसके प्रमाण हैं। सच्चा प्रेम मैं-तुमसे ऊपर उठकर अन्त की विराट सीमा में फल जाता है। नीलिमा की आत्म-स्वीकृति भी घ्यातव्य है। वह प्रेम की सीमा के साथ-साथ अपनी सीमा भी समझ लेती है और अनुच्छेद के अन्तिम वाक्य से उसने द्वारा जो कहा गया है उसमें लेखक का अन्तरंग ही बोलता है। यही रचाकार के चिन्तन का निष्कर्ष है। या नीलिमा जसी जीवत पानी के मुह से ऐसी आध्यात्मिक दान में लिपटी हुई बात, कुछ अटपटी-सी लगती है। प्रणय के अंतर्लोक में, जहा अत्यंत गुह्यता एवं गोपनीयता होती है, वहा लेखक की गन्दावली बड़ी सक्षम प्रमाणित हुई है। चेतन और अवचेतन की सीमाएँ टूटकर एक हो जाती हैं और लेखक नितान्त अमृत भावों को भी गर्भों की सीमा में पकड़ लेता है। यदि हाथ को हथेली में लेने और फिर उसे धीमे से चूम लेने की बात न हो, तो यह सारा विवरण अमृत विद्युति के अक्षर में लटका रहता है। इस एक बात ने ऐंद्रियता के तत्व से समन्वित होकर सारे आध्यात्मिक चिन्तन को एक प्रकट भौतिक आघार दे दिया है। चेतन और अवचेतन की प्रक्रिया में जनेन्द्र की भाषा शली निरंतर परिष्कृत

हानी गई है और मुक्तिवाद्य म उमके प्राग्ज्वन गिग्गर र्थ जा मक्त है । एमा प्रतीत हाता है जम चनन और अद्यचतन क हिमगिरि पर रचनाकार का प्रतिभा मूय एउ नयी नीति क साथ उलित हा रहा है और मनन जड चतन क मन म एक न्दिय आभा का सौन्द्य ग्यान उमाचित कर लिया है । मुक्तिवाद्य की सपनता का समय बडा रहस्य यही है ।

अनंतर

अनंतर एक प्रकार म जनद्रजी का सस्मरणात्मक अभिनय है । इसम उहाने अपन आस-नाम क जीवन का अभिव्यक्ति दी है । प्रसाद के रूप म स्वयं जनद्र ही मूत हा उठ है । प्रमाद और अपरा को माउण्ट आबू जाना है । व वातानुवृत्तिन रूप म बठे हुए बातचीत कर रह है

मैंन कहा— तुम्हें मात्रुम नही कि इस समय तुम मुझ कितनी कमनीय लग रही हा और निश्चय म कह सकता हू कि मर सबध म तुम अपन का उतनी विवग नही हा—सुनत हुए बीच म ही अपरा उठी नाहक अलग रखी ट्रे का उमन फिर उठाया और जाकर दूर कान म रगन चली गई । आई ता मैंन कहा लकिन अपन स पार के सुन्दर और सत्य क सा तान् पर डरना ही हाता है ।

मैं माफी मागती हू यू आर वाल्ड एण्ड ट्रू एज इनडीड ए मन एलान बन वो । फिर माना बात हटान क लिये बोना सुनिये अपन आन्तिय क बारे म आप क्या माचन हैं ?

आन्तिय ! तुम उम कम जानती हो ?

यू हा पूछा । इज ही बरी बरी रिच—एनी वे ही कअर फार यू ए गुड डीन ।

मुझे अच्छा नही लगा पूछा तुम उस जानती कम हो ?

वह आनन्दजी के पास आये थे कहन कि बाबूजी अकन न जायगे । साथ जरूर किमी का भेजना पडेगा । ए० सी० ट्रेवल क निये उनरी ताकीट थी । मैं तब वही बठी थी ।

तो—?

आनन्दजी न कह लिया अच्छा । बात एक तरह पूरी हुई । लकिन आन्तिय न मरी तरफ दया । मुझम पहल परिचय न था लकिन कहा सुना है आपको भी माउण्ट आबू जाना है । मैंन कहा 'हा आनन्दजी क साथ मैं जा रही हू । बाल नही आप बाबूजी के साथ जायेंगी । आप न नही कह सकती । मैं निश्चिन्त रह सकूंगा और आपका मुझ पर अनुग्रह हागा । गुरुजी बस यही तय रहा । आनन्दजी न मुझस पूछा और मैं चुप रह गई । आन्तिय न कहा

दुख है मैं रूक नहीं सकता। नहीं तो जैसे हो, आपको मना लेता आन ही जाना पड़ रहा है। मेरी अनुपस्थिति में देखिये आप मुझे डुबा नहीं डालेंगी। मैं चलू बहुत-बहुत आभार ही वाज प्रेटी क्लब्सर यूअर आदित्य ही वुड हैव हिज वे इनडीड !' १

प्रस्तुत प्रसंग में प्रसाद अपरा की कमनीयता की प्रशंसा करते हैं तो वह कुछ लजा जाती है और अपनी भेंप मित्रान के लिये नाहक हो ट्रे को दूर बान में रख आती है। उसके अवचेतन में जो सकोच का भाव था वही उसे ऐसा करने के लिये प्रेरित करता है। जब अपरा प्रसाद की निडरता और सचाई की सराहना करती है तो अचानक ही वह प्रसंग बदल कर आदित्य के बारे में पूछने लग जाती है। दरअसल बात यह है कि ज़्याही उसने प्रसाद की 'वोल्डनस' का जिन किया तो अचानक ही उसके अवचेतन में से आदित्य की वोल्डनस उभर आई। प्रसंगांतर का यही कारण है। लग-हाथ वह यह भी पूछ बैठती है कि क्या वह बहुत सम्पन्न है। जिस रूप में वह आपकी सुविधा की व्यवस्था करता है उसमें तो उसकी सम्पन्नता ही प्रकट होती है। अपरा के चेतन मन की इस टिप्पणी का अंत सूत्र उसके अवचेतन मानस में है। वह वास्तव में आदित्य की सम्पन्नता एवं सुघडता से प्रभावित हुई है। बिना परिचय के ही आदित्य, जिस रूप में अपरा को आभारपूर्वक अपनी योजना में घसीट लेता है उसमें उसकी बुद्धिमत्ता ही प्रकट होती है। सम्पन्नता सुघडता और फिर उसके ऊपर बुद्धिमत्ता ही तो सोने में सुहागे जसा काय करती है। अपरा के अवचेतन मन में आदित्य ने एक लकीर खींच दी है। अनुच्छेद के अंतिम भाग में उमने जिस तुरत फुरत के साथ अपनी योजना को लागू कर दिया, उसमें उसकी सभित्तता एवं प्रशासनिक योग्यता ही प्रकट होती है। 'अनुपस्थिति में डुबा नहीं डालेंगी' कहकर वह अपरा को आत्मीयता के बंधन में भी बाध लेता है। आदित्य का तौर-तरीका निराला है उसे अपनी राह बनानी आती है वह अनिच्छित गति से अपने बनाये पथ पर दौड़ भी सकता है—यही सब गुण अपरा की अतदचेतना में घर कर गये हैं।

चेतन और अवचेतन की प्रक्रिया में जैनद्र की भाषा शैली का यह बड़ा सटीक उदाहरण है। आधुनिकता के नाते इसमें अंग्रेजी अभिव्यक्ति का भी आश्रय लिया गया है। अंग्रेजी शब्दा की तो भरमार है ही। भाव-परिवर्तन की स्थिति में जो आकस्मिकता आ जाती है वह भी सकारण है। चेतन मन की अभिव्यक्ति पर अवचेतन अनायास ही हावी हो जाता है। दोन चाल का

लहजा, अंग्रेजी के साथ-साथ उन् गण्य स भी परहज नही करता । एक प्रकार की नाटकीयता व भी इसम दगन हाते हैं । दस्य को मूत करने की सजीव सामध्य लगव म है । अनुच्छेद व अत म आदित्य के व्यक्तित्व को जिस रूप म प्रस्तुत किया गया है, उसस यही प्रतीत हाता है कि लेखक काम की बात ही करना है और करवाता है । तार मे जसी सशिक्षता एक सकेतात्मकता होती है, वसी ही यहा है, या फोन पर जिस प्रकार दो-दूक गव्दावली का प्रयोग होता है, और कोई भी व्यय का अण (सुपरपलूअण मटर) नहीं होता, उसी प्रकार आदित्य की गव्दावली भी लेखक ने बह नये तुले रूप म और बड़ी चारीकी व साथ प्रकट करवाई है । इससे उपयासकार की आधुनिक जीवन व प्रति सपृषित ही प्रकट होती है, और उसका लहजा बोलचाल का ही रहता है । सलापोचित भाषा गली जनद्र की निजी विगेपता है चाहे वह हिन्दी हो चाहे वह अंग्रेजी हा दोना भाषाआ पर लेखक का समानाधिकार है ।

अनन्तर म क्या टिल्ली के पास शातिधाम की स्थापना करना चाहती है उद्देश्य है गाधीजी के रचनात्मक कार्यों का मूत रूप प्रदान करना । स्वाभाविक ही है कि इसके लिए पसा चाहिए । इसी प्रसंग म आदित्य को टोहा जा रहा है । इन सत्रे बीच जो बातचीत हुई उसा का एक अण देखिए—

आदित्य न बहा क्या अब मैं जा सकता हूँ गुरुजी ?

जी नहा, अभी नही जा सकते । अपरा ने बहा यह देखकर जाइए कि आपके सोचन रहने स कोई काम रकन वाला नही है ।

हूँ आर यू ?

मैं ! जी, मैं इण्डस्ट्रियलिस्ट नहीं, इन्सान हूँ । और अंग्रेज भी नहीं हूँ ।

अब मैंने बहा 'अपरा तुम चुप रह सकती हो । मावस अपने जमाने म हो कर गए और अपनी व्याख्या के लिए वे तुम पर भार नही डाल गए हैं । इन्सान तुमम खतम नहा हा जाता इण्डस्ट्रियलिस्ट म भी रह सकता है । तुम आसानी से साढे बारह हजार देना बोल गद यानी तुमम भी उस गव की गुजाइश है ।

गुरुजी बोले, छोडो प्रसाद ! अपरा यह क्या चक्कर तुमन रच डाला है ।

आदित्य, तुम जान दा । पसे की ऐसी कोई बात नही, वह तो आता-जाता रहता है ।

आदित्य हठपूर्वक हँसा, हसी वह कडवी थी । बोला, 'अब तो अपराजिता जो हैं—मैं चलता हूँ ।'

अपरा ने बहा, ठहरिये । साढे बारह मैंने बहा है । लीजिए पच्चीस कहती हूँ—पच्चीस हजार । बनानिजी इण्डस्ट्रियलिस्ट का इण्डस्ट्री के लिए छोडिये । वह चुके हैं वे कि और वे नही जानते । मत जानने दीजिए उनको

वह सब है। अरमान है उमर है। बताया कि आन्त्रिय हकूमत करते हैं कोई उन पर नहीं करता। चारु तुम नहीं समझती उनका मन इसी के लिये भूखा हा सकता है—अपन ऊपर किसी को सहन के लिये। क्या कोई उह तावदार नहीं बना सकता—चारु तुम यह करोगी तो तुम खुग होगी वह खुग हने। प्यार म तुम पहल लो अपन प्यार म तुम बहया और बरहम बनो—ऐसे जान क्या क्या कहती रही। और आदित्य के आने के अगले दिन चारु घर पर इतनी खुग इननी खुग-बुश आई कि मैं क्या कहूँ और अपनी गई बीती रात का याद कर वह बड़ी हँस रही थी बड़ी ही हँस रही थी समझे ? इमलिय अब डर नहीं रहा।”

प्रस्तुत पत्तिया म आदित्य के चरिन की कुजी है। आदित्य सभी प्रणास निक व्यक्तिया का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। व हकूमत करत-करत इतने अघा जाते और परिणामस्वरूप इतने एकरम हा जाते है कि चाहने लगत हैं कि कोई उह तावदार बनाये। यदि चारु आदित्य का प्यार म अपना तावदार बना सके और ऐसा करने के लिये पहल ले प्यार म वेहया और बरहम बने ता वह आदित्य के दिल को जीत सकती है। यह दीक्षा अपरा न चारु को दी है और इम दीक्षा का परिणाम भी तुरत ही सामने आया है। विगत रात की चारु न अपन दाम्पत्य जीवन की पुन प्राप्ति की और परिणामस्वरूप उसका मन हुलास स फूला नहीं समा रहा है। जो खो गया था उस उसन पा लिया है। इन पत्तिया म अपरा की मदद स चारु न आदित्य के अबचतन को पढा और तदनुकूल आचरण किया। जब हम किमी की दुखती रग का छू लते हैं और उस सहला देन हैं ता वह व्यक्ति खुल आता है। पुरप का स्वभाव है कि उसे नाज-नखर और कभी-कभी बह्याई अच्छी लगती है। जब यही सब आदित्य को अपने ही घर चारु स मिला तो उसे बाहर भटकन की क्या जरूरत है।

उपयुक्त अनुच्छेद म बातचीत की एक शृंखला है—अपरा न चारु का दीक्षा मत्र दिया। उस चारु न आजमा कर देखा और सफल पाया। सफल हान पर उसन इसी बात का अपनी मा से कहा मा न इसी बात को अपन पति प्रसाद से कहा और खुद बनी के हुलास म फूली न समाइ। जामाता के अबचतन मन की कली खिनी तो उसकी महक घर बाहर सब आर छा गई। हिरनी को क्या पता था कि जिस गुरभि की खाज म वह सारे ससार को छान बठी थी, वह तो उसी की नाभि म है। चतन और अबचतन की प्रक्रिया म इस बार उदू गंगा की बहार है—निगान हक अरमान, उमर, तावदार बहया और बरहम आन्त्रि

उन्हीं शक्तियों की मज्जा-भी लगी गई है। यह इसी बात का परिचायक है कि उप-यासकार को अचेतन की अभिव्यक्ति ही अभिप्रेत है, इसके लिये वह हिन्दी, अंग्रेजी या उन्हीं किसी भी भाषा का मोहताज नहीं। अपनी बात की री में उसे जो भी शब्द मिल जाये, उसी को वह अपनी प्रतिभा के पारस से बचन बना देता है। जब भावनाएँ प्रबल होती हैं, तो वे अपना रास्ता स्वयं बना लेती हैं। किनारे के पत्थरों और झाड़-झुंझों को चीरती हुई यह वाग्धारा अपने उद्देश्य के महासागर में जाकर ही घन की धांगुरी बजाती है। इस बात को या भी कहा जा सकता है कि हिन्दी का मनोवैज्ञानिक उप-यासकार जिस मुहाबरे की खोज और तलाश में था उसे उसने बहुत-बुद्धि पा लिया है। डा० इन्द्रनाथ मदान कहते हैं कि 'आधुनिक हिन्दी उप-यास अपने मुहाबरे की तलाश में है।' 'मैं उनमें भाग बढ़कर कहना चाहता हूँ कि प्रेमचंद फिर जनार्दन और उनके बाद अनेक और यशपाल ने अपने मुहाबरे को तो पा लिया है पर अभी वे किसी एसी जीवन्त प्रतिभा की प्रतिष्ठा नहीं कर सके हैं जो युग-युगान्त तक अविस्मरणीय रहे और जिसकी कीर्ति-सुरभि से दिग-दिगत महक उठे।

निष्पत्ति

'परतः स अनन्तर' तक के उप-यास का चेतन अचेतनगत अवगाहन करने और उनकी प्रतियोगिता भाषा-शैली का विस्तार से निरूपण करने के उपरान्त यह स्वाभाविक ही है कि हम इससे कुछ निष्पत्ति निकालें।

१. मानवनातिक उप-यासों में चेतन अचेतन स्थिति का बड़ा महत्व होता है। चूँकि जनार्दन इस प्रकार के पहले उप-यासकार हैं इसलिये प्रवृत्ता का श्रेय उन्हें ही प्राप्त है। प्रेमचंद की सीधी सपाट भाषा-शैली को और बर्णनात्मकता को उन्होंने अति सक्षिप्त एवं गहन मनोविश्लेषणपरक भाषा का रूप प्रदान किया।

२. ऐसे प्रवृत्तन-काम में यह आवश्यक होता है कि नया पथ बनाते हुए उप-यासकार भाषा के धरातल पर तोड़ फोड़ करे, सुदाई करे और फिर से एक नये रूप में सवार कर नये श्रोत्र और दीप्ति के साथ परिनिष्ठित रूप में ढाल दे। यदि हम कविता में अधिलीनारण गुप्त और कामायनीकार प्रसाद की भाषा-शैली तथा गद्य में प्रेमचंद और जनार्दन की भाषा-शैली का तुलनात्मक अनुशीलन करें तो यह अंतर स्पष्ट हो जायेगा।

३ जनेन्द्र की भाषा में अराजकता स्वच्छाचारिता एवं अध्येयव्या तो है पर यह नवनिर्माण की आवश्यक गत होती है। किसी को बनाने या उस नया रूप देने में पुराने ढाँचे का भंग का रूप देना पड़ता है और तब उसी मूल में स नई इमारत नई साज-सज्जा एवं नये गठन मौल्य का लेकर उठ खड़ी होती है। आज हिन्दी कथा-साहित्य में अनेय, राजेन्द्र यादव उपा प्रिय म्वन और गिबानी में हम भाषा का जो नया नित्तर दफ्त हैं उसका प्रारम्भ जनेन्द्र के ही उपयासा में हुआ था।

४ जनेन्द्र गाधीजी की प्रेरणा व कारण हिन्दुस्तानी व पश्चिमी रह हैं। उनकी हिन्दुस्तानी का स्वरूप यही है कि उसमें प्रचलित सभी भाषाओं व लिए गुणाङ्ग हो और किसी में परहज न हो। यही कारण है कि वे निस्सकाच उन् अंग्रेजी और मन्दृत के गन्ता का घडले स प्रयोग करत हैं। यह स्वाभाविक ही है कि ऐसा स्थिति में हिन्दी और मन्दृत के गन्ता का अनुपात अधिक होगा। जहा पर प्रवाहपूर्ण यजना के लिए हिन्दी-मन्दृत में कोई गन्त नहीं मिल पाता वहा व निघडक हाकर उन् और अंग्रेजी का पल्ला पकड लेत हैं। राष्ट्रभाषा व रूप में जिम हिन्दी की प्रतिष्ठा की गई है उसका हाजमा इतना अच्छा हाना ही चाहिये कि वह सभी भारतीय भाषाओं के गन्ता का पचा कर चल सक। यही कारण है कि प० सुन्दरलाल और नेहरूजी की हिन्दुस्तानी में गाधीजी और जनेन्द्रजी की हिन्दुस्तानी में अधिक साहित्यिकता है। साहित्यिक सदमों की दृष्टि में जनेन्द्र की हिन्दुस्तानी और हिन्दी में कोई विशेष अंतर नहीं है। हिन्दी अपने अखिल भारतीय रूप में हिन्दुस्तानी को आत्मसात् करके ही चल सकती है। इस तथ्य को जितना बका कालकर और जनेन्द्र समझत हैं उतना और कोई दूसरा नहीं। प० सुन्दरलाल और नेहरूजी की हिन्दुस्तानी में उन् गन्ता का इतना अधिक अनुपात था कि उस भारतीय जन मानस ग्रहण न कर सका पर गाधीजी की हिन्दुस्तानी राजनीतिक सभाओं एवं गाधीवादी पत्रों में घडले स फलती-फूलती गई। जनेन्द्र चूकि एक सृजनात्मक साहित्यकार थे इसलिये उन्होंने अवचेतन की मधुरिमा में डुबाकर हिन्दी हिन्दुस्तानी को एक ऐसा रूप प्रदान किया जो सबके गले उतर सके।

५ जनेन्द्र ने अवचेतन को अभिव्यक्ति देने के लिये जहा परम्परागत गन्ता एवं मुहावरों में काम लिया है वहा उन्होंने कुछ नये गन्ता एवं मुहावर भी घडे हैं। इनका विस्तृत अध्येयन हम गन्ता गतिपरक अनुसंधान वाल अध्याय में करेंगे और वही इसके कुछ नमून भी प्रस्तुत किये जा सकेंगे। उनकी वाक्य रचना गन्ता चयन एवं पद वियास प्रचलित से भिन्न है। उस पर उनके व्यक्तित्व की छाप है। गली की इमी सबमाय कसौती के आधार पर एक गलीकार व रूप

मे भी उनकी प्रतिष्ठा होगी, यह निर्विवाद है।

६ अचेतन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से जनेद्र को अत्यन्त सभ्य उप-यासवार भी कहा जा सकता है। उनकी ऐसी अभिव्यक्ति में भाषामा की विविधता, बहुरूपता एवं जीवन्तता उह हिन्दी कथा-साहित्य में एक विलक्षण गौरव प्रदान करती है। अज्ञेय-जैसा काव्यात्मक सौंदर्य उनसे गद्य में भले ही न हो पर जीवन स्थितियाँ की विराटता एवं गहनता में—और परिणामस्वरूप दास निव ऊहापाह में—वे अज्ञेय से आगे रहे हैं या यो कहिये कि अज्ञेय ने भाषा शैली के संबंध में सवप्रथम प्रेरणा एवं दीक्षा जनेद्र की श्रुतियाँ से ही ली है।

परामानसिक स्थिति और भाषा-शैली

परामानसिक स्थिति से तात्पर्य

परामानसिक स्थिति से तात्पर्य उस इन्द्रियातीत स्थिति से है जिसमें कि रचनाकार भौतिक जगत् से परे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करता है और जिसकी अनुभूति इन्द्रियगम्य नहीं होती। स्वाभावतः आत्मा-परमात्मा के प्रसंग व्यक्ति की क अनुभूतियाँ जो मानसिकता की परिधि से बाहर की हैं इसके अन्तर्गत ली जा सकती हैं। परामानसिक स्थिति का परामनाविनाश से घनिष्ठ सम्बन्ध है जिसमें आत्मा के अस्तित्व पुनर्जन्म और जन्म-जन्मांतर की जीवन प्रक्रिया का बोध होता है।

टा० सत्येंद्र परामानसिक स्थिति का एक विशेष सङ्गम में लेते हैं। उनका इसमें यह अभिप्राय है कि व्यक्ति के संस्कार और उसकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ कभी-कभी उसका विचारधारा से परे भी हो जाती हैं और तब अज्ञात रूप से पूजना के संस्कार हमारे कर्ण और व्यवहार में प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। उदाहरण के लिए किसी ऐम हिन्दू पात्र की परिवर्तना की जाए जिसका पालन पोषण एवं निष्पन्न प्रगतिशील विचारधारा में हुआ है और जो जाति सम्प्रदाय या संस्कृति की मकीय सीमा में आवद्ध नहीं होता किन्तु अवसर आने पर उसका व्यवहार ठीक उन्ही प्रकार प्रतिक्रियावित होता है जिस तरह से उसका पूजना या उसकी संस्कृति में आवद्ध व्यक्ति व्यवहार करते। एक प्रगतिशील नवयुवक छुआछूत में विश्वास नहीं करता किन्तु छुआछूत का प्रत्यक्ष अवसर आने पर उसका 'हिन्दू संस्कार' आदालित होता है और उसे अपनी प्रगतिशील विचार

धारा के अनुरूप काय करने में कठिनाई अनुभव होती है। डा० सत्येन्द्र की दृष्टि में यही परमानसिक स्थिति है।^१ वस्तुतः डा० सत्येन्द्र की मायता जुग के अग्रघटन पर आधारित है। जुग ने पौराणिक धारणाओं को एव बहुत सी ऐसी मायताओं को जो कि अब तक अध विश्वासा पर आधारित थी एक मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। इसके प्रमाण रूप में प्रायः कहा जाता है कि सभी जातियाँ एव संस्कृतियों की पौराणिक मायताएँ एक ही हैं। अवश्य ही इनमें कोई सावभौम सत्य विद्यमान है अथवा उनके स्वरूप में और उनकी अभिव्यक्ति में इतनी समानता नहीं पाई जा सकती थी।

फ्रायड ने मन को तीन भागों में विभाजित किया है (१) चेतन (२) अचेतन (३) अचेतन। जुग फ्रायड के अचेतन को तो स्वीकार करते हैं, पर कहते हैं कि इस स्तर के नीचे भी एक और स्तर है अर्थात् अचेतन के दो स्तर हैं व्यक्तिगत अचेतन (पर्सनल अनकाँन्सास) और समस्त अचेतन (रेशियल अनकाँन्सास)। हमारा व्यक्तिगत अचेतन भोगेच्छु स्वार्थी, बीभत्स और क्रूर मूल प्रवृत्तियों का तथा अमित भावनाओं का रहस्यागार भले ही हो, पर यदि मन के अन्तःपटल को भेद कर देखा जाए तो पता चलेगा कि उसमें एक समष्टि मन का स्तर है जो हमारी सारी सौन्दर्यप्रियता, नीतिमत्ता और खूबियाँ का आतिशय है। हमारे चेतन मन को जिन खूबियाँ भलाइयों का ज्ञान रहता है वे अपने तात्त्विक रूप में समष्टि मन में वतमान रहती हैं। जिस तरह अचेतन हमारी अनतिशय भावनाओं का आगार है वैसे ही हमारी नतिकता का भी। उसी मनुष्य का व्यक्तित्व पूरा रूप में विकसित हो सकता है जिसके वैयक्तिक अचेतन और समष्टि अचेतन में पूरा सामंजस्य हो। इस सामंजस्य की स्थापना के बाद मनुष्य की प्रतिभा को अधिक से अधिक नियाँवित होने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। फ्रायड के द्वारा निर्धारित दमित भावनाओं का आगार अचेतन का मानते हुए भी, जुग एक पग आगे बढ़कर कहते हैं कि इसके बाहर समष्टि मन भी होता है जिसमें दमित भावनाओं से कुछ भी संघ नहीं। इसमें निवास करने वाली भावनाएँ अस्पष्ट निराकार अनियमित और अनिवचनीय होती हैं पर यह मानव जाति में निसर्ग से प्राप्त है और युग युग में मनुष्य में निवास करती आई हैं। सत्य की खोज, अदृश्य शक्ति में विश्वास, देवत्व और ईश्वरत्व में आस्था दूसरे शब्दों में, आध्यात्मिक उत्प्रेरणाओं का निवास चेतनातीत समष्टि अचेतन में रहता है और हमारी चेतना को भी प्रभावित करता रहता है।^२ 'इसी बात

१ डा० सत्येन्द्र से हुई वार्ता के आधार पर।

२ आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय पृ० ६१-६२।

को जुग ने इस रूप में समझाया है

The collective unconscious is a deeper stratum of the unconscious than the personal unconscious it is the unknown material from which our consciousness emerges. We can deduce its existence in part from observation of instinctive behaviour—instincts being defined as impulses to action without conscious motivation or more precisely—since there are many unconsciously motivated actions which are entirely personal and scarcely merit the term instinctive—an instinctive action is inherited and unconscious and occurs uniformly and regularly. Instincts are generally recognized but not so the fact that just as we are compelled to certain broad lines of action in specific circumstances so also we apprehend and experience life in a way that has been determined by our history. Jung does not mean to imply by this that experience as such is inherited but rather that the brain itself has been shaped and influenced by the remote experiences of mankind. But Although our inheritance consists in physiological paths it was nevertheless mental processes in our ancestors that traced these paths. If they come to consciousness again in the individual they can do so only in the form of other mental processes and although these processes can become conscious only through individual experience and consequently appear as individual acquisitions, they are nevertheless pre-existent traces which are merely filled out by the individual experience. Probably every impressive experience is just such a break through into an old previously unconscious river bed.

इन प्रामाणिक विवरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि व्यक्तिगत अचेतन और समष्टिगत अचेतन दोनों ही हमारी क्रिया प्रतिक्रियाओं का बहुत दूर तक प्रभावित एवं नियंत्रित करते हैं। अनेक पात्रों में व्यक्तिगत अचेतन एवं समष्टिगत अचेतन का द्वन्द्व चलता है तो कुछ पात्रों में इन दोनों का सामंजस्य इस रूप में प्रस्फुटित होता है कि उनके व्यक्तित्व को एक पूखता मिल जाती है। जनेन्द्र के उपन्यासों में प्रथम बग के उदाहरण पुष्कल मात्रा में विद्यमान हैं जबकि द्वितीय बग के उदाहरणों में हम कठिनाई से ही जयवधन प्रसाद गुरु ध्यानन्द माधव, ठाकुर श्रीकांत आदि को न पाते हैं। अगल पृष्ठा में हमारा

* एन इन्स्ट्रुडकान टू जुग्स साइकोलाजी फेडा फोडहम प० २३ २४।
(तृतीय संस्करण, १९६६)

प्रयत्न यही हागा कि इस द्वैत अथवा इसके सामजस्य का जनेद्र के विभिन्न उपयासा स उद्धृत करते हुए उनकी परामानसिक स्थितिया का निवचन करें।

इन दोनो दृष्टिकोणा म मानसिक स्थिति और इन्द्रियगम्यता स पर होने की बात समान है। प्रकारांतर से आध्यात्मिकता को दोना ही दृष्टिकोणो म स्वीकार किया गया है। अंतर केवल यही लगता है कि एक म मानसिक चेतना का विस्तृत सद्भ है और दूसरे म सस्कार रूप मे हमारे अचेतन म प्रसुप्त भावनाओ को विशेष महत्व दिया गया है।

जनेद्र के उपयासों मे परामानसिक स्थिति का स्वरूप

यदि इस दृष्टि से जनेद्र की औपयासिक सृष्टि पर विचार करें, तो परस्व का सत्यघन और उसका आचरण परामानसिक स्थिति के विरोधाभास को हमारे सामन स्पष्ट कर दते हैं। सत्यघन आदशवाद म पला है। वकीलो की शोषण-वृत्ति के प्रति वह बगावत का झंडा खडा करना चाहता है किन्तु जब उसके सम्मुख बट्टा और गरिमा म से एक को चुनने का प्रश्न आता है तो उसका सारा आदशवाद न जाने कहा विलुप्त हो जाता है और वह गरिमा को ही अपनी जीवन-सगिनी के रूप मे चुनता है। उसके अचेतन मन म आभिजात्य के प्रति जो प्रबल आकर्षण था वह उसके चेतन मन पर एकाएक हावी हो जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि उसके अचेतन म प्रसुप्त सस्कार ही उसके लिए निर्णायक प्रमाणित हुए। गरिमा के पिता की मृत्यु के उपरांत जब वसीयत का विधान सत्यघन के सामने आता है तो वह विक्षुब्ध हो जाता है और उसका तभी शांति मिल पाती है जबकि उसके द्वारा न-न करने पर भी बट्टो चालीस हजार के नोट उसके हाथ पर रख देती है और यह श्रीमानजी औपचारिक ननु-नच के उपरान्त उहे अगीकार कर लेते हैं। इस सम्पूर्ण घटना चक्र म हम सत्यघन की परामानसिक स्थिति का स्पष्ट रूप म सधान कर सकते हैं। बी० ए० पास करन के बाद टालस्टाय रस्किन गांधी या जाने किसका एक विचार स्फुलिंग इनके जवानी के तेज खून म पड गया था। अब तक भीतर-ही भीतर वह इनके खून मे अपना जहर काफी फलाता रहा था। वक्त आया तो अपनी गर्मी से इहें दहका दिया। साचा—वकालत म क्या है? अपने देश का सत्वानाग है और अपनी आत्मा का सत्यानाग है।^१ इस विचार की परिणति हमे मुगी होगियारबहादुर से हुई तकरार मे देखने को मिलती है,

जब य प्रतिम निष्पन्न रूप में उदय कहते हैं या ता मुषिष्ठिर ही बन सा या बनीत हा बन सा ' तब मत्पधन का मकल्प इन वाक्या में गूज जाता है भूठ व बिना बरानत नहा ता मैं बरानत करता ही नहा ।' प्रतिम यही सत्यधन ध्यान 'बगुर व बगीपानामे पर इस प्रकार धरना मानगिर प्रतिनिया प्रकट करता है । बसीपतनामा पदकर मत्प का गुग्गा हृषा— वत्त गण । यह धय इस मरान में भी नहीं रह गहन । बिहारी व दान पर वह नहा रह्य— एव मिनट भी नहीं रह्येग । ता मत्पधन व उम विचार-स्पृतिग का प्रतिम परिणाम हमारे पास इस रूप में आया कि कट्टा उट्ट ज्ञानीम हजार व नाट धनग नया मरान बनाकर रहने व निण दनी है तब लगन उनकी स्थिति पर इस प्रकार लिपिखी करता है उहें रण की जरूरत था । यह उनकी धान्त में पढ गए थ । यही बमी थी जिसने न-न-न का बम करने करने, धामिर धनमन मन में लेने का वाध्य कर दिया । जा तना रहा उम रया न भूनाया ।"

प्रस्तुत प्रकरण में मत्पधन की इन भावना उनका मन का विरोधाभास, स्पष्ट रूप में सिगाई देता है । पात्र कहता कुद है और करता कुद है । उमके करने में उमके प्रमुप्त सस्तर वाचाल हा उटन हैं और सम्पूर्ण स्थिति का धपन हाथ में सम्हाल लेते हैं । इस इत प्रतिनिया में जने- की भाषा गती बडी मटीर बन पडी है । नापव की कथनी और करनी का विरोधाभास व्यजना गति की सपूर्ण सम्भावनामा सहित अवतीग हृषा है । इस प्रतिनिया में मन व जिनन भी स्तर हा सवन हैं उनकी उपयामवार ने सजीवता व साथ व्यजना की है । उपयुक्त मुहावरा व प्रयोग न अभिव्यक्ति में चार घाट गया लिए हैं ।

मुनीता

मुनीता व सदम में हरिप्रसन्न परामानसिक स्थिति का केंद्र बिन्दु कहा जा सकता है । वह आरम्भ में मुनीता को मित्र की पत्नी फिर भाभी तत्पश्चात् मुनीता और अततो गत्वा प्रियसी व रूप में समभन लगता है । मुनीता और हरिप्रसन्न के सम्पर्क से दोना आर परामानसिक स्थिति सनिम हो उठती है । आरम्भ में मुनीता ने हरिप्रमन को एक कौतूहन व साथ लिया फिर पति के मित्र के रूप में । पश्चात् एक अतरग सहचर के रूप में जिमके साथ बिना वह

भोजन ग्रहण नहीं कर सकती और जिसका भोजन पर न आना भी उस खट कता है और चुभता है। अपनी अपनी मर्यादा में आबद्ध हरिप्रसन्न और सुनीता एक दूसरे को पाना चाहते हैं। हरिप्रसन्न उसे ध्वजाधारिणी के रूप में अपने साथी क्रांतिकारियों के बीच ले जाना चाहता है पर दरअसल वह तो वहाना था क्योंकि भुरमुट के बीच जो हमवार चट्टान थी उसी पर लेटी हुई सुनीता को वह समूची पा लेना चाहता है। उस समय के उसके उद्गार द्रष्टव्य हैं मानो हरिप्रसन्न को पता भी न था, इस भाँति अनायास जोर से सुनीता को अपने से चिपटा कर उसने कहा 'तुम जानती हो अकेला होता तो मैं अब क्या करता ?' कहा सकट है। उस सकट के मुँह को ही जाकर मैं पकड़ता। लेकिन आज तो मैं उधर ताकता दूर खड़ा हूँ। मैं कुछ भी नहीं कर सकता।'

और उसी भाँति एकाएक झुककर अपने हाथ से सुनीता की ठोड़ी ऊपर उठाकर बोला 'क्या ?' क्योंकि मैं अकेला नहीं हूँ और प्रेम आदमी को निबल घनाता है।' 'मुँह को ही जाकर पकड़ने में' उसका क्रांतिकारी दप लक्षित होता है। ताकता दूर खड़ा हूँ मैं उसकी प्रेमजय विवशता है। इस कृत्रिम दप की रचना कर वह सुनीता के प्रणय को हस्तगत किया चाहता है। अपने जीवन पर सकट का आभास दे वह नारी की दया भावना को उभाड़ना चाहता है। इस प्रकार उसने जिस दप की रचना की है उसी में वह अपनी कामनाओं की परिपूरति का साधन जुटा लेता है सुनीता मैं अब तुम्हें भाभी नहीं कहना। जिन्हें भाई कहता हूँ उनकी ही मारफ्त तुम तक पहुँचूँ अब ऐसा नहीं है। मैं तुम्हें सुनीता कहूँगा।' इस सुनीता कहने में जैसे प्रेयसी का आवाहन है और यही चुनौती उसके सम्पूर्ण अस्तित्व में से फूटती पड़ रही है 'मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ—प्रेम ? लेकिन मैं भी नहीं जानता हूँ सुनीता।' इस न जानने का कारण है हरिप्रसन्न के आदेश का आवरण, जो तुरन्त ही यथाथ में परिणत हो जाता है। 'तुम पूछोगी—क्या चाहता हूँ ? तो सुनो तुमको चाहता हूँ समूची तुमको चाहता हूँ। उसके बाद—' इस प्रकार हरिप्रसन्न परामानसिक स्थिति से उत्प्रेरित हो पूरा नगा हो गया और क्रांति के आदेश का आवरण तार-तार होकर उसी के 'यक्तित्व को विद्रूपित करने लगा।

६ सुनीता पृ० १७६।

७ सुनीता पृ० १७७।

८ सुनीता पृ० १७८।

९ सुनीता पृ० १८०।

स्पष्ट ही यहाँ हरिप्रसन्न के घात मन का अभिव्यक्ति है जिसे मुनीना न जाबूम कर उत्तेजना दा है कि उग्र मन की प्रिय मन्त्र हा जाय । हरिप्रसन्न के मन का प्रगुप्त धार्मिकानय यहाँ जग घमटादया न रहा है और गयी मन स्थिति म जनद्र की भाषा-गला चरमात्तेजना के बगार पर पहुचकर पुन लौट घाती है । इस हम रानाहार का मयम भा कह सकत है या कुछ घानाचरा न तो इस भी एक निर्यय घानावा ही कहा है । उनही स्थि म ता हरिप्रसन्न का मुनीना का पूरा पा ही मना चाहिए था । यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उपपातकार अचेतन मन की सुम्मातिमूश्म तरगों को चेतना के स्तर पर ले घाना है तब हम हरिप्रसन्न के घमटी रूप से भनी भानि परिचित हो जात है । इस स्थिति म दाना घार म घानन और चेतन के गहन घन्तु ड का समक न बढी सकत गणावना म विरोधा है । यग उपपासकार की भाषा गनी अत्यंत सगम मिद्ध हुई है ।

त्यागपत्र

त्यागपत्र म मृणाल और डाक्टर का प्रणय प्रसंग परामानसिक स्थिति का मुन्त्र उगाहरण प्रस्तुत करता है । प्रमाण मृणाल के निग डाक्टर का पत्रोत्तर लाया है । उस मनोयोग म मृणाल न पढ़ा और फिर सत का धीम धीम तह किया और मुमकी ल्ला—माना उम वक्त मुझे वह पहचान नहा रही था । माना सब भूत गई कि क्या था क्या है क्या हागा । फिर उमी बेबूझ भाव म मुझे दमते रहकर मागो मत्र की भाति उम सत को फाटकर नह-नहें टुकडा म कर लिया । माना वे कुछ नहीं कर रहा, जाने कौन कर रहा है । हलस-हलस चतय उह सीग । माना उहनि अब कुछ-कुछ जगत् का पहचाना । घाटा देर बाट वाला प्रमाण अब तू वहा कभी मत जाना । तुमम जवाब लान का किसन कहा था ? कभी किसी का कोई सत लान का जकरत नहीं है । समभा ?

देख प्रमाण गीला के भाई का कोई पगाम आया कि मैं छत से गिरकर मर जाऊगी । मुझे उहनि क्या समभा है ?

मैं सब कहती हूँ मर जाऊगी । मृणाल का कौन भूटा नहा हाता । "

प्रस्तुत प्रकरण म मृणाल का चेतना म नए-नए दाम्पत्य-जीवन का दायित्व बाध है अचनन म डाक्टर का प्रणय प्रसंग भी कुरन्ता है । उसा का परिणाम यह पत्राचार है । पर जब उसके चेतन अह का अपनी वास्तविकता का बोध

होता है तो वह अपने को धिक्कारती है और मरने की घमकी भी देती है। यह धिक्कार और घमकी दाम्पत्य-योध की नतिवता के कारण स्वयं-आरोपित है, जैसे कि यह भी कोई छानावा हा जिससे कि मृणाल का नतिक मन बचना चाहता है पर क्या वह बच सका ?

यहां परामानसिक स्थिति की सवाहिका स्वयं मृणाल की भावना है और लेखक ने इसे बड़े कौशल से चित्रित किया है। इस चित्रण की बुनावट में चेतन और अचेतन की आड़ी तिरछी रखाए हैं। अन्ततः परिस्थितियां से जूझती हुई मृणाल अपने को पति-परित्यक्ता पाकर कोयलेवाले की सौंपने के लिए अपने को तयार कर लेती है। इस कोयलेवाले के प्रकरण में उसी पूर्व प्रणय प्रसंग की पुनरावृत्ति है। पूर्व अवस्था में चेतन मन इतना सगुण था कि अचेतन के लाल चाहने पर भी उसे उभड़ने न देता था। परवर्ती अवस्था में वही चेतन मन 'बेबुझ भाव' से इतना आक्रान्त हो गया है कि उसे निरंतर गिरते जान के सिवाय और कुछ नहीं सूझता। उपयुक्त पत्तियों में बेबुझ भाव परामानसिक स्थिति की ओर संकेत करता है। ऐसी स्थिति में आदमी अपने में रह नहीं पाता उसके प्रसुप्त सस्कार ही उस डेलते रहते हैं। कुछ कुछ जगद् को पहचानने में वही भाव लक्षित होता है कि मृणाल की चेतना का एक चरण तो परामानसिक स्थिति के पक्ष में दूबा हुआ है और दूसरा चरण चेतन जगद् में पडना चाहता है पर जैसे कोई उसे पडने से रोक्ता है। ऐसी स्थिति में उपयासवार की भाषा शली संकेतात्मक एवं प्रतीकपूर्ण बन जाती है और उसका लाक्षणिक सौंदर्य अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। अनेक ऐसी परामानसिक स्थिति के अद्भुत शिल्पी हैं।

कल्याणी

कल्याणी में परामानसिक स्थिति का विशुद्ध उदाहरण अनेक स्थला पर उपलब्ध हाता है। यो सम्पूर्ण कल्याणी परामानसिक स्थिति की एक विशिष्ट रचना कही जा सकती है। कल्याणी के चेतन और अचेतन में इतना अन्तर्द्व द्व है कि उसकी कथनी और बरनी में अनेक स्थला पर विरोधाभास भावता हुआ प्रतीत होता है। उसके प्रसुप्त सस्कार इतने प्रबल हैं कि वह अज्ञान ही बहुत में एसा काय कर जाती है जिनका सामान्य स्थिति में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। कथन क साम्य में निम्न उदाहरण को लिया जा सकता है—

बोली— मैं बतलाती तो हूँ सुनिये डाक्टर साहब दान देते हैं, सो सस्याए मुझे मान देती हैं। इससे सस्याओ को लाभ होता है हम भी लाभ होता है। परस्परपकार। बताइये, इसमें गलत क्या है? तिस पर मुझे अपनी कीमत के

बढ़ा म क्या भिन्न होनी चाहिए ? पर आप कुछ श्रीर न मानियगा मैं हू एक इनवेस्टमण्ट ।

मैंने क्या कि यह आत्मलाघना पर ही था तुनी है । मैंने कहा—प्रच्छा बटिय ता ।

वह विनम्र भाव स मुम्बराकर वाली—आपकी नीयन नक नग है । मैं मिलता हुआ सम्मान छोड़न वाली नहीं हू । चार प्रजत हैं श्रीर मुझे अब चलना चाहिए ।—वह बटकर धनन वा न्यत हा गयीं ।

मैंने विनाशपूर्वक कहा—मुझे साथ चलने का निमन्त्रण क्या आप भूतर भी नहीं कर सकती ? मैं भी यग-वभव दग्ना ।

उहाने साथचय कहा—मच क्या आप चल सकते ? मैं सोचनी थी कि बच्चा का तमागा है आपरा क्या भना लगता ।

मैंने कहा—भूटे भी आप निमन्त्रण देती तो मुझे सोचने का मौका था । धर तो ।

उन्होंने किचित् मदनापूर्वक कहा—मैं जानती हूँ । आप चलनवाल नहीं हैं ।

मैंने हसकर कहा—जानती ता आप उपयागी बात हैं । यह साहित्य-समा का मानपन है ना ?

हसकर बोनी—हा-आ ।

मैंने पूछा—तब तो इधर आप कुछ लिखती भी रही मालूम होती है ।

बोनी—जीवन ही दुःख की कविता है । अतिरिक्त कविता अब क्या दिम्बू । नहा आप मानिये मैंने कुछ नहीं लिखा । घघ स छूटू तब ता आत्मा की माचू । पर दक्षिणे आप मेरा चार का समम चुकाना चाहन हैं । आपकी कविता के पाछे मानपत्र गवानवानी मैं नहीं हू ।

इम बार नमस्कार करक वह बिलकुल नहीं रुकी जस कि पन भर देर हुई कि सब बना बिगड जायेगा ।



उसी दिन सध्या के अनन्तर श्रीधर ने आकर एक अप्रयत्नीय घटना ता सुनाई । मैंने कहा—यह क्या कह रहे हो जी श्रीधर ?

उसने कहा—जिसने आखा देखा है उसी की कही मुना रहा हू । डाक्टर न खुले रास्ते जूता तक से उह मारा । तागे म बठी थी वहा मे खीच-खीच लिया । चलती सडक पर तमागाई न जाने कितने जुड गये थे देखने वाला कोई एक तो था नहीं, भीड की भीड थी ।^{११}

परामानसिक स्थिति और भाषा शली

इस सम्पूर्ण घटनावली का यदि हम विश्लेषण करें तो कई बातें हमारे सामने स्पष्ट होकर आती हैं

- १ जब कल्याणी वकील साहूब से मिली, तो साहित्य सभा में जाने का उत्कट भाव उसमें था पर वह वहाँ न जाकर वहीं और चली गई और परिणाम स्वरूप उसे डाक्टर असरानी का न केवल कोप भाजन ही बनना पड़ा बल्कि खुले रास्त उनके जूते भी खाने पड़े।
- २ इस घटना में कल्याणी के मन का अन्तर्विरोध पारदर्शी रूप में स्पष्ट भूतवत्ता है। वह चेतन मन से साहित्य सभा में जाना चाहती है, पर परामानसिक स्थिति उसे डाक्टर भटनागर के यहाँ ले जाती है।
- ३ कल्याणी सावजनिक माग पर डाक्टर द्वारा पीटे जाने पर विक्षुब्ध नहीं है उसके अन्तमन में इसका औचित्य ही तरंगित होता है।
- ४ कल्याणी ने अपने आपको इनवेस्टमेंट बताया है इसी इनवेस्टमेंट के विरुद्ध उसका मन है इसीलिए वह उत्कट भाव होने पर भी साहित्य सभा में नहीं जा पाती उसका अन्तमन भली भाँति जानता है कि डाक्टर असरानी अपनी स्वायत्त सिद्धि के लिए उसका उपयोग कर रहे हैं इसीलिए अनजाने ही उसके पर साहित्य सभा से विरत होकर दूसरे मनचाह स्थान पर चले जाते हैं।
- ५ इसमें कोई संदेह नहीं कि अभिनन्दन कल्याणी का ही था, किन्तु उस अभिनन्दन की आड़ में एक कुत्सित स्वायत्त रग रहा था, उसी का दश कल्याणी की अतश्चेतना में इतना तीखा होकर गड़ा कि वह अपने माग को बन्द बठी।

इसी प्रकार की परामानसिक स्थिति कल्याणी के जगन्नाथजी के मन्दिर में भी देखी जा सकती है। अपने अशुचि जीवन की क्षति-भूति कल्याणी जगन्नाथजी के मन्दिर में करती है और अपना स्थान कूड़ की जगह बतलाती है। उसके अन्तमन में अपना कूड़ से अधिक महत्त्व नहीं है। यह आत्म धिक्कार और प्रवचना का प्रतिनिधि उदाहरण कहा जा सकता है। जगन्नाथजी के मन्दिर में उसका जो सेवा भाव है वह उसकी परामानसिक स्थिति की ही व्यञ्जना है।

इस प्रकार के विवरणों में जनेन्द्र की भाषा-शली एक नये निखार के साथ जीवन असगनिया का चित्रण करती है और अतश्चेतना में जो भी आड़ी तिरछी रेखाएँ होती हैं उनका फोटोग्राफिक विवरण प्रस्तुत करने में जनेन्द्र की घसा धारण क्षमता ही उनकी भाषा शली में प्रकट होती है। वे मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरंगों के अदभुत शिल्पी हैं। उनकी वाक्य रचना और गल्पन में तथा घटनाओं के शिल्प विधान में जो सूक्ष्मता रहती है, वह मनोविश्लेषणात्मक

उपमासों में प्रायः विरल ही है। इस दृष्टि में इनाचन्द्र जोगी और अनेय की उपमास-वृत्ता में उनकी महज ही तुलना की जा सकती है। इनाचन्द्र जोगी के उपमासा में द्वादश मनाविज्ञानपरक आधिस्य है उनका विवरण मनोविज्ञान की पुस्तक पर आधारित होता है। यही बात आधिस्य रूप में अनेय की रम्यता वाली व बार में भी कही जा सकती है किन्तु जिस स्वाभाविकता व दान हम जनेन्द्र में मिलते हैं—त्रिनेप रूप में उनका पूर्ववर्ती उपमासा में—बन्तुत वह जनेन्द्र की विरूपण-शक्तता की ही परिचायक है।

मुग्धा

मुग्धा में आभिजात्य के संस्कार आरम्भ में ही हैं इसीलिए ज्ञान का वह अवनमन हीन समझती है। मुग्धा में बाहर के निमंत्रण व प्रति इनकी सलक है कि वह परिवार की परिधि में अवनमन प्राप्त को रल नहीं पाना। यही कारण है कि प्रवृत्त में मयाग भावना का ध्यान रखने पर भी वह अवनमन में ज्ञान के प्रति विनवनी जाता है और अतः उसका प्रति समर्पित भी हा जाती है। ज्ञान व व्यक्तित्व में उसका आभिजात्य संस्कारों की परिपूर्ति थी यही कारण है कि वह उसका आग विनत है और उसकी इच्छा व आगे अवनमन स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं रख पाती। मुग्धा की परामानसिक स्थिति ही उस ज्ञान के प्रति समर्पित होने को बाध्य करती है। इस समर्पण और परामानसिक स्थिति की प्रबलता के लिए हम निम्न पक्तिया प्रस्तुत करना चाहें

ठाड़ी पकड़ कर उहाने मेरा मुह ऊपर किया। मेरी आत्मा में क्या दहशत थी ? फिर ठाड़ी उहाने छाड़ दी। मेरा मुह उसी तरह ऊपर की ओर टिका रह गया। तब उहाने भुन कर निश्चिष्ट पड मेरे बायें हाथ को ऊपर उठाया और दाना हाथों में लेकर उमे दगाते और कुचलते हुए कहा, मैं क्या करूँ सुखदा बता तू मैं क्या करूँ ?

उन गान की व्यथा मुझे भीतर तक चीर गई और मैं चुप बनी रही।

तभा एकाएक व गिर आया और मेरे घुटनों में गिर डालकर वह सुबक उठ—'मैं क्या करूँ, सुनी ! क्या करूँ ?'

मेरे भीतर एक भी गान किसी ओर से बनकर नहीं उठ सका। इस प्रकार गान में प उस पुरुष के वाता का सहलाता हृदय मैं बठी रह गई। गायद व्यथा स्वयं सात्त्विकता है। गान नहीं कि मेरी आत्मा से आसू बहे कि नहीं। वह हा कि न वह हा ज्ञान ही ज्ञान एक है। लेकिन मेरी गाद में काफी आसू गिरे। और

मैंने पाया कि अपने दोना हाथों से धीमे से उस मस्तक को दोना कनपटिया पर से सम्हाले हुए मैं बड़ प्यार से कह रही हूँ, 'उठो लाल उठो !'

वह चेहरा उठा। आँखें मेरी आर हुए। आसुओं से धुली वे आँखें। और मुह पर लज्जा से लाल एक फीकी, आकुल, तृप्त मुस्कराहट।

उस समय मालूम हुआ कि पुरुष दुदम और दुधप, कभी कितना निरुपाय है।

और ठीक उस समय स्त्री, अचला और असहाय कितनी सशम और समय है।"

यह सयोग की ही बात है कि जनेन्द्र का श्रान्तिकारी नारी के सम्मुख अपने आपको निपट निस्सहाय पाता है। सुनीता, सुखदा और विवत म श्रान्तिकारी की यही नियति है। जनेन्द्र अपने नारी पात्रों को परिवार की परिधि से निकालते तो हैं पर इन महिला पात्रों में एक भीति की भावना भी है विशेष रूप से सुखदा में। उसके मध्यवर्ग के सस्वार जैसे उसके कार्यों का विराध करते हैं। सुखदा में तो लाल के प्रति नाममात्र को भी विराध नहीं है, इसी कारण 'गचीरानी गुटू' इमें जनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद समझनी है। कोई भी सामान्य नारी ऐसी स्थिति में बिना किसी अतद्बद्ध के समपण नहीं कर सकती।

इस प्रकार के विवरण में पुरुष की निरीहता नारी की दया को उभारती है और इसी करुणा के माध्यम से पुरुष विजयी होता है। इसे पुरुष का ढांग भी कहा जा सकता है किन्तु नारी पर उम्माद इस कदर छाया रहता है कि वह ढांग के असली स्वरूप को नहीं समझ पाती। सम्भवतः नारी इस स्थिति में अपने अहंकार की विजय देखती है और उसी के मोह में समर्पित हो जाती है। कुछ है जो उसे ऐसा करने के लिए ठेलता है। ऐसे स्थलों पर अचेतन में साथी हुई प्रसुप्त आकाशाग्रा के स्वरूप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उद्वरण के अंतिम अंग में नाटकीयता का स्वरूप मार्मिक बन पडा है। इन पक्तियों में शेक्सपीयर के उस प्रसिद्ध कथन की अनुगूज है, जिसमें उसने कहा है 'प्रैसिटी दार्ई नेम इज वूमेन।' ऐसे विवरणों में ऐंद्रियता पर्याप्त मात्रा में मिलती है मनोवेगों की झंकारों को भी स्पष्ट गुना जा सकता है और मुह पर लज्जा से लाल एक फीकी, आकुल तृप्त मुस्कराहट में रत्यत का सुरतिपूर्ण चित्र है जिसकी सवेतात्मक व्यजना अंतिम दो वाक्यों को एक विशेष अर्थ प्रदान करती है।

विषय

या ता विषय आभिजात्य पग का कहानी है किन्तु जिना और जिनन का प्रगम एक एक नया मानवीय आयाम प्रदान करता है। जिनन और तिन्नी का मवष बः हा अगच्छ तय मधमभूषण है उनका बीर स्त्र की धारा पूर-पूर पड़ता पाहता है पर भावनात्मक मुग पर जम वहीं स्थापन है गतिराध है। यही पारण है कि यह प्रगम उपयोग का बः किन्तु बन गया है। तिन्नी का प्रगम की तुलना हम गानन के द्वा० महता और जगती युवा की प्रगम म कर सकते हैं। जिनन और जिना का बीर ध्यान व्यापार विपार है। तिन्नी जिनन का बहुत ध्यान रखती है उपर जिनन भी उम नारात्र नहा किया चाहता किन्तु बुद्ध है जो उा शना को बः किया है। तिन्नी जिनन-मवष म हम पगमानगिर म्पति क शान कर मान है जिनन न कहा— दरवाजा बयो गुना है। बः कर ता।

जिना न बुद्ध नहा किया। वह जाकर पग पर गिद्धे अपनी दरी पर नाई गिर तर मरने पट गई। जितन न बड़कर अपने हाथ म द्वार भगाया और बान म गया बाल्नी का ठट पानी का छीटे जोर म मारकर मः घाया। अउ उगत अण का बुद्ध ताडा अनुभव किया। तिन्नी मा नही रही थी। उटे-सट ही उगत हाथ बढाकर आदिस्ता म द्वार के पः फिर मान निय थ। जिन य भारी थे। तिन्नी जानती न थी पर अनुभव करती थी। इसम सोने म भी वह जागती था। यः आत्मी उगत लिए है ताबीत्र जिनके अन्दर जन्त बः हुना है। नही जानता मन्तर वह क्या है अणर तर नही जानती। यह आत्मी क्या किमता है क्या पःता है क्या मोचना है क्या चाहता है क्या करता है—मव उम अगाधर है। निदचय ही जहां वह रहता है अणर उव है। वह तो रल है पर मान बटा है कि उम पर हान का लिए द्विविया जम वह मव है। रल जौहरी जान और उम जा पहन सो पहन। पर मुरगा को द्विविया है। किमी का पीछ हा पहन वह द्विविया का है। इस नाते इस आत्मी का वह चारा और रहती है और नहा चाहती कि हवा भी उम छुए।

•

•

•

जितन आया तो जिना किमी और ध्यान स्थि अपने कमरे का बान की बाल्नी की तरफ बःता चला गया। साबुन के हाथ धोने को हा था कि भपःती तिन्नी आई और पानी फेंक लाटे का सामन म उठा ल गई। जितन को बुरा लगा उबिन वह भीतर ही भीतर अतिगय वृत्तन हा आया। एक मिनट बाद गरम पानी का भरा लाटा उसका आग आ गया। जितन न मजन किया फिर म हाकर घड़ी दग्गी और वह कमरे म धूमन लगा। जैसे सहसा उम याः हो

आया, कहा—'दरवाजा बन्द कर लो।

तिन्नी ने धीमे से कहा—'तुम्हें नींद नहीं आई।'

जितेन क्षण के सूक्ष्म भाग तक ठिठका। बोला— दरवाजा बन्द कर लो। बात तेज पडी। तिन्नी कटी खडी रही। उपाय न देख आखिर लौट आई। इस आत्मो के सत्र कपाट बन्द हैं किसी द्वार मे भी प्रवेश नहीं। उसने भी खीभकर दरवाजे का कुण्डा अपनी ओर से लगा लिया।''

जितेन के दरवाजे को बन्द कर लेन की बात एकाधिन बार आई है। इस से यही प्रमाणित होना है कि उसके अचेतन म जो भय का भाव भर गया है, वह कभी खाली नहीं होता। तिन्नी जितेन के प्रति धीरज के साथ प्रतीक्षा मे है कि कभी तो कुछ खुलेगा। पर जितेन है कि उसके कपाट सत्र तरफ मे बन्द हैं किसी ओर से भी प्रवेश नहीं। अत तिन्नी खीभकर रह जाती है और दरवाजे का कुण्डा अपनी ओर से लगा लेती है। जितेन के अचेतन मन म तिन्नी का अहसास है वह उसके प्रति कृतज्ञ भी है पर वह जिस काय मे नियोजित है उसका कारण उसे व्यक्तिगत प्रसंगा के लिए कोई अवकाश नहीं है। उपयुक्त अवतरण मे मन की सूक्ष्म तरंगों, वजनाओं एव निषेध का पूरा प्रतिबिम्ब है। ऐसी स्थिति मे लेखक की भाषा शली चित्रकार की सूक्ष्मता ले लेती है और चित्र अपने पूरे रंगों एव बभब मे उभर आता है। इन पक्तियों में रत्न, डिबिया और जौहरी का प्रतीक सागरूपक का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रतिम पक्तियों म स्नह-यातरता के उपरांत आश्रय की गूज है।

व्यतीत

व्यतीत म जयन्त नामक एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो पूव प्रेमिका के ध्यान म रहकर चट्टी जसी पत्नी को अपना नहीं पाता। उसके प्रसुप्त मन म अनीता के प्रणय-सस्कार इस बदर जड गये हैं कि वह अपने आपको बफ समझने लगता है, जो कभी गलेगी नहीं। चट्टी के वैभव और अपनी धन हीनता के कारण जयन्त के मन मे एक अहत अभिमान की श्रिय बन गई है जिसका अन्तिम परिणाम यही हुआ कि कमीशन से लौटने पर उसे गरिब बसन धारण करने पडे। प्रश्न उठता है कि ऐसी कौन सी परामानसिक स्थिति थी जिसके कारण वह चट्टी को अपना नहीं सका अनीता को ले नहीं सका और अपने अह को वहीं खाली कर न सका? युवावस्था का आरम्भिक जीवन प्रणय के जो मस्कार उसे दे गया था उन्ही के कारण वह बन्द रहा और कभी

मुल नहा पाया । इसी स्थिति का एक विप्र उपयासकार क गंगा म इस प्रकार है नही ममभती थी चट्टी कि सुख क लिए मरी वह दुख की रचना है । पर जस सुख किमी को मित्रा है म परवमिटी म । वह मुझे कवि जानती थी पर मैं आज जानता हूँ मैं पगु था । तब तो गायन मैं भा कवि जानता था अपन का महान् जानता था विचारक जानता था । निणय क भाव स औरा को दखना और फमला दता था । तब चट्टी मरे लिए मानिनी थी, जा अनिणय रमणाया थी इसी म मरे लिए जम निरस्करणीया बन उठी मान नीया थी इसस अपमाननीया हा गद । घनमानिनी थी इसस दडनीया बन गई ठची थी इसम नीची बनाना गायन मेर लिए आवस्यक हा गया । आप क्या पन की कमी मरे भीतर इतनी गहरी जा बठी थी, कि वह त्र कर कस कर आहन अभिमान की श्रिथि भी बन उठी । जा हा वह अभ्यथना म भुक्ती मैं अनादर म तनना । कहता कुछ नही, तुम रहन ग । ”

प्रस्तुत अवतरण म रमणीया तिरस्वरणाया माननीया अपमाननीया दन्नीया आदि की जम भडो लग गई है । इस प्रकार की तुकें मित्रान का भी सखक को विनेष गीक है । या इन गंगा की रचना सबया मायक है और इनका व्यग्य बडा मुखर है । घातम लाछना के भाव भी इन पक्तिया म कम नही हैं । आरम्भ म तगाकर अन्त तक एक आत्म विद्वलपण की प्रवृत्ति यहा काम कर रही है । वह अभ्यथना म भुक्ती मैं अनादर म तनना —जस वाक्य एक विनयण अय-गौरव म पूण हैं । इनका सन्म और व्यग्य बडा मनीक है । एसी स्थिति म उपयामकार का श्लिकाण मूलप्राही बन जाता है और वह प्रसग गभत्व स पूण वाक्या की रचना करता है ।

जयवधन

जयवधन मूनत एक राजनीतिक उपयाम है । इसम विभिन्न दला एव व्यक्तिया का अतद्रुद्र स्पष्ट हाकर कथानक क पट पर उभरा है । अनक एसी स्थितिया जयवधन म आई हैं जहा पात्र वयक्तिक अचतन के स्तर म समष्टि अचतन के स्तर तक उतरा है और बहा एक प्रकार की रहम्यात्मकता का भी आविभाव हुआ है । एसा लगता है कि उपयामकार किमी अब्रुम पन्नी का बुभा रहा है । अघर म टटान कर काइ प्रकाग की किरण पाना चाहता है । एसा ही प्रकरण विलवर की डायरी म जयवधन को नकर आया है म्मान मुम्बराहट थी और बहा दूरम्य इष्टि । वान आन्मी यही मोचा करता है ।

अपने को केन्द्र मान लेता है और फिर तक करता है कि केंद्र गया, तो वृत्त कंस टिक पायगा ? विलवर ब्रह्माण्ड ज्यामिति का वृत्त नहीं है। यहाँ जीव सब केन्द्र हैं और हर जीव प्रतिक्षण मर-जी रहा है। किन्तु हर एक केंद्र अपने ही वृत्त का है इसलिए हर मरने और हर जीने में सत्य मूलतः तनिक भी नहीं होता—यह तो इस तरह उत्तरात्तर प्रकाशित और सिद्ध ही होता जाता है। कौन जाने कि इस समय यही आवश्यक और उपयोगी है कि स्थिति नूय बन आए आवत घुमडे और शक्तियों के लिए सतुलन का उससे उदय हो वह जो हो में पा गया है कि यह सब विचार मेरे लिए अयथाय है इसलिए यथाय की ओर जान से अब मुझे कोई या कुछ राक नहीं पाएगा। जिजा को मैं समझा नहीं सका किसी और को भी कैसे समझाऊँ ? लेकिन तुम, विलवर समझोगे कि यह कदम मेरे लिए पीछे हटने का नहीं है आगे बढ़ने का ही है। क्या मैं इतना निक्म्मा हूँ या निक्म्मा ही मुझे बन रहना है कि राज मेरे सामने रह पीछे न हा पाय। सुनो, अब मैं उसे पीछे ही छोड़ आया हूँ क्योंकि पुकार कर आगे बढ़ने से मुझे राका नहीं जा सकता। राज कई हैं और रहग लेकिन मान्यता एक है। मुझे विग्रह का नहीं रहना है मुझे उस एक की मवा म होना है। और जब मैंने आवाज का पहचान और सुन लिया है तब एहिक उपयोग की कोई भी बात मुझे उसके पीछे चतन से राक कैसे सकती है ।।

जयवधन के जीवन में एक ऐसी स्थिति आई है कि वह सत्ता की लिप्ता से ऊँचा उठ सका है और राज्य का त्याग में ही अपने जीवन की पूणता देव पाता है। उद्धरण का प्रथम रेखांकित वाक्य में मूलग्राही चेतना की पकड है और द्वितीय रेखांकित उद्धरण में मानवता के प्रति उसकी निष्ठा प्रकट होती है। जय ने यह भली प्रकार समझ लिया है कि अज्ञान राजनीति विग्रहकारिणी है और यदि जीवन को पूणता प्राप्त करनी है तो उसे अखिल मानवता की सेवा में जुटना होगा। जय की अतरात्मा की यही पुकार है। इस प्रकार के प्रकरण में उपयासकार की भाषा-शली विलुप्त रहस्यात्मकता के अज्ञान आवरण में ढकी रहती है। यदि हम उसे कई बार पढ़ें और उसका विश्लेषण करें, तो उसका अन्तःसौंदर्य प्रस्फुटित हो उठता है। एम स्थला पर विचारा की गरिष्ठता ता रहती है किन्तु इस गरिष्ठता के नीचे मूलग्राही चेतना का अन्न प्रवाह भी प्रगात गति में आनलित होना रहता है। मन्मथन उपयासकार अपरिग्रह और निष्प्रियता में ही जीवन का पूणता का दान करता है। भारतीय दशन का यही सार-सत्व है और इसी को जय ने आत्म

सात् कर लिया है ।

मुक्तिबोध

मुक्तिबाध क सहाय परामानसिक स्थिति क बहुत अच्छे उदाहरण कह जा सकत है। उनसे व्यक्तिक अचतन म अधिकार एव सत्ता क प्रति निस्पृहता की भावना अपने प्रत्यानात्मक रूप म प्रवाहित है किन्तु समष्टि मन म इस तथाकथित निस्पृहता की ठीक विरोधी अर्थात् अधिकार एव सत्ता के प्रति लिप्सा की भावनाएँ अस्पृष्ट रूप म प्रतिभासित हाना हैं। सहाय न गाधीबाद का नकाब जफ़र घोंट रखा है पर उनका असली रूप प्रकट हात दर नहीं लगती। अपने कथन क साध्य म मैं निम्न उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूंगा

(गाधी) समाधि बंद थी और घार सन्नाटा था। डाइवर मुझे देख रहा था। देख रहा था कि मैं दरवाज तक जाता हूँ और वहा चुपचाप खड़ा रह जाता हूँ। लगभग मिनट बाद लौलता हूँ और घूमता हुआ पाव पाव समाधि क दूसरी तरफ चला जाता हूँ। मुझे मातूम नहीं होता किन्तु डाइवर धीम धीम चुपचाप गाडी उसी तरफ ल आता है। दूसरी तरफ के दरवाज पर जहा सन्नाटा और भी घना है खड़ा हुआ मैं समाधि क अंदर देखता रह जाता हूँ। चारों तरफ ऊँचा परकाट है और ठीक मेरी आखा के सामने स प्रकाशिन एव साहसी बनी है। उसका पार नहा दीखता है। लेकिन मैं देख लता हूँ कि समाधि है चिक्के पत्थर हैं और वहा हे राम! जडा है। गाधी की प्रतिम पुकार ह राम!

रघुपति राघव राजा राम। रघुपति राघव राजा—एमे राम कौन है? कहा है मर वह क्या है? लेकिन मरे मन स भी निचलता है—ह राम! जो हुआ कि खड़ा ही रहूँ अंदर से पुकारता रहूँ—हे राम हे राम! कारण वही कुछ और नहीं बचा है एक राम की ही शरण रह गई है!

लौटकर सड़क पर आया ता गाडी खड़ी थी। मैंने डाइवर का कहा कि गाडी तुम ले जा सकते हो। लेकिन वह मुझे देखता रहा और गाडी ले जान को तैयार न दीखा। मैंने फिर कहा कि गाडी ले जाओ जगह दूर तो नहा है पदल चला जाऊंगा। लेकिन वह मुझे किसी तरह नहीं समझ पाया और दरवाजा खान खड़ा ही रहा। उसने मेरा घर देखा था जानता था कि पासला तीन मील का हा सकता है। मेरा मन उसकी बबली को देखकर कुछ भुभ लाया सही लेकिन मैं गाडी म बठ गया। बछे ही मातूम हुआ कि राम भुभम दूर हा गया है ससार फिर आकर घिर गया है।¹⁶

स्पष्ट ही यहा सहाय के मन पर गांधी का प्रभाव दृष्टिग्त एव औपचारिक है। औपचारिकता भी एक आवश्यकता बन गई है अथवा लागो को गांधी वाली नताग्रा का विश्वास कम होगा। ऐसा लगता है कि सहाय का डाइवर स्वय सहाय की तुलना मे उन्हें अधिक समझता है तभी तो उनके पुन-पुन कहने पर भी वह गांधी वापस नहीं ले जाता। अनुच्छेद की अन्तिम पक्ति मे स्वय सहाय की स्वीकारोक्ति बड़ी सटीक है—'राम का दूर हो जाना' और 'सासारिकता का घिर आना' सहाय की वास्तविक मन स्थिति के परिचायक हैं। ऐसे प्रसंगो मे जैनेन्द्र चित्रात्मकता का सहारा लेते हैं। समाधि यहा प्रयाजन विदु है और उसी को लेकर अंतरात्मा की लहरें लहरा रही हैं किन्तु सहाय का समष्टि अचेतन यहा सक्रिय है और उसमे उनका स्वाय और असली रूप भाक भाक जात है जिसकी परिपुष्टि उनके मन-न' करते हुए भी बार मे जा बठने से होती है। प्रस्तुत उद्धरण मे चित्रात्मकता के साथ ही साथ मनस्तरव को उदरेहने हुए व्यजना शक्ति को मुखर किया गया है। या गांधी-समाधि की लाक्षणिकता भी स्वन मुखर है।

अनन्तर

अनन्तर' जनन्द्र का आत्मकथात्मक अभिलेख है। इसमे कहानी एक परिवार के इन् गिन् ही मडराती रहती है और वह परिवार स्वय नैसक का है, ऐसे आभाम अनेक स्थला पर मिलते हैं। अनन्तर की केन्द्र विदु अपरा को कहा जा सकता है विभिन्न घटनाओं की सयाजिका और आकषण विदु भी वही है। यह अपरा विनायत मे बहुत-बुद्ध देख भोग कर पुन भारत इसलिए लौगे है कि सम्भवत उसकी आत्मा को यहा शक्ति मित्र। आन्तिय के साथ नसके जा सबध हैं उनकी इति में हम परामानसिक स्थिति के दग्न कर सकते हैं। अपरा ने चार को एक विस्तृत पत्र लिखा है जो अत्यन्त उमीलनकारी है

'चाह हम म्त्रियो के शरीर के प्रति पुरुष मे बडा लालच हाना है। यह हममे अपन को खाने को आलुर हाना है लेकिन उसमे पहले चाहता है कि स्त्री भी अपन को लेकर उसमे खा आए। पुरुष की यह लालमा स्त्री की शक्ति बन सकती है चाह वगैरे कि स्त्री ऊपर से चाहे जो दीखे भीतर स ठण्डी बनी रह मुझे ठण्डी होने की जरूरत नहा होनी। विनायत मे इतना बुद्ध देखा भोगा है कि अब चाह उपजती ही नहीं और चाह, इस सब और हम सबके पार ईश्वर है। असल मे वही है उसमे ही सब जीन भरते हैं। यह ध्यान मे रह तो न स्त्री पुरुष के लिए और न पुरुष स्त्री के लिए रोक बन सकता है। तब खावसा उनमे पार जाती है वह अभीष्टा बन जाती है और व्यक्ति अटूट

बनता है। चार तुम्हारे आदित्य महत्वावाणी है उची कामयाबी उन्हें पाना है लेकिन हम माग म महत्वावाणी ही दूटत है मैं यह जानती थी और अघरज है कि मैं अत्र तक जीवित हूँ कसलता न जाकर अघर रू जात तो गायन मुझ जान स मार बिना न रहत एक तरह गुट अपने मारन को यहा स गण है लेकिन उरो नही चार तुम हा बच्च हैं और उनर प्रताप स तुम देगागी कि वह नए तरीक स जीना शुरू करेंगे नही जानती मैं तुम्ह क्या क्या निगना चाहती हूँ। जब मोचती हूँ कि तुम्हारी अपराधिनी हूँ तो जी होता है तुम्हारे आग मुनी-नगी हा जाऊ। जा जितना कपडा म है उतना दुरी है। जितना निरावरण है उतना सुगी। चार यह मैं इमलिए बहा कि ईस्वर का जिगे भरोसा हा उम फिर कन का या निमीकी क्या चित्ता ? तुम भी एम रहोगी ता पनि तुमग हृत्कर दूर नही जा सकेंगे। लेकिन तुम पत्नी हो सत्र-कुछ तुम्ह देना है मैं पत्नी नही थी और एसीनिए जो कुछ नही द सकी वह मरी अपनी और अलग बात है लेकिन इसक बाद चार बुरा न मानना अघर कहूँ कि तुम्हारे आदित्य का मैं प्यार करती हूँ। जिस कतना कष्ट लिया है तुम्ही सांचो उम प्यार करने म कस बच सकता हूँ। उस कष्ट म मुझ वह पीठ मर, मार डानन तक क किनारे आ गण ता उमर निग क्या उनका कृतन हारे मे मैं बच सकती हूँ पर उनकी चाह मेरी निपट ठीकी कृतनता स लौटकर पहन चाहे उनका धायल करे पीछे भरपूर और सम्पन्न बनाएगी इसरा मुझे विश्वास है तब तुम देखागा कि तुम्हारा पति तुम्ह इतना मिला है कि अत्र तक नही मिला होगा। "

प्रस्तुत प्रकरण म भौतिक विलास स ऊकी हुई नारी की करण क्या है। यह युवनी शरीर स आदित्य का कुछ न द पाई किंतु कने आत्मविश्वास क माय बह उसकी पत्नी चार का उस प्यार करने की बात कहती है। अपने पत्र क अत्र म दाम्पत्य जीवन को सुखी बनान के लिए अपरा न कुछ सकेत-सूत्र दिए हैं जोकि मानवीय सबधा की दृष्टि स भ्रूभ और जटिल ही बह जा सकते हैं। पुन पुन नूय बिदुआ का प्रयाग कथन की तारतम्यता पर आघात करना है किन्तु यह बात भी सच है कि उच्चतर चितन की परामानसिक स्थिति म इस प्रकार का विचार-स्खलन सबधा स्वाभाविक है। एस पत्र की शब्दावली पर एक जटिल रहस्यात्मकता का पदा पडा हुआ है बहुत प्रयत्न करन पर ही कुछ सूत्र हाथ आ पाते है जैसे यह पत्र नही बल्कि ऊचे दान की दावा हो। उपन्यासकार का आस्था का स्वर अनेक स्थला पर प्रस्फुटित

हुमा है, किंतु उसने अपने स दार्शनिक सूत्र और भी जटिल बन गया है।

अपरा अपने अनुभवों से जान गई है कि अपने शरीर को पुरुष के प्रति समर्पित करने से तृप्ति हाथ नहीं लगेगी, इसलिए महज प्यार से वह उस तृप्ति का हस्तगत किया चाहती है। इस चिंतन के मूल में उमकी परामानसिक स्थिति की नतिवृत्ता ही काम कर रही है, जो समय और विवेक में ही जीवन की सिद्धि दखती है। प्यार तो एक प्रकार की सक्रामकता है, जिसने पहले आश्रित्य को पछाड़ा और अब जो अपरा से दो दो हाथ करने की तयारी में है। मन की इस द्विविधा स्थिति का प्रस्तुत पत्तियों में एक सटीक चित्र है। अचेतन में जमे हुए संस्कार अपरा का मागदशन करते हैं, और चेतन क्रिया कलाप में वह ऐसा कुद भी नहीं कर पाती जो कि दूसरे के द्वारा चाहा जा रहा हो, अथवा जिसके प्रति स्वयं उसके मन में ममत्व एक दुबलता हो। ऐसे स्थितियों पर उपयासकार 'लग जाने लग ही की भाषा' के स्तर पर आ जाता है और अनेक अनुभव प्रहेतियों को झूझने का विफल प्रयत्न करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे लेखक की अभिव्यजना सडसडा रही हो। मन की सूक्ष्म वायवी भावनाओं को पकड़ने के प्रयत्न में ही उपयासकार की यह नियति घनती है। यहा उपयासकार अपनी परिधि को लाघकर दार्शनिक परिधि में पहुच जाता है। ऐसी मन स्थिति में कबीर ने सध्या भाषा का प्रयोग किया था और जनद्र अस्फुट संकेत-सूत्रों से उमी सिद्धि को पाया चाहते हैं।

निष्कर्ष

(१) जनेद्र के उपयासा में परामानसिक स्थिति के सर्वेक्षण के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुचने हैं कि उपयासकार को इस स्थिति के चित्रण में असाधारण सफलता मिली है। व्यक्तिक अचेतन और समष्टिगत अचेतन के द्वन्द्व को लेखक ने बड़ी ही सूक्ष्म एवं व्यजनापूर्ण शब्दावली द्वारा उरेहा है। परामानसिक भावा के विविध आयाम कही संकेतात्मक रूप में तो कही सध्या भाषा में प्रस्फुटित हुए हैं।

(२) पूर्ववर्ती उपयासा की तुलना में परवर्ती उपयासा में यह प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। कल्याणी व्यतीत जयवधन मुक्तिबोध और अनन्तर में इसके पुष्कल उदाहरण विद्यमान हैं। यहा यह बात भी उल्लेखनीय है कि लेखक ममता भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हुमा है। भौतिक स्तर पर उसकी शाली में अधिक चटकीलापन है ममता यह चटकीलापन क्षीण होता गया है और उपयासकार की जीवन्तता भी परवर्ती उपयासा में मन्द से मन्दतर पडती गई है।

(३) इस प्रकार के विवरणों में जनद्रव की भाषा गली एक नय विचार के साथ जीवन असंगतिया का चित्रण करती है और अतदचतना में जा भी आडी तिरट्टी रखाए होती हैं, उनका फाग्रापिक विवरण प्रस्तुत करने में उपयासकार की अमाधारण क्षमता ही उसकी भाषा-शला में प्रकट हाती है । व मन की सूक्ष्मातिमूर्त तरंगा व अद्भुत गिल्पी हैं ।

(४) परामानसिक स्थिति व चित्रण में अनेक स्थला पर उपयासकार की भाषा गली क्लिष्ट रहस्यात्मकता व भीन आवरण में ढकी रहती है । यदि हम उस कई बार पढ़ें और उसका विश्लेषण करें तो उसका अनस्तौदय प्रस्फुटित हो उठता है । एम स्थला पर विचारा की गरिष्ठता ता रहती है किन्तु इस गरिष्ठता व नीचे मूलग्राही चतना का अत प्रवाह भी प्रगान गति स आन्वोलित होता रहता है ।

(५) परामानसिकता की द्विविधा स्थिति का परवर्ती उपयासा में अत्यंत सटीक विवरण मिलता है । समष्टिगत अचतन में जम हुए सस्कार पात्रा का अवूर्क रूप में भागदगान करते हैं और चेतन क्रिया-कलाप में अथवा वयविक अचेतन में इसस विपरीत ही आचरण हाता है । एम स्थला पर लसक की अभिव्यजना प्राय लडखडान लगती है । मन की सूक्ष्म वायवी तरंगा को पकडन की स्थिति में ही उपयासकार की यह नियति वनती है । यहा उपयास कार घटना-परिधि को लाघकर दानिक परिधि में पहुँच जाता है और प्राय सध्या भाषा का प्रयाग करने लगता है ।



शब्दशक्तिपरक अनुसंधान प्रतीक-योजना

०००

(१) शब्द-शक्तियों का पारिभाषिक विवेचन

सदम

ध्वनि सिद्धांत मुख्यतः भाषा की अर्थ शक्ति या अर्थ व्यक्त करने की विभिन्न विधियों पर आधारित है। इसके प्रवर्तक ध्वन्यालोक के रचयिता ध्यान-वर्धन हैं जिनका जन्म लगभग आठवीं-नवीं शताब्दी में हुआ। भारतीय आचार्यों ने शब्द-शक्तियों का विवेचन इन्हीं के आधार पर प्रतिपादित किया है।

शब्द-शक्तियों के तात्पर्य

संसार में जितने भी काम सम्पन्न होते हैं उनके मूल में कोई-न कोई शक्ति कार्य करती है। इसी नियम के अनुसार शब्द भी अपना कार्य अर्थ देने का कार्य जिस शक्ति के द्वारा संपादित करता है उसे शब्द की शक्ति या शब्द शक्ति कहा जाय ता अनुचित नहीं है।^१ शब्द-शक्तियों सामान्यतः तीन प्रकार की हैं अभिधा लक्षणा और योजना।

अभिधा शक्ति से तात्पर्य

अभिधा की परिभाषा करते हुए विभिन्न विद्वानों ने इसे शब्द के मुख्य

१ साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचंद्र गुप्त पृष्ठ २७८ ।

अथ वा बाध करान वाली शक्ति (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)^२ या साक्षात् मकनित अथ वा बाधक व्यापार (प० रामदहिन मिश्र)^३ अथवा शब्द व साक्षात् सबन्धित अथ की प्रस्ताति करान वाली शक्ति (डा० भालाशंकर व्यास) कहा है । इन विभिन्न परिभाषाओं में सामञ्जस्य स्थापित करते हुए डा० गणपति चन्द्र गुप्त न एक सवमाय परिभाषा देन का प्रयत्न किया है जा इस प्रकार है भाषा की जिस शक्ति से शब्द व सामान्य प्रचलित अथ का बाध होता है वह अभिधा शक्ति कही जाती है ।^४

अभिधा व तीन प्रकार

अभिधा के द्वारा जिन शब्दों का अर्थ-बोध होता है उन्हें वाचक शब्द कहते हैं । इन वाचक शब्दों व भारतीय आचार्यों ने तीन प्रकार बताय हैं— (१) शब्द शक्ति—जिनकी व्युत्पत्ति नहीं की जा सकती । जैसे पड़ घोड़ा घड़ा आदि । (२) यौगिक शक्ति—जहाँ दो अवयवों (प्रकृति और प्रत्यय) का योग होता है । जैसे भूपति (भू+पति) पाठशाला (पाठ+शाला) आदि । (३) याग शक्ति—जिनमें उपयुक्त शब्द और योग दोनों प्रकार व सम्बन्धों का समन्वय हो जैसे गणनायक (गणेश) मृगयनी ।

लक्षणा शक्ति से तात्पर्य

प्राचीन आचार्यों ने लक्षणा शक्ति की परिभाषा सामान्यतः इस प्रकार दी है— मुख्याय की बाधा हाने पर शब्द या प्रयाजन के कारण जिस शक्ति के द्वारा मुख्याय में सम्बन्ध रखने वाला अर्थ अर्थ लीत हो उसे लक्षणा कहते हैं ।^५ इस परिभाषा का विश्लेषण करते हुए डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने लक्षणा शक्ति की तीन विशेषताएँ बतलाई हैं — (१) लक्षणा शक्ति में शब्दों के वाच्याय या मुख्याय में बाधा उपस्थित हो जाती है या वाच्याय वहाँ अपने प्रचलित अर्थ में प्रस्तुत नहीं रहना परिवर्तित हो जाता है । (२) लक्षणा से प्राप्त लक्ष्याय वाच्याय से संबंधित होता है अर्थात् दोनों में कोई-न-कोई सम्बन्ध बना रहता है । (३) लक्षणा शक्ति के पीछे किसी विशेष शब्द या

२ रस मीमांसा पृष्ठ ३७१ ।

३ काव्यदर्पण पृष्ठ २० ।

४ ध्वनि-मन्त्रण्य और उसके सिद्धान्त पृष्ठ ६६ ।

५ साहित्य विज्ञान, पृष्ठ २८० ।

६ काव्य दर्पण रामदहिन मिश्र पृष्ठ २१ ।

वक्ता के किसी विशेष प्रयोजन की प्रेरणा अवश्य रहती है।^७

लक्षणा के प्रकार

लक्षणा शक्ति के प्रारम्भ में दो भेद किये गये हैं (१) रुद्धिलक्षणा (२) प्रयोजनवती लक्षणा। रुद्धिलक्षणा के पीछे रुद्धि की प्रेरणा होती है जबकि प्रयोजनवती में प्रयोक्ता का विशेष प्रयोजन होता है।

अभिधा और लक्षणा की भेदक विशेषता स्पष्ट करते हुए डॉ० गुरुपति चन्द्र गुप्त ने कहा है जहाँ अभिधा का निवास अलग अलग शब्दों में भी रहता है वहाँ लक्षणा की उद्दीप्ति गण्य-समूहों वाक्यांशों या वाक्यों में ही होती है। जब प्रत्येक शब्द का मूल अर्थ वाक्यगत अर्थ के अनुकूल रहता है, तो समझना चाहिए कि वहाँ अभिधा है अर्थात् वहाँ लक्षणा या योजना होगी।^८ अतः वाक्य-योजना के अंतर्गत मूल शब्दों का बदलना और न बदलना ही लक्षणा और अभिधा के बीच की सीमा रेखा है। वस्तुतः जहाँ अभिधा का क्षेत्र गण्यो में सीमित है वहाँ लक्षणा का क्षेत्र शब्द-समूहों वाक्य-खंडों और वाक्यों में व्याप्त है। मूल शब्दों का अर्थ वाक्य के अंतर्गत बदल जाने के कारण ही मुख्यार्थ की बाधा तत्संबंधी अर्थ अर्थों की उपलब्धि और चमत्कार की उद्दीप्ति होती है। तथाकथित रुद्धि-लक्षणा में ये बातें नहीं मिलती, जबकि मुहावरों और लोकोक्तियों में—जो कि चमत्कारयुक्त वाक्यों या वाक्य-खंडों के रूप में प्रचलित होते हैं—ये मिलती हैं अतः रुद्धिलक्षणा को अस्तित्वहीन मानते हुए हम मुहावरों एवं लोकोक्तियों को लाक्षणिक प्रयोग के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रयोजनवती लक्षणा ही वास्तविक लक्षणा है। इसके भी आचार्यों ने दो भेद किये हैं (१) गौणी और (२) शुद्ध। शुद्ध के भी दो भेद—उपादानलक्षणा और लक्षण लक्षणा—किये गए हैं।^९ लक्षणा के ये ही दो प्रकार प्रचलित एवं सवमाय हैं।

उपादान लक्षणा

जब लक्षणा में वाक्यार्थ सम्मिलित रहता है अर्थात् जब वाक्यार्थ का

७ साहित्य विज्ञान, पृष्ठ २८२।

८ साहित्य विज्ञान, पृष्ठ २८५।

९ साहित्य विज्ञान पृष्ठ २८५।

१० काव्य दर्पण रामदेहिन मिश्र, पृष्ठ २६ ३५।

सबथा त्याग नहीं होता इन अजहृत्स्वार्थी (अपन वाच्याय का न छोड़ने वाली) लक्षणा भी कहते हैं। जम हाथ-पर बचाते हुए काम करा। यहा हाथ-पर का अथ शरीर क अथ हागा। शरीर क अथ म हाथ-पर भी सम्मिलित हैं।

लक्षण लक्षणा

जब लक्षणा म वाच्याय सम्मिलित नहीं होता अर्थात् जब वाच्याय का सबथा त्याग हा जाता है ता इम जहृत्स्वार्थी (अपन वाच्याय का छोड़ देने वाली) लक्षणा कहते हैं। जम यह बातक सिद्ध है। यहा मिह का अथ वीर हागा।^{११}

व्यजना-शक्ति से तात्पर्य

विभिन्न आचार्यों ने व्यजना शक्ति की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं जिनमें से कुछ निम्नांकित हैं—

- (क) आचार्य मम्मट अनेक अथ बाने शब्द का जब सयोगादि क द्वारा वाचकत्व नियत हो जाता है तब भी उस शब्द क किमी और अथ का ज्ञान उत्पन्न होता है। वसे ज्ञान के उत्पन्न करनेवाले व्यापार का नाम व्यजना या व्यजना है।^{१२}
- (ख) आचार्य विश्वनाथ अपना अपना अथ-बोधन करके अभिधा आदि वृत्तियाँ क शांत हो जाने पर जिससे अथ अथ का बोधन होता है वह शब्द म तथा अर्थोदिक म रहने वाली वृत्ति (शक्ति) व्यजना कहलाती है।^{१३}
- (ग) आचार्य रामचन्द्र गुक्ल व्यजना शक्ति ऐम अथ का बतलाती है जो अभिधा लक्षणा या तात्पर्यवृत्ति द्वारा उपलब्ध नहीं होता।^१
- (घ) प० रामचंद्र मिश्र (अ) शब्दी व्यजना की परिभाषा सयागादि क द्वारा अनेकाय शब्द के प्रकृतापयोगी एकाय के नियंत्रित हा जान पर जिस शक्ति के द्वारा अथाय का ज्ञान होता है वह अभिधामूला शब्दी व्यजना है। लक्षणा मूला शब्दी व्यजना उस शक्ति का कहते हैं जिसके प्रयाजन क निमित्त लक्षणा का आशय लिया जाता है।^{१४}

११ अलंकार-परिचय नरात्तमदास स्वामी पृष्ठ ६१ ६२।

१२ काव्यप्रकाश मम्मट पृष्ठ २८।

१३ साहित्य दर्पण विश्वनाथ।

(आ) आर्यो व्यजना जो शब्द शक्ति वक्ता, बोधव्य, चेष्टा आदि की विशेषता के कारण व्यंग्याय की प्रतीति कराती है, वह आर्यो व्यजना कही जाती है।^{१६}

इन सब परिभाषाओं के आधार पर डा० गणपतिचंद्र गुप्त न निष्कप रूप में एक सवमाय परिभाषा देने की चेष्टा इस प्रकार की है व्यजना भाषा की यह शक्ति है जिसके कारण किसी प्रकरण या प्रसंग विशेष में एक साथ अनेक स्वतंत्र अर्थों की अभिव्यक्ति या प्रतीति होती है।^{१७}

शास्त्री और आर्यो व्यजना की परिभाषा प० नरोत्तमदास स्वामी ने इस प्रकार की है जब व्यजना शब्द में हो। व्यजना शब्द में है यह तब कहा जाता है जब उस शब्द को बदल देने से व्यंग्याय नष्ट हो जाय। जैसे—

चिरजीवी जोरी जुर क्या न सनेह गँभीर।

को घटि ? ए वृषभानुजा के हलधर क वीर ॥

राधा-कृष्ण की यह जोड़ी चिरजीवी हो। परस्पर गहरा प्रेम क्यों नहीं जुड़े ? दोना में कौन घटकर है ? यह वृषभानुजा है तो वे हलधर के भया हैं।

यह वाच्याय है। पर वृषभानुजा और हलधर शब्दों के अनेकाय हान के कारण एक दूसरा अर्थ भी ध्वनित होता है—ये वृषभ की अनुजा (बल की छोटी बहिन हैं), तो वे हलधर (बल) के भया है। यह दूसरा अर्थ व्यंग्याय है। यहाँ शास्त्री व्यजना है क्योंकि वृषभानुजा और हलधर के स्थान पर वृषभानु सुता और बलराम शब्द रख दिय जायें तो उक्त व्यंग्याय नष्ट हो जायेगा।

आर्यो व्यजना—जब व्यजना अर्थ में हो, अर्थात् शब्द के बदल देने पर भी व्यंग्याय निकलता रहे। जैसे—सध्या हो गई।

यहाँ वाच्याय है—सूर्यास्त का समय हो गया।

व्यंग्याय होगा—धूमने को चलने का समय हो गया।^{१८}

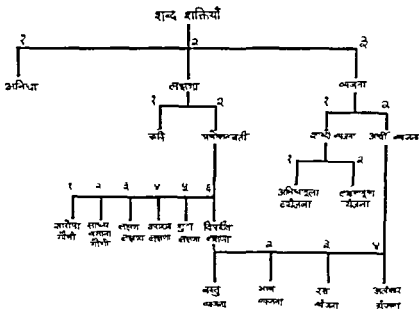
शब्द शक्तियों के तात्त्विक विवेचन के उपरान्त अब हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि जनेन्द्र के उपयोगों में इनकी क्या अवस्थिति है। आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि शब्द शक्तियाँ मुख्यतया काव्यानुशीलन में सहायक होती हैं उपयोग के सदर्भ में इनको अक्षरशः नागू नहीं किया जा सकता।

अभिधा शक्ति का उपयोग तो सभी उपयोगकार करते हैं इसमें कोई शङ्का नहीं है पर लक्षणा और व्यजना के प्रयोगों का अध्ययन हमारे लिए

१६ काव्य दण्ड रामदहिन मिश्र, पृष्ठ ३५ ३८।

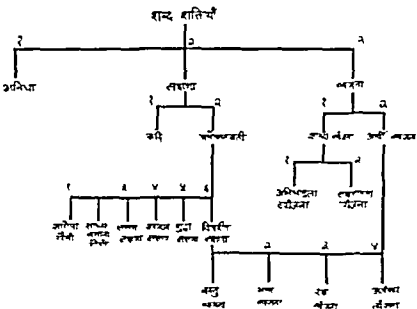
१७ साहित्य विज्ञान गणपतिचंद्र गुप्त पृष्ठ २६०।

१८ अलंकार परिचय नरोत्तमदास स्वामी पृष्ठ ६३ ६४।



- १० वृत्त च्युत फून का तरह उसका मन टूटकर धूल में लोट रहा है। (पृष्ठ १६) —सारोपा गौणी लक्षण
- ११ कट्टा लकड़ी का टूठ की नाट काठ-भारी खड़ी थी। यह कसी आवाज आई—कट्टा और उसी के साथ हँसी का टहाका। (पृष्ठ १८) —उपादान लक्षण
- १२ इस गूधन का साथ न जान और क्या गूध लिया गया है। सो उसका अधिकारी में कस बन जाऊ ? (पृष्ठ १६) —भाव व्यञ्जना
- १३ पर सत्यधन की (क्या गेकमपीयर से कम आखें हैं ?) झूलियट से कम का स्वप्न वह किसी तरह नहा देख सकते (उनका मन किसी तरह नहीं मानता कि शकुन्तला हाना अब बन्द हो गई हैं!) होनी हैं पर भाग्य चाहिए और वह अपने भाग्य का हेय मानने का तयार नहीं है। (पृष्ठ २१) —(अ) लक्षण-लक्षण —(ब) भाव व्यञ्जना
- १४ गरिमा इष्ट्रेंस भी पार कर चुकी है और किशोर-वय भी। अब यौवन वसन्त की देहनी पर खड़ी उस वसन्तघान की भाँकी ने उठी है। वसन्त की वायु भोके ल-लकर आती और उसके शरीर पर अपना नया फेंक जाती है। यानी दर में देहलीज से उतर कर वह प्राण बढ़ चन्गी वह चन्गी। चलने से पहले वह अपने की चाह से भरपूर भर लगी जिसमें यह चाह उसे यौवन के काल में उड़ाए ल चन् उड़ाए ल चन्। (पृष्ठ २३) —सारोपा गौणी लक्षण

- १५ समझ गए इस परमाय के काम के लिए बिहारी को ही (पकाया जा रहा दीखता है।) (पृष्ठ २७) —वस्तुयजना
- १६ बहकर वह भट में भाग छूटी और पास के एक दरस्त पर चढ़ गई। जैसे अभी बदर की आत्मा उसमें आ गई हो। (पृष्ठ ३२)
—लक्षणा लक्षणा
- १७ चंचलता से नहीं सुष्ठु गाम्भीर्य से भरा बालोचित श्रौत्सुक्य की जगह स्नेहाभिपिक्त प्रणयावाक्षा से खिलता हुआ यह विह्वलता बरसाता चेहरा कट्टो का नहीं है। (पृष्ठ ३८) —भावव्यजना
- १८ परा का पाकर कट्टो ने अश्रु-जल से उनका खूब ही अभिसिंचन किया। (पृष्ठ ३८) —प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा
- १९ पर आमुआ से धाये जा रहे हैं और मन देह के बंधन में सफट निकल कर बह रहना चाहता है। (पृष्ठ ३९) —भावव्यजना
- २० इधर कट्टो सौभाग्य के पहाड़ के नीचे दबकर अचेतन सी हो गई। (पृष्ठ ३९) —अलंकार व्यापना
- २१ अपनी अकेली बेटो को—जो विधवा है और बच्ची है इस (चूसने की घात लगाए बठी दुनिया) में छोड़ जान की तयारी करती हुई दुखिया मा के कलेजे में निकला यह दब सत्य ने बरदान रूप में स्वीकार किया। (पृष्ठ ४३) —आर्षी व्यजना वस्तुयजना
- २२ खीर के भोजन में यह नौन की अनी मुह बिगाड़ गई। (पृष्ठ ४३)
—वस्तुयजना
- २३ यह जानकर सत्य पर बफ सा पड़ गया। बिहारी से किस मुह से मिलेगा। (पृष्ठ ४६) —सारोपा गौणी लक्षणा
- २४ फिर अपनी अग्रंजी डिग्री को, चोगो और मनदा का खूटी पर लटका कर बहूंगा—लागो बह रही तुम्हारी बकालत और बह रही तुम्हारी अग्रंजी। उहे हाथ जोड़ो मुझे छोड़ दो। मुझे चुपचाप किसान बन कर रहने दो। (पृष्ठ ५१ ५२) —भावव्यजना
- २५ नेत में बड़े-बड़े इस तरह जो बगीचे उमने बनाए और कितने खड़े किए उन सबके बीच में आ प्रतिष्ठित होती थी वही कट्टो। (पृष्ठ ५२)
—गौणी लक्षणा साध्यवसाना
- २६ इस आमल-खच की हिमावी सूक्ष्म बुद्धि पर चत्कर जब वह तोलन बठता है तो वह देवता है कट्टो की और आमद नहीं खच ही खच है। (पृष्ठ ६१)
—वस्तुव्यजना



- १० वृत्त च्युत फूट की तरह उमगा मन दूरकर धूल में गिर रहा है। (पृष्ठ १६) —मारोपा गौणी नशणा
- ११ बट्टा नशडा व ठूट की नाग वाठ-मागी मडा थी। यह कमी भावाज धार्म—बट्टा और उसी व साथ हमी का टहारा। (पृष्ठ १८) —उपागत लभणा
- १२ एम गूधन व साथ न जाने और क्या गूध लिया गया है। मो उमका अधिकारी में कम बन जाऊ ? (पृष्ठ १६) —भाव व्यजना
- १३ पर मत्यधन की (क्या गक्रमपोयर स कम भासे हैं ?) जूनियर म कम वा स्वप्न वह तिमि तरह नहा दस सजत (उनका मन किसी तरह नहीं मानता कि गवुनला हांना मय बग हा गई हैं।) होती हैं पर भाग्य चाहिए और वह अपने भाग्य का हेय मानने का तयार नहा है। (पृष्ठ २१) —(घ) लभण-लभणा —(ब) भाव व्यजना
- १४ गरिमा दृष्टे स भी पाग कर चुकी है और विचार-बय भी। भव यौवन वगन की दहनी पर खडो उस वसनाचान की नाकी न उठी है। वसत की वायु भाव ने-लकर घाती और उसके गरीर पर अपना नगा पक जाती है। थाडी तर म दहनीज स उतर कर वह भाग बड चलगी वह चनगी। चनन स पहन वह अपने को चाह म भरपूर भर लगी तिमम यह चाह उम यौवन के वान म उडाए ल चन उडाए ल चन। (पृष्ठ २३) —मारोपा गौणी नशणा

- १४ समझ गए इस परमाय के काम के लिए बिहारी को ही (पकाया जा रहा दीखता है।) (पृष्ठ २७) —वस्तु-योजना
- १६ कहकर वह भट से भाग छूटी और पास के एक दरमन पर चढ़ गई। जैसे अभी बादर की आत्मा उसमें आ गई हो। (पृष्ठ ३२) —लक्षण-लक्षणा
- १७ चंचलता से नहीं, सुष्ठु गाम्भीर्य से भरा, बालोचित श्रौतुव्य की जगह स्नेहाभिपिक्त प्रणयावासा से खिलता हुआ यह विद्वाना बरसाता चहरा कटो का नहीं है। (पृष्ठ ३८) —भावव्यजना
- १८ पत्नी को पाकर कटो ने अप्पु-जल से उनका श्रुव ही अभिसिचन किया। (पृष्ठ ३८) —प्रयोजनवती गुट्टो साध्यवसाना लक्षणा
- १९ पैर आमुआ से घोसे जा रहे हैं और मन देह के बधन म म फट निकल कर बह रहना चाहता है। (पृष्ठ ३९) —भावव्यजना
- २० इधर कटो सौभाग्य के पहाड के नीचे दरकर अचेतन-सी हो गई। (पृष्ठ ३९) —अलकार व्यजना
- २१ अपनी अकेली बेटी को—जो विधवा है और बच्ची है इस (चूसने की घात लगाए बठी दुनिया) म छोड़ जाने की तयारी करती हुई दुखिया मा के कलेजे स निकला यह दद सत्य ने चरदान रूप म स्वीकार किया। (पृष्ठ ४३) —आर्थी व्यजना वस्तुव्यजना
- २२ धीर के भोजन म यह नौन की अनी मुह विगाड गई। (पृष्ठ ४३) —वस्तु-योजना
- २३ यह जानकर सत्य पर वफ-सा पड गया। बिहारी म किस मुह से मिलेगा। (पृष्ठ ४६) —सारापा गौणी लक्षणा
- २४ फिर अपनी अग्रजी डिग्री को चोगो और सनदो का खूती पर लटका कर कहूंगा—'नोगो वह रही तुम्हारी बकालत और वह रही तुम्हारी अग्रजी। उन्हें हाथ जोडो मुझे छोड ले। मुझे चुपचाप किसान बन कर रहने दो। (प० ५१ ५२) —भाव-योजना
- २५ रैन म बठे-बठे इस तरह जो बगीचे उसने बनाए और किन लठे किए उन सबके बीच म आ प्रतिष्ठित हाती थी वही कटो। (पृष्ठ ५२) —गौणी लक्षणा साध्यवसाना
- २६ इस आमद-खच की हिसाबी सूत्र बुद्धि पर चढकर जब वह तीलन बठना है ता वह देवता है कटो की और आमद नहीं खच-हा खच है। (पृष्ठ ६१) —वस्तुव्यजना

- १७० जनेत्र के उपवास का मनाविधानपरक और श्लीनातिवक अध्ययन
- २७ इस कल्पनातीत बात—इस अनोख दाँव के आगे तत्त्वगता की सुसानन्द गङ्ग-सेना' के रहते भी सत्य सिटटी भूल गए ।' (पृष्ठ ७८)
(१) गौली मागेवा लक्षण
(२) गौली नभणा साध्यवसाना
- २८ प्रागू डराना बट हा गया है मह के बाद अत्र घातनी मानो मुह पर बिरबने को हा रही है—यह अब ताजी धुनी हुई बटो की बिरण बौमुनी मानो हंस देगी । (पृष्ठ ८१) —अलवार व्यजना
- २९ यह गुहाग बटो का उतरन है । (पृष्ठ ८५) —वस्तुव्यजना
- ३० दुनिया का भाठवा आदम्य उतरन मानो गाव आ गया है । (पृष्ठ ९३)
—साध्यवसाना गौली लक्षण
- ३१ वह इगग हरी हा गई जस बारिण से भरी धुनी नई पुनवारी हा । (पृष्ठ ९७) —उपादानलक्षण
- ३२ उनहार मनुहार छीन भपट गुग्गुदाट्ट और जवरन्ती प्रादि प्रादि बहुत-भ व्यजन भी पाली के व्यजना म मिल गए । (पृष्ठ १०२ ३)
—वस्तुव्यजना

उपवास सुनीता

- १ मैंने इन पिछले दिना अपने म से क्या खो दिया है कि उनके सामने फूल सो लिल नहीं जाती हूँ ? (पृष्ठ ८) —सारोपा गौली लक्षण
- २ सुनीता अपने घर म पत्र निरानन्त को हृदयगम करती है और जब सोचती है कि यह कैसे हटे तो अस्पष्ट रूप म ही वह पाती भी है कि अपने जीवन और घर के किबाड और लिडकिया सोल द खूब हवा आने-जाने दे, तभी ठीक होगा । (पृष्ठ ८) —वस्तुव्यजना
- ३ और तुमको यह भी क्या मालूम है कि साधूपन म निरा रेत-ही रेत है पानी वही भी नहीं है । (पृष्ठ १०) —साध्यवसाना गौली लक्षण
- ४ मैं अपनी सहानुभूति पर कोई भूगोल की सीमा न चढन दूगा । (पृष्ठ १९) —गुद्धा लक्षण
- ५ कमर पर कसी घोती का फेंटा जसे कहता था कि कोई अवश्य परास्त होगा । (पृष्ठ २३) —प्रयाजनवनी लक्षण
- ६ इन प्यारी प्यारी जिल्दो को यो एक पर एक सिर टेके बवायद सो म प्रस्तुत रखने मे किसकी चिन्ता व्यय हुई है । (पृष्ठ २८)
—वस्तुव्यजना

७ उसने शाँ को झोंघा मेज पर रख दिया^१ और वह टहलने लगा । मन म उसके उठा कि बिवाह और पत्नीत्व ऐसी क्या वस्तु हैं कि स्त्री अपना नाम भी खो दे और अमुक एक पुरुष के नाम को अपने ऊपर छत्र की भाँति लेकर उसके नीचे उसकी सम्पत्ति हो रहे ?^२ (पृष्ठ ३०)

—(१) उपादानलक्षणा, (२) सारापा गौणी लक्षणा

८ वदूत हैं जो धन से भरे हैं और मन से बाल हैं । तब धन में खाली होना क्या कुछ उजली बात नहीं हो सकती ? (पृष्ठ ३७)

—लक्षण लक्षणा

९ लेकिन वह तो कमरे के बाहर तर गई ।^१ उस समय उनकी रेगमी साडी की धानी भ्रामा ही धापती हुई भलमल भलमल हरिप्रसन्न की आँख में रह गई । (पृष्ठ ३६)

—(१) साध्यवसाना गौणी लक्षण

—(२) भावव्यजना

१० वक्त को जय हरिप्रसन्न नहीं काट पाता (तब खाली रहकर वही हरिप्रसन्न को काटता है ।) (पृष्ठ ८३)

—वस्तुव्यजना

११ किन्तु पास जाकर देखा तो हरि दानो (हथेलियाँ पर ठाड़ी रखे उगलियाँ से बनपटी पकड़, सामन बिछे कागज पर बाली लकीरो से बन आल जाल का ऐसा खोया)^१ सा देख रहा है, माना (वहा उसके प्राण कील दिये गये हा ।)^२ (पृष्ठ ८८)

—(१) भावव्यजना

—(२) साध्यवसाना गौणी लक्षण

१२ (हरिप्रसन्न के हृष पर अलक्ष्य भाव से माना पानी म भरा हलवा-सा बादल आ गया, उस हृष की खिलती हुई धूप कुछ जसे छिन्न गई)^१ उसने कहा (‘एक रोज उनके हाथ की रोटी तुम्हें न मिनेगी इसकी चिंता हाती है ।)^२ (पृष्ठ ९०)

—(१) अलक्ष्यजना

—(२) भावव्यजना

१३ जो तीखी धार सब-कुछ काट देगी स्वच्छ तरलता को वही किस दात से काट सकती है ? तीखे की पत की स्पर्धा यही बुद्धि हाती है ।

(पृष्ठ ९३)

—साध्यवसाना गौणी लक्षण

१४ धपया क्या है ? वह धातु नहीं है ? मिट्टी नहीं है ? वह तो मन है, जो मल का पोषण करता है । फेंकने में ही उसके कृतायता है ।

(पृष्ठ १०३)

—प्रयाजनवती लक्षण

१५ फटी पुस्तक की आट बनाने की इस व्यक्ति से बचने क लिए क्या जरूरत है ? यह ता या ही नख-दत विहीन मनुष्य है । (पृष्ठ १०७)

—लक्षणमूलक व्यजना

१६ (धीकान्त गुना रहता है। उमन चाहा है कि हरिप्रमन भी बिल्कुल गुनवर महा रह किन्तु वह किम भाति अपन को गालनर म यह हरिप्रमन स्वय नहीं जानता।) मानो कि कुछ भीषण उमक अन्तर यन् है कुछ कृत्स्नित कुछ कृत्स्नित, (क्या गोलवर उही रेंगत हुए सपों का अपन बाहर कर देना होगा कि बाहर व अपना विप फनाए।) दि दि उन जन्मुषा के तो भीतर ही बन् रहन म पुान है।

(पृष्ठ ११५)

—(१) भावव्यजना

—(२) साराणा गौणी लक्षण

१७ कनाकार भक्तता न रहे उद्भात न रह किमा प्रयोजन म नियोजित कर गिया जाए तो वह बड़ी गति बन जाता है नहीं तो वह अपन को ही माना है। (पृष्ठ १३६)

—वस्तुव्यजना

१८ मन-ही-मन म वह गायन् स्वय इम बात को अम्बीकार नहा कर पाना है कि रिवाल्वर म उमक (मन की गाठ ही मूर्तिमान है।) (राह बढी है मा उमम बचन व निण मानो यह रिवाल्वर का गान-वट है।)

(पृष्ठ १३६)

—(१) म्ढा लक्षण

—(२) प्रमाजनवनी लक्षण

१९ क्या मुन उहें जाकर यह मुनाना होगा कि वह रानी माता नहा है वह पनिप्रता गृहस्थिन है? (पृष्ठ १५३)

—वस्तुव्यजना

२० यह मानो इम (अनबुक्त विन्व प्रय म उलट गए हुए एक अद्ध विराम व चिह्न की भाति) बहा बठा था मातो निस्तिन प्रवाह के बीच के क्षण की एक चुप को चिह्नित करने के निण ही वह है अयथा वह कुछ नहीं है (मात्र एक काली बूद है।) (पृष्ठ १८२)

—(१) अलकारव्यजना

—(२) सारोणा गौणी लक्षण

उप-यास त्यागपत्र

१ उन बुझा की याद जस मर सब-कुछ को लट्टा बना देती है। (पृष्ठ ५)

—भावव्यजना

२ बुझा का तब का रूप सोचता है ता दग रह जाता हू। ऐसा रूप कब किसका विधाता दना है। (जब देना है तब कदाचित् उसकी कीमत भी समूल कर लेन की मन-ही-मन नीयत उमकी रहती है।)

(पृ० ६७)

—वस्तुव्यजना

३ मास्टर देखते इस तरफ है ता वह आग्य किसी ओर ही तरफ देखती है। (पृ० ७)

—वस्तुव्यजना

- ४ उनका चेहरा माना रात में घुल गया था । ऐसा लगता था कि मा भगले क्षण अपने की ही बात से न उधेड़ने लगे । (पृ० १३)
—भावव्यजना
- ५ बुझा के अक म चुपचाप गावक-सा पढा रहता । (पृ० १५)
—सारोपा गौणी लक्षणा
- ६ मा स कह दिया कि तू राक्षस है और मैं इस घर में पैर भी नहीं रखूंगा । (प० १५)
—लक्षण-लक्षणा
- ७ बुझा के उस घासू भरे मुखड़े के भागे मेरी हठ बिल्कुल गल गई ।
(पृष्ठ १६) —साध्यवसाना गौणी लक्षण
- ८ हमारी बुझा फूल-सी थी । (प० १७)
—सारोपा गौणी लक्षणा एवं भावव्यजना
- ९ तेरी मा ने मुझे (धक्का देकर पराया बना दिया है ।) पर मुझे जहा भेज दिया है प्रमोद (मेरा मन वहा का नहीं है ।) (प० १८)
—(१) वस्तुव्यजना (२) भावव्यजना
- १० इस पर उन्होंने अपनी चुटकी से दबी कागज की गाठ को खोला और दोनो हाथों के जोर से उस छोटे से कागज के हजारो टुकड कर डाले और उन सबको गुडी-मुडी करके मेरी तरफ फेंक दिया । वहा, (यह है दवा जाग्रो ले जाग्रो ।) (पृष्ठ २४)
—वस्तुव्यजना
- ११ बल्कि उन्होंने ता परोप म फूफा को बाफी (सद-गम) तक कह डाला
(प० २६) —सारोपा गौणी लक्षणा
- १२ अपन (फूफा की चीज) को छीनने वाले तुम होते कौन हो ?
(प० २७) —प्रभिधामूला शास्त्री व्यजना
- १३ इस बार पुस्तक कोई साथ नहीं ले जायेंगी पुस्तकें अच्छी चीज नहीं होती, उन्हें अच्छी नहीं लगती । (प० ३४)
—वस्तु व्यजना
- १४ क्या जाति क्या अपने पिता के घर की होती है ? मैं कोई निराली जमी हू ? (प० २७)
—वस्तु व्यजना
- १५ हमारे यहा का पानी और घी दूध कसा है, आप जानते ही है । मसल है (घी और मरद पछाह का ।) (प० ३८) —रूढा लक्षणा एवं प्रयोजनवती लक्षणा
- १६ पर आप देखिएगा कि वहा पहुचकर थोडे ही दिन में (तबियत हरी) हो जाती है और सच पूछिए तो (छोटे-मोटे रागो का परवाह करना उनकी परवरिश करना है । सौ दवाघा की एक दवा है बेफिनी ।)
(प० ३८ ३९) —रूढा लक्षणा एवं प्रयोजनवती लक्षणा

१७४ जन-द्र व उप-यासा वा मनाविज्ञानपरव और गलीतात्विन अध्ययन

१७ बाबूजी की बुद्ध (दबी हुई स्थिति) की भलक उनका चहर पर देखकर बड़ी खीझ मानूम हो रही थी। पर जाने मुझे क्या चीज रोस रही थी कि मैं (फट नहीं पडा।) (प० ३६) —(१) वस्तुव्यजना
—(२) भावव्यजना

१८ तब मैं (छानो निवानवर चलता) हुआ पूफा व सामन खडा हा गया। (प० ४०) —प्रयोजनवता लगणा एव लगणामूला व्यजना

१९ उम समय मेरे मन म हुआ था कि उल्टे वे ही मुभम इवन्नी ल लें चाह दुप्रनी ले लें पर इन मेरी बड़ी-बड़ी नोकीली मूद्यो को खीचना कसा मानूम होगा यह जानना चाहता हू। हो तो चलो इम बात की अटनी ही दे दूगा। (प० ४०) —भावव्यजना

२० (पनिव्रता रहन पूता फनन बडभागिन होने आनि व आगीवाँ उन्हाने एम प्रगाल्न भाव म दिए) कि माना (उनके नीच वे गडवर मर भी जाएँ तो घय हा जाए।) (प० ४२)

—(१) ददा (प्रयोजनवती) लगणा

—(२) लगणामूला व्यजना

२१ मेरे रहने क्या चली जा रही है ? और य फूफा कौन बता है कि न जाएंगे ? ल जाए तो ले जाए। जाए अरे टलें तो ! (प० ४३)

—भाव-यजना

२२ फूफा ने समोद भाव से कहा प्रमोद साहव ! आदाव अज है। मैं माना घूट पीता हुआ खडा था। (प० ४४) —भावव्यजना

२३ (फिर भी उत्तर नीरव भाषा म सग मुस्तरित है।) अतिल मृष्टि स्वय म उत्तर ही तो है। अपने प्रदन का वह आप ही तो उत्तर है। (प० ४५)

—अलवारव्यजना

२४ मैं अपनी (व्यथ प्रतिप्या के बूह पर बटा हू।) कामयाव वकालत और इसी जजी के इतने मोटे गरीर म क्या राई जितनी भी आत्मा है।) (प० ४५) —साध्यवसाना गौणी लगणा

—वस्तुव्यजना

२५ नयी परिस्थितिया मिली नये दोस्त मिले (निगाह फलती गई और जिलगी की स्वाहिशें मुह खोलकर सामन आइ। बुझा की याद धीम धीमे धीमी हो गई।) (प० ४६) —अलकार व्यजना

२६ अपना पढ़ना लिखना बुद्ध भी नहीं जब देखो बुझा बुझा। तेरी बुझा मर गई !—हा तो ! खबरदार, जो अय बुझा की बात मुभमे की। (प० ५०)

—भावव्यजना

२७ बात यह है कि मेरे ब्याह की बातचीत के सूत को उठाकर इस बार मा उसम पक्की गाठ दे देना चाहती थी। (प० ५२)

—प्रयोजनवती लक्षणा

२८ जगह को अच्छी कौन कहता है ? पर जगह तो है। (कभी जगह भर हाने का भी सवाल बड़ा होता है।) तुम साफ कहो न प्रमोद, कि क्या तुम्हारी समझ में नहीं आता है ? (प० ६४)

—रूढ़ा एव प्रयोजनवती लक्षणा

तथा वस्तु-योजना

२९ तुम समझते हो, यह आदमी जिसके साथ मैं रह रही हूँ, ज्यादा दिन रख सक्ता ? नहीं मैं जानती हूँ एक दिन यह मुझे छोड़कर चला जायेगा। तभी इस कौठरी से मेरे उठने का दिन होगा। (प० ६४ ६५)

—वस्तु-योजना

३० पर मुझे ऐसा लगा कि उनकी आँखों में अब भी मैं काटा हूँ। इसकी वजह भी मुझे दीखी कि मेरी उपस्थिति उनको खटके। (प० ६७)

—रूढ़ा एव प्रयोजनवती लक्षणा

३१ एक बार घर आकर मैं समझ गई थी कि वैसे मके जाना ठीक नहीं है। स्त्री जब तक ससुराल की है तभी तक मके की है। ससुराल से दूटी, तब मके से तो आप ही मैं दूट गई थी। (प० ६८)

—वस्तुव्यवस्था

३२ वह विघ्नो की तरफ से आघा होकर मेरे पास आया। (प० ६९)

—गौणी साध्यवसाना लक्षणा

३३ जसी मैं उसकी प्यारी थी और प्यारी हूँ वह मैं ही जानती हूँ। उसे अपने मोह का ही प्यार था। (प० ७०)

—वस्तुव्यवस्था

३४ मागो समय जमकर पढी शिला हो गया। नीरवता ऐसी हो आई कि हमारे पास ही हम हाय-हाय शोर करते हुए जान पड़ने लगे। ऐसे कितना समय बीता। आस दुबह हो गया। (प० ७३)

—वस्तुव्यवस्था

३५ (हारे जरूर शरीक होऊंगी। मैंने करम जो किये है। बातचीत पक्की हो गई ?) (प० ७५)

—लक्षणा-मूला व्यवस्था

३६ उसके कारण इस दुनिया का बहुत कुछ व्यय और निकम्मा मालूम होता था, सुख नीरस जान पड़ता था और दुःख सार। (प० ८०)

—प्रयोजनवादी लक्षणा

३७ जो भेला है सब पी गई है। सब का रस बन गया है। सार कोई नहीं है। (प० ८७)

—वस्तुव्यवस्था

३८ धून म ग ठहर उसी के निर्जीव छूछ पिजर को तू हठपूर्वक सामन लाकर सत्य बहना चाहता है यही झूठ है । (प० ८६)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा
और प्रयोजनवती लभणा

३९ राजनस्त्रिणी का एक बार सामन पढी ता सिन्दूरिया हो गई और पल क आगे दूसरा पल बहा नहीं ठहरी भाग आई । (प० ९०)

—भावव्यजना

४० लूच कमा और कमाकर सब इस गड्ढे म ला पटका कर । सुना कि नहीं ? रुपए के जोर स यह नरक-कुण्ड स्वग बन सकता है ऐसा तो मैं नहीं जानती । फिर भी रुपया कुछ-न-कुछ काम आ सकता है ।

(प० १०२)

—सारोपा गौणी लक्षणा

४१ व बुझा जिहाने बिना लिय दिया जिहानि कुछ किया मुझ प्रेम ही किया । जिनकी याद मरे भीतर भ्रव अगार-सी जलती है जिनका जीवन कुछ हो ऊपर उठती ली की भाति जलता रहा । धुआँ उठा ता उठा पर ली प्रकाशित रही । (प० १०४)

उपयास कल्याणी

१ मैंने चाहा कि उधर यान न दू । सोच लू कि ससार है गोक करते बठना छाभा नहीं देता । (ऐस ससार काटना दूभर होता है) यहा घास मूद जिए जाया और क्या ! हलके रहा और खुशी से हटकर गिरो तो भी खुशी पर ही गिरो । रज को पीठ दिए रहा । बुद्धि मानो इसी का नाम है ! (प० १०)

—वस्तुयजना

२ पर उस (बिगडती सी स्थिति को एकदम अपन हाथा म लेकर कल्याणी ने) शोधर की ओर देखते हुए कहा—क्या आप जाइएगा ?

(प० १४)

—प्रयोजनवती लक्षणा

३ कविता कुछ एस तल्नीन भाव स सुनाई गई कि जब वह पूरी हुई तब उसके बाद भी कुछ भ्रणा तक मानो वह प्रवाहित ही रही मानो हवा म अभी घुमड ही रही हो । समय बध गया था और कविता की ही बहा एक गनि थी । (प० १५)

सारोपा गौणी लक्षणा

४ मुझे सन्देह है कि मैं रोगियो का इनाज करती हूँ । (मालूम होता है कि मैं पसा कमाती हू । (प० २१)

—अभिधामूला शाब्दी यजना

५ बोली—ओ, अच्छा ! आपको जो कष्ट दिया उसके लिए क्षमा चाहती हूँ । भ्रव कष्ट नहीं दूगी । (लेकिन स्त्री की कोई बात सच नहीं माननी चाहिए ।) (प० २२)

—वस्तुव्यजना

६ प्रतीत हुआ कि सत्ता तकलीफ की बातें ही उनके मन को नहीं घेरे रहती है। (चुहल का भी वहा काफी अन्नकाण है) पर ऐसे समय वह और भी अनवृम्भ दीखती है।) (प० २३)

—(१) भावव्यजना

—(२) वस्तु-यजना

७ उन्होंने हँसकर कहा—आप मुझसे डरिए नहीं और (मुझे निर्दोष भी न मानिएगा। स्त्री निर्दोष हा सकती है ? पहला दोष तो यही है कि वह स्त्री है।) (पृष्ठ २७)

—वस्तुव्यजना

८ कह तो रहा हूँ कि वह अब कोठरी म मुदी पडी है। (प० ३०)

—लक्षण लक्षणा

९ मैंने कहा—(यह सवाल करने लायक अब आप नहीं रही हैं।) हँसकर बोली—(हा मैं किसी लायक नहीं हूँ।) मैंने कहा—(गनीमत है कि आप यहा से जाने लायक हैं।) वह बहुत हँस आई। वाली—यही बात है। (मैं हर घर से निकलने लायक अवश्य हूँ।) (प० ३७)

—भाव-यजना

१० असल म वह मुझे बहुत उदार है। (पृष्ठ ४०)

—अभिधामूला-यजना

११ चलते चलते उन्होंने उत्तर दिया कि हा वह साहसी है। (नही तो मैं मैं क्या विवाह के योग्य तक थी ?)।

यह वाक्य सुनकर मैं (सन्न सा) रह गया, कुछ समझ नहीं सका।

(पृष्ठ ४३)

—(१) अभिधामूला-यजना

—(२) भावव्यजना

१२ मैंने कहा, मैं आपके (मन की गृहलक्ष्मी) बनकर स्वयं भी रहना चाहती हूँ, पर वह तभी रह सकती हूँ, जब डाक्टरनी न रहे, डाक्टर होकर (अनपुर की शोभा) मुझमें बहुत न बढेगी उस हालत म हर किसी के सामने (मुह उधाडे मिलना और बोलना) होता है। (प० ४६)

—(१) भावव्यजना

—(२) वस्तु-यजना

१३ इस तरह कोई (हफ्त भर मैं नीचे अपनी मेज पर नहीं गई।)

(डाक्टर का मुह इस बीच गिर आया।) (प० ४६)

—(१) लक्षण-लक्षणा

—(२) रुढा लक्षणा

- १४ कहकर मानो वह कष्ट की हँसी हँसी। (पृ० ४८) — विपरीत लक्षणा
- १५ (उस निगाह के अभियोग को कमे वचाता ?) जसे उस निगाह से उन्हने समूची पुरप जाति को अभय दिया माना कहा—तुम अगर अपनी स्वतन्त्रता की और अपने समाज की रक्षा म स्त्री को अरक्षा म छोड़कर असहयोगपूर्वक चले जाना चाहते हो ता चले जाओ। तुम्हे शांति मिल हमारी चिंता तुम्हारी बाधा न बन। (हम स्त्रिया अपने को सह लेंगी। पर मानो यह अभय ही उनका अभियोग था।) (पृ० ४९)
- भाव यजना
—विपरीतलक्षणा
- १६ यो तो आदमी का सारा (पसारा) ही जजाल है। पर यह कहने से (हाय क्या लगता है।) (अपने को चारा ओर फलाकर) गायद उस फलाव के भीतर आदमी (अपने मन को ही पकड़ना) चाह रहा है। यह रचता है वह रचता है कि इन (रचनाओ क थूह म घेरकर अपने को पा लेगा।) (पृष्ठ ५२)
- (१) वस्तुव्यजना
—(२) रुढा लक्षणा
(३ ४ ५) प्रयोजनवती लक्षणा
- १७ इधर पत्नी के साथ डाक्टर साहब की साख फिर जम चली है। सब-कुछ अब डाक्टर क हाथ म है, क्याकि जाहिर मे डाक्टर अब बलाग और तटस्थ रहते है। किमी बात म वह विरोध नहीं करते इसस पत्नी तो और भी किसी बात का विरोध नहीं करती। बस इतनी सी युक्ति स पत्नी अनुगता हा गई है। उनका कहना था कि (स्त्रिया अपनी नाक स आगे नहीं देख सकती। उह बुद्धि होती है पास तक की आसपास के बाहर क्या है इसकी उन्हें सुध नहीं होती। इसलिए विरोध न करो तो उनसे चाहे जो करा लो।) (पृष्ठ ५५)
- रुढा लक्षणा
- १८ (वह क्षणभर मुझे देखती की देखती रह गई। मानो विधी हरिणी हो। बिधकर ही बाधिन बन बठी हो, लेकिन हो प्रकृत हरिणी।) देखते देखते सहसा वह फिर बही (घप से) अपनी कुर्सी म (बठी से अधिक गिर आई) और सामन गूँथ म (निगाह गाड दखन लगी)। (पृ० ५६)
- (१) साध्यवसाना गौणी लक्षणा
—(२) भावयजना
- १९ उन्होने (हवा का थप्पड़-सा मारते हुए) कहा। (पृ० ६४)
- विशिष्ट पद रचना

- २० इस पर (डाक्टरनी मा)^१ ने एकदम बढकर छात्री का उठा लिया। उस तूमरु कह्या—तू तो पगली है। (स्वग मे क्या सब रह सक्ते हैं ?)^१
(प० ७०) (१) सारोपा गौरी लक्षणा
(२) वस्तुव्यजना
- २१ उा दिना का सीधा-सा ब्रजपाल और क्रातिसाल !—Red Revolutionary ? वाह, यह भी अजब तुव हुई ! (प० १०३)
—विशिष्ट पद रचना
- २२ साधु का अकेला भी छोडा जा सकता है पर अभियुक्त को परित्यक्त रखना फाड से फाहे को उतारकर उस उघाडा रखना है। (प० १०६)
—रुडा लक्षणा
- २३ मुझे उन बातों को सुनकर कष्ट होता था। (जसे भीतर से कोई प्राण उलीच कर बाहर कर रहा हो। भीतर सब रिक्त हो जाए तो क्या लेकर टिका जाएगा ?) (प० १११) —प्रयोजनवती लक्षणा
- २४ लेकिन उन्हाने अपने दानो हाथो स मेरे दाहिन हाथ को पकडा और उस बार-बार अपन माथे से छुभाते हुए वे उसी तरह (तार-तार आसू रोती रही।) (प० १२०) —रुडा लक्षणा
- २५ एक (कहण मुस्कराहट क भाव से)^१ (उनका चेहरा पीला पड गया।)^१ (प० १२८)
—(१) विपरीतलक्षणा
—(२) रुडा लक्षणा
- २६ लेकिन मेरी (शरकत म शक हाने की कोई) उहे (बजह) मिली है ? (प० १३३) —विशिष्ट पद रचना
- २७ रह रहकर मुझे प्रीमियर कल्याणा और डाक्टर असरानी क चेहरो का ध्यान होता था। (डाक्टर का चेहरा ईर्ष्या के योग्य जान पड रहा था। इतना उल्लास इतना आनंद।)^१ (कल्याणी मिट्टी-सा पीली थी। शरीर की किंचित् असमथता तो ठीक पर इसके अतिरिक्त मन ही उसका खिना न लगता था।)^१ (प्रीमियर वय प्राप्त ऐस बालक की भाति दीखे जिसके सपने और खिलौन सब खा गए हैं लेकिन जो जानता है कि वह वय प्राप्त है इससे दुखी नहीं दीख सकता।)^१ (प० १३७)
(१) भाव-यजना
(२) रुडा एव प्रयोजनवती लक्षणा
(३) सारोपा गौरी लक्षणा
- २८ तवियत के फिटस। (प० १४६) —विशिष्ट पद रचना

२६ (नका के ब्यारे पूर थे ।)

(नका सब ओर स सही है)', इस बारे म डाक्टर को किंचित् सदेह न था । (कलख एक यही थी कि कल्याणी का मन नहा मिलता है) ।
(प० १५२) —(१) साध्यवसाना गौणी लक्षणा

(२) ऋत लक्षणा

३० मैं याद करता हू कि (वह विदा कितनी भोगी थी ।) पर यह अतिम भी हागी इसका अनुमान हाता ता—(प० १६६) —भावव्यजना

उपन्यास मुखदा

१ समय खाली रहता है और उसके (गूय विस्तार पर मर ही जीवन की व्ययता यहा स बहा तक लिखी जान पडती है ।)' (विधि के उस दुल्लेख को अपनी आखो मे देखते देखकर जीना भारी हो जाता है ।)'
(प० ३) —(१) सारोपा गौणी लक्षणा

(२) साध्यवसाना गौणी लक्षणा

२ आज यद्यपि मैं जानती हू कि मुझे छोड और कुछ भी नही विगडा है, वही गृहस्थी सहलहाती हुई आज भी जुड सकती है पर हाय मैं उसी के योग्य होती तो—(प० ३) —अभिधामूला गादी व्यजना

३ इस समय आकर (कब की पकी हुई मेरी धारणाए)' (अस्त घ्वस्त हा गई हैं)' (प० ८) —(१) वस्तुव्यजना (२) विशिष्ट पद रचना

४ पर उस समय बहा तस्त पर बडे-बडे जसी (हिंस्र भावनाए लपट दे दकर भीतर सुलग आड) आज उनका विचार कर भी वाप जाती हू ।
(प० २१) —सारोपा गौणी लक्षणा

५ सावजनिक जीवन म म्त्री जल्नी ही (बह सकती है) क्याकि वह (अस्वीकृति कम पाती है ।) (प० २६) —वस्तुव्यजना

६ उन बातो (हरीश की बातें) मे मुझे कुछ भी पकडने योग्य नही मिलता था फिर भी वे जाने (मेरे भीतर के किस तार को) छू देती थी कि एक (विचित्र स्वर की भकार) मेरी आत्मा के भीतर भरने लग जाती थी । जी होता था (अपने ही को तोडकर ऊपर आ जाऊ) सबको इकार कर दू और बह दू कि मैं नही हू मानवी (मैं स्वप्न होना चाहती हूँ ।) स्वप्न की भाति उज्ज्वल । उसी की भाति अन्त्य और उसी की भाति सब-कुछ और कुछ नही । केवल मात्र एक चेतना, एक गक्ति एक जागृति, एक ज्योति एक सकल्प । (प० ३६)

—सारोपा गौणी लक्षणा

७ (यन म कम ज्यादा नहीं होता, सब बड़ा हाँस होता है ।)¹ (यहाँ का सत्य त्याग है हिंसा नहीं ।)² (प० ३८)

—(१) साध्यवसाना गौणी लक्षणा, (२) वस्तुयोजना

८ जा (ठीक ठाक शब्द मेरे मन म बंध चुके थे, इस समय खो गये । उन्हें पकड़कर फिर वापस लाने के प्रयत्न म, क्षण भर के लिए मैं और खो गई ।)³ (बहु क्षण भारी हो गया ।)⁴ (प० ४५)

—(१) प्रयोजनवती लक्षणा (२) रुढा लक्षणा

९ मुझे लगता है कि तुम सब मुझ पर छोड़कर खुद (शहीद का बाना) घर लेते हो । ऐसे मैं अपराधिन बन जाती हूँ । (प० ४७)

—वस्तुव्यजना

१० इस कमरे का मैं किसी तरह समझ न सकी । (प० ५२)

—उपादानलक्षणा

११ मानो उनकी (स्फूर्ति म द्युत की ताकत थी ।)⁵ (समय उन पर एक न सक्ता था न वह क्षण पर रक्ते थे ।)⁶ मुझे (अपन आपे मे होने का सुभीता)⁷ ही उनके साथ न हुआ । (प० ५६)

—(१) प्रयोजनवती लक्षणा

(२) वस्तुव्यजना

(३) विशिष्ट पद रचना

१२ अक्सर मैंने देखा है कि (मन का प्लाज हाथ म है ।)⁸ (हाथा को काम म डाला नहीं कि देबा और भटका मन स्वस्थता पाने लगता है ।)⁹

(प० ६१)

—(१) लक्षणा लक्षणा

(२) प्रयोजनवती लक्षणा

१३ उस समय नए सिर स मालूम हुआ कि गली म इतने अदर आकर मेरा घर है और यह ज्ञान मुझे अप्रीतिकर हुआ । (प० ७०)

—भावव्यजना

१४ तुम दिन भर (कम पिसते हो क्या कि और खटन की साचते हो ?)

(प० ७२)

—रुढा लक्षणा

१५ अगर स्पष्ट की जरूरत हो तो हमारे लिए लक्षपति हैं, करोड़पति है जो पैसे पर बड़े उम सेते रहते हैं । वह हमारा ही काम करने है कि पस को गर्मी देकर बढ़ाते रहते हैं । (प० ७७)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

एव वस्तुयोजना

१८२ जनद्र के उपयासा का मनाविज्ञानपरक और गौलीतात्त्विक अध्ययन

१६ (स्त्री को राह दना उस न सममना है ।)' (गनि वह उत्तनी नही चाहती जितना स्वीकृति चाहती है ।)' (प० ८६)

—(१) अभिधामूला व्यजना

(२) प्रयोजनवती लक्षणा

१७ ऊचे चढन म स्वाद तभी तक है जब कुछ नीचे रह । नीच वाला की आर स भला कहा ता क्या कहागे ? यही तो कहना हागा कि य ऊच हृदयहीन हैं कि हमारे सिर पर चढ है । (प० ६५)

—रुढा लक्षणा एव प्रयोजनवती लक्षणा

१८ वह चहरा उठा । आखें मरी और हुइ आमुघा स धुनी व आखें । और मुह पर तज्जा स लाल एक फीकी आकुल तृप्त मुस्कराहट ।

(प० १०४)

—रसव्यजना

१९ उस समय मालूम हुआ कि पुरुष दुदम और दुदप कभी कितना निरुपाय है—और ठीक उसी समय स्त्री अबला और असहाय, कितनी सभम और समय है । (प० १०४)

—वस्तुव्यजना

२० तब अनुभव म आया कि (व्यवहार नाम की बीज म कितनी धार है कितनी क्षमता है । वह दा को मिलाती है, उह अलग और बटा भी रखती है ।) देखा कि जैसे दा तट है वह उधर है ता में इधर । बीच म व्यवहार है जो तटा का जोड रख रहा है । पर क्या जोडे ही रख रहा है अलग नहीं रख रहा ? (प० ११०)

—वस्तुव्यजना

२१ मैं साचन लगी कि क्या जहर है ऐसा जो कामल का क्लुषित कर देता है और मीठ का तीखा । तरल वय का यह प्रभात (पात्र विनेप) कसा नभ और सौम्य प्रतीत हुआ था । (प० ११८)

—विपरीतलक्षणा

२२ सब मुझे बिसर गया । अपनी (मरी निजता भी मेरे भीतर भोगी और ढीली हा आइ ।) (प० १२१)

—भावव्यजना

२३ स्वामी न अपने और मेरे बीच उसी (असम्बन्ध के सम्बन्ध को रखत हुए) कहा—नही सुखदा यह बात नही । (प० १३६)

—विपरीतलक्षणा

२४ मैं (पत्यर बनी कुछ भी नही कर सकी ।) (प० १५५)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

२५ (आदमी हमारा खयाल नही है ।)' वह मुट म कुछ है वह सदेह है (कल्पना ही विदेह ही सकती है जा उबती जाय और धरती का न दूए ।)' (प० १५६)

—(१) लक्षणामूला गौणी व्यजना

(२) सारोपा गौणी लक्षणा

- २६ मैंने मानो (निहोरे लेते हुए,) उस समय उनसे कहा—डर मुझे तो है लाल, वे तुम्हारे शत्रु हैं। (प० १६८) —भावव्यजना
- २७ लगा नसे (जान क्या ऊपर से छूट गया) है।) (सामने से हट गया है, भीतर से खुल गया है।) मानो मैं हल्की हो आई, (जसे मीठी घूप म लजाती, खिलती इठलाती, हल्की-फुलकी बदली हाऊ।) (प० १७४) —(१) भावव्यजना
(२) अलकारव्यजना
- २८ आसपास की भाडिया (जीती और दुवक्ती-सी) लगती थी। (प० १७६) —उपादानलक्षणा
- २९ (गाधी की आधी) उससे छोटी चीज नहीं है। (प० १७७) —वस्तुव्यजना
- ३० मैं अपने इन स्वामी को बैठी देखती रही (जो खेल म मोहरे ही बन सकते हैं कि जिनसे दूसरे खेलें।) (प० १८८) —लक्षणामूला व्यजना
- ३१ पर आस इतना था कि आस देकर ही बन पा सकती थी। (प० १९९) —भावव्यजना

उप-यास विवत

- १ गद्व जसे मोहनी कह नहीं फेंक रही थी। (प० १०) —भावव्यजना
- २ उसका चेहरा जसे अनबूभ और अधेरा हा आया। (प० ११) —भावव्यजना
- ३ लेकिन बाद कि तुम्हारे मन म प्रेम हो सकता जा फाक न रहन देता। (प० १५) —भावव्यजना
- ४ गाडी से अलग पर क नीच उसने धरती पाई। (प० १६) —भावव्यजना
- ५ इसने सपनों का साथ पकडा। इसी का शायद प्रतिभा कहत हा। यही शायद फिर पागलपन हो। (प० ३९) —विशिष्ट पद रचना
- ६ कहनी हुई मोहिनी माना तरती-सी बहा से चली गई। (प० ५०) —साध्यवस्ताना गौणी लक्षणा
- ७ जितन के मस्तिष्क म तेजी से एक पर एक सपकते हुए से विचार घूमत रहे। वह उन्हें पकड नहीं पाता था। उह अलग-अलग नहीं कर पाता था। लेकिन वे विचार नहीं थे, उनका कोई आकार नहीं था, उन पर देखाए नहीं थी। रूप था, पर वह बनना नहीं था कि मिट जाता था। अनेकानेक रूप आपस मे गुथ मिलकर अरूप बन जात थ और मिर मे दण पदा करन के सिवा और कुछ न कर पाने थे। (प० ५३) —भावव्यजना (इसे विशेष व्यजना कहना अधिक समीचीन होगा।)

१८४ जनेत्रक उपयासा का मनोविज्ञानपरक और गलीतात्त्विक अध्ययन

८ इस योगायोग को वह अपने जीवन से तनिक भी सम्बद्ध नहीं देखती। वह एक ऐसी जानकारी है जिस जानना जरूरी नहीं। (प० ५५)

—अभिधामूला व्यजना

९ बाईस वष की युवती के पास अपना इतिहास भी हा सकता है। सद्य वतमान के पीछे काफी-कुछ अतीत भी हो सकता है। (प० ६६)

—वस्तुव्यजना

१० कुछ काल तो माना कि जस सस्कृति का प्रभाव है और सद्य रह फिर वह सस्कृति का प्रभाव उह प्यारा लगने लगा और वह उसने नीचे बालक बनने लगे। (प० ७५)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

११ उसन पाया कि एक जगह आत्मी कितना बंदस है।^१ वह किनार ही खडा दखता रह सकता है दूसर की बेदना का तनिक भी छू नहीं सकता जान नहीं सकता है। वह वस्तु जो भीतर स ताडती हुई व्यक्ति का निरु पाय निस्सहाय कर देती है, किसी तरह हाय नहीं आती।^२

—(१) भावव्यजना

—(२) वस्तुव्यजना

१२ मेहमान साहब को बोलो मज पर चाय और बीबीजी याद करती हैं। (प० ६३)

—उपात्तनलक्षणा

१३ आपकी यह उजलपोशी एक निगाह म काली पड सकती है। (प० ६५)

—वस्तुव्यजना

१४ नस या कुछ अलग और विचित्र थी बहद पावन पर बेहद बंद। उसकी आर्त थी जवान न थी। यह बात कि स्त्री क जवान न हो सहसा विश्व सनीय नहीं है पर इस नस क बार म यह विश्वास करना ही पडता था। आखा से देखती थी कि मरीज मरीज नहीं है कही कुछ अतिरिक्त भी है। उस अतिरिक्त म वह नहां उतरना चाहती थी। लेकिन वह अतिरिक्त खुद उसकी आखा पर ऐसा आकर पडता था कि अपने का उघाडना ही चाहता हा। (प० १०७)

—भावव्यजना

१५ भीतर उसके गहरा कष्ट था, जस मुक्का मारकर उसके भीतर का कीमती कुछ तोड दिया गया हो। (प० १११)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

१६ घोर घाज तुम भी देवागना दीसती हो। जम बदन नहा जानता बल्कल ही जानती हो। (प० ११३)

—सारोपा गौणी लक्षणा

१७ पुलिम तुर है। अन्दर-ही अन्दर भेन पियो रही मानूम हाता है। (प० १२४)

—रूढ लक्षणा एक प्रयोजनवती लक्षणा

- १८ तीनों को लगा यह पुरुष जसे स्वप्न में समाविष्ट है। दुर्जय हो और दुर्जय (५० १२५) —विशिष्ट पदरचना
- १९ जाने कौन थी स्नानी। बदसलूकी की शिकायत लाइ होगी। मैं सब जानता हूँ, इन दस घाट की पानी पीनेवालीको को—सीजिए चलिए चलते हैं? (५० १५३) —लक्षणाभूला व्यजना
- २० देखिए आप गए तो मालूम हुआ कि मैं खफा हूँ और आप भी खफा गए हैं। खफगी, वह इन पर उतरी। (५० १५६) —विशिष्ट पदरचना
- २१ तिनी ने सक्षिप्त-सा विस्तर तल्ल पर फला दिया। (५० १७४) —विशिष्ट पदरचना
- २२ वह कुछ देर हवा पीता वहा खडा रहा। (५० १७८) —साध्यवसाया गौणी लक्षणा
- २३ तिन्नी जानती न थी पर अनुभव करती थी इससे सोते म भी वह जागती थी। यह आदमी उसके लिए है ताबीज जिसके अदर जतर बर होना है। (५० १८४) —सारोपा गौणी लक्षणा
- २४ चडडा आए तब पति पत्नी म कही बारीक भी व्यवधान नहीं रह गया था। (५० २२३) —विशिष्ट पद रचना जो भाव व्यजना का भ्रम उत्पन्न करती है।
- २५ बारह हजार रुपए। यह तो भरपूर न हुआ गिनती हुई। तेरह नहीं है प्यारह नहीं है, जो दोना के बीच म है वह बारह है बात क्या है माहिनी ?
मोहिनी ने कहा सुनो एक तिनी है। वह साथ तो नहीं आई, क्याकि तुमसे पूछना था। कहागे तो सवेरे वह आ जाएगी बगालिन है, सोने की मूरत समझो होगी बीस बाईस की और बारह लडके हैं। नरेश हँसे—भइ बगाली भी खूब होने हैं बीस-बाईस बरस और बारह लडके।
बहकर नरेश बहकहा लगाकर हँसा—मोहिनी भी अपन को राक न सको, खुलकर हँस आई।
आपके जितेन साहब की फौज है ? मानता हू, खासा रिक्काड है।
- * * *
- ता यह हिस्साव है। बारह लडके बारह हजार ता उन द्वादशमाहिनी जगद्धात्री माता का—क्या नाम बताया आपने ? (५० २२५)
- रसव्यजना

उपन्यास दृश्य

- १ वह मेरे रोम रोम गिरा गिरा को बघ रहा है । क्या इस पतालीस वष की अवस्था में यही अनुभव करूँ मैं कि मैं व्यतीत हूँ ? (प० ५)
—प्रयोजनवती गुद्धा सारोपा लक्षणा
- २ तब कविता मन में फूटी और कागज पर उतरी और नय नाम की आठकर में जयन्त बना । (प० ६) —वस्तुव्यजना
- ३ मेरी स्वावलम्बिता कही निरी स्व रति ही तो नहीं है । (प० १२)
—वस्तुव्यजना
- ४ घर उस कोठरी का नाम था जो बट यत्न के साथ हाथ आई थी । मेरे वतन का और दिमाग का तिहाई भाग खाने भी सुधरता न सीख पाती थी । कला उस पर उतारता और विमान उस पर खचता लेकिन उसकी दीवारा पर स पपडिया गिरनी बन्द न होती न सील भागती न दुग्ध जा पाती । वही एक दिन क्या देखता हूँ कि लकड़क लिवास में अनीता आई सड़ी है । (प० १२ १३)
—वस्तुव्यजना
- ५ सारा दफ्तर दिप उठा और चौककर रह गया । यह उसने क्या किया । सादगी से क्या नहीं आया जा सकता था ? तब मेरी राह में काटे तो न बिछने । (प० १५)
—(१) उपादानलक्षणा
—(२) प्रयोजनवती लक्षणा
- ६ दूमरे की कृपा के सिवाय कवि के पास जीने का और उपाय नहीं है । और यह कृपा का जो उपाय है वही उसकी परीक्षा है । (प० २२)
—वस्तुव्यजना
- ७ आजादी दूर से जाने क्या थी पास आई तो बड़ी वीरान चीज मालूम हुई । (प० २३)
—अभिधामूला गाब्दी व्यजना
- ८ सामान आ गया कितने लगे गइ मकान खिल आया । (प० २५)
—उपादानलक्षणा
- ९ इरियारेन्स एजेमिया स्टाक गेयर मिस्टर पुरी का बहना है कि पसा तो बहता है लेने वाला चाहिए । (प० २६) —वस्तुव्यजना
- १० जवान किन्तु जिन्गी के पास हाते हैं और नीति नियम से दूर । इससे कविता के पखा पर बठकर मर्यादा की लकीरा को लाध जाना उन्हें उतना बठिन नहीं होता । (प० ३० ३१) —वस्तुव्यजना
- ११ वान यह है कि वह सुन्दर है और उससे आमदनी होती है और आमदनी कस्तुरी का अच्छी गतती है । (प० ३१) —वस्तुव्यजना

- १२ लेकिन दादा शकल देखते ही मुझे मारने लग जाते हैं। ठीक है, मुझे ही न मारें तो जायें क्या? दुनिया जो उन्हें मारती है। (प० ३२)
—भावव्यजना
- १३ तन मिट्टी ही तो है। शास्त्र बताते हैं कि वह अपना नहीं है। क्या बुधिया ने इसी मम को पाया है? उसका तन उसका नहीं है जैसे उसका छोड़ सब का हा। (प० ३२)
—वस्तुव्यजना
- १४ विवशता आखिर आखो म आसू ल आई और वे ढलघते हुए उसकी मूछा पर बूद बनकर अटक आय। (प० ३३) —प्रयोजनवती लक्षणा
- १५ सुमिता ऊंचे घराने की थी स्वच्छन्द थी। पढ लिख गई थी निषेध को निषिद्ध मानती थी। पर पसे की प्रचुरता और पढाई की अधिकाई कुछ बरे थी तो वह कन्या ही। (प० ४०)
—वस्तुव्यजना
- १६ धरती इधर बिछी बठी है, महाशय उधर आसमान म ताक्त है। सब स्वाति की बूद चाहते हैं, जैसे आसमान को यही काम है। कवि महो दय, धरती की और भी देखिए। (प० ४६)
—भावव्यजना
- १७ सब एक-साय भुगताऊगा। अनिता होता रहन दो जमा। सच जानो मेरा बडा एकाउण्ट है वहा यम के घर मे। (प० ४६) —वस्तुव्यजना
- १८ समय भारी हो आया जैसे सरकना भूलकर जम आया। जैसे चट्टान हो अनिता भी जस जमी शिला हो। (प० ४६ ५०)
—सारीपा गौणी लक्षणा
- १९ चन्द्रकला को देखा है। जीवन बहा ज्वार पर है। ठाठ पर ठाठ देकर लहरें आती हैं और उस पर फेन-सा विभेर जाती हैं। बडी कमनीय है। यह भी देखता हूँ कि सहसा वह शान्त है। उसकी प्रवृत्ति के लिए यह काफी सूचक है। गायद नीचे भयकर कुछ हो। पाल उठाए जीतती बढ़ती चली आई है ठोकर कही नहीं आई। (प० ५५)
—(१) प्रयाजनवती शुद्धा सारीपा लक्षणा (२) वस्तु व्यजना (३) रुद्धा लक्षणा एव साध्यवसाना गौणी लक्षणा
- २० अब आवाज उसकी काप आई थी, जैसे लोहा तपकर पानी हो रहा हो। पर मेरा क्रोध मुझमें पत्थर हुआ पडा था। मैंने लपक कर अटची को हाथ मे उठाया। (प० ६७)
—भाव व्यजना
- २१ क्षण ही आकृति के सौंदर्य को भाव का सौंदर्य द जाता है। आकृति का तब शरीर के साथ चली जाती है लेकिन जो शरीर म है नहीं, सिर्फ भाव को दर्शाने के लिए रूप मे रखा ल उठी है वह वस्तु सहज ही कैसे चली जा सकती है? वह मन पर टहर जाता है और घोवा उस मुस्कि न हाता है। (प० ६६)
—भावव्यजना

२२ शक्ति विचारी शुद्ध की ही पत्नी है—सामाय नहीं धमपत्नी। पत्नीत्व पुराना हा जाता है तो स्वयंवर के समारोह का फिर ठाठ होता है। (प० ७०) —अलकारव्यजना

२३ अनिता की दशता माननी होगी। परिवार उसक पास कम नहीं है। ऊँचे घर की मर्यादा है। उसम से समय और युक्ति निकालकर मुक्त जगली को पालतू बनान की चपटा म चली जाती है। (प० ७३) —वस्तुव्यजना

२४ उदिता के सत्याग्रह और हत्याग्रह म फक न रहा। देखकर एक क्षण ता जी हुआ कि चट्टी न जाती हो, तो भी उस भेजकर रहना चाहिए। पत्नी न हुई बला हुई। पत्नीत्व का क्या कुछ इजारा है? पर धमशास्त्र कुछ हा व्यवहारशास्त्र स्वयं अपन नियम बना लेता है। यो भी नियम पायी क कहा प्रकृति के चलते हैं। (प० ७५)

—(१) रसव्यजना (२) वस्तुव्यजना

२५ आदमी म भगवान ही ता है जो करता है। वह भगवान विचारा आदमी की मुट्टी म होकर चाह तो गतान बनने तक तयार हा जाता है। आदमी मुट्टी छाड दे तो मालूम हो कि कुछ उसे भव करन को नहीं रह गया है कि सीधी राह सामन हो आई है। चट्टी न गायद अपन को किसी सकल्प की मुटठी म बाधा था। हाथ की उगलियाँ कही उसने देने को खोली, और मुटठी कही न रह गई। (प० ८२)

—वस्तुव्यजना

२६ जस हर सभावना स भरा क्षण मडरा भाया हो पर हम उसक नीच अपनी (अपन) हठ म जड बने रह गये हो (प० ८४)

—विगिष्ट पदरचना

२७ स्त्री का तुम्हार लिए यही मूल्य है कि वह बोझ है? कवि बनते हो! क्या नहीं कहते कि निरे अभिमान के पुतले हो? हो तो रहो! फिर क्यों सामने आते हो? चलते वक्त सोचा था कि जा रही हैं और छुट्टी हुई। लेकिन क्या पीछे पड हो। हैं ऊँची तो हैं। वस? (प० ८८)

—भावव्यजना

२८ लगता है भगवान अनिता स पूछ-पूछकर कहा करता है। न करे मैं ता उसम पूछ कर ही करुगा। लेकिन क्या अनिता को बीच म डालकर मैं उस भगवान नाम क अहरी क चगुन स बाहर जा सकता हूँ जिसने भाग्य के जाल को फलाकर हम सबकी सब चेपटा जामनाया को सत्ता क निण अपने घेरे म घेरकर निर्दिष्ट कर रखा है? (प० ९०)

—(१) विगिष्ट पदरचना (२) वस्तुव्यजना

- २६ माडन मासल-टाइप चाहिए मेरे लिए तो भाई। अब ता वही जिन्दगी है। (प० ६२) —अभिधामूला योजना
- ३० ओह। यह बात है। इतने घायल हो। मैं नहीं समझती थी जयंत, कि तुम्हारा यह हाल होगा। क्या कर दिया है चुड़ल न दो दिन में ? (प० ६२ ६३) —(१) वस्तुयोजना
(२) रुढा लक्षणा
- ३१ कश्मीर में कश्मीरी भी बसते हैं। उन्हें अबकाश ही नहीं कि मालूम कर पाए कि कश्मीर सुंदर है। बस भर मेहनत करते हैं और तन पालते हैं। फुरसत मिल पाई तो कपडों में से जुएँ धीनत हैं। (प० १०६ ७) —वस्तुयोजना
- ३२ रूप उसके पास है और यौवन और गव और सकल्प और इस सकल्प के नीचे वह जो मूल है धन। (प० १०७) —वस्तुव्यजना
- ३३ कवि हो तुम्हें आकाश की चंद्रिमा चाहिए फिर ब्याह क्यों किया किया था तुमने इस धरती की चंद्री से ? (पृ० ११०) —वस्तुव्यजना
- ३४ बाल बच्चों से भरी खिली सुंदर गृहस्थी किस स्वर्ग से कम है ? (प० ११४ १५) —उपादानलक्षणा
- ३५ अपने को जलाए बठे हो, दूसरों को जलाने क्यों बैठ गए जयन्त ? (प० १२१) —हृदा लक्षणा
- ३६ दुहाई है मानव की इस अग्रम रचना युद्ध की। वह सहस्र सहस्र को काम देता है कारण देता है कि वे जूझें, मारें और मरें (प० १२८) —वस्तुव्यजना
- ३७ मैं अकेला होता हूँ, नींद आती नहीं तब कागज खींचकर उधे पसिल से चीय देता हूँ। (पृ० १२८) —वस्तुव्यजना
- ३८ क्या खेल है कमबख्त उसका जो नेपथ्य से किसी तरह निकलकर बाहर आता नहीं है। या उस विज्ञान का, जिसे न मारने में रचि है न बचाने में बस जो अपनी कृतकृत्यता की राह में नए-नए आविष्कारों से लाखों को मारता और सहस्रों को बचाता चला जाता है। (प० १३०) —वस्तुव्यजना
- ३९ श्रीमती नीला बघावर को अपने डनों में मुझे ले लेने में कोई दिक्कत न हुई। बहादुरी का तमगा अब भी मेरे पास है लेकिन कहीं न रही, मेरी कप्तानी और मदुमी। आखिर मरीज का मतलब यह तो नहीं है कि वह कुछ रहता ही नहीं बस गीली मिट्टी हो आता है। (प० १३८) —भावव्यजना

- १६० जने- व उपयासा वा मनाविमानपरक और शलीतात्त्विक अध्ययन
- ४० प्रण किया था कि मर जाऊगी पर तुम्हारी राह बाटने नही आऊगी ।
(प० १४१) —रूढा लक्षणा
- ४१ कपिला के प्रश्न ने जस दश देकर मुझे चौंकाया । (प० १५०)
—सारोपा गौणी लक्षणा
- ४२ मनुष्य की क्षमता सचमुच अगाध है । वह दुष्ट हा सकता है सत हो सकता है, और दोनो एक साथ हो सकता है हा सकता नही है ।
अपने हर क्षण हर सास म (प० १५४) —वस्तुव्यजना
- ४३ मालूम नही, कितनी सहस्रावधिया बीत गई । लिहाफ के नीचे पड मुझ मुर्दे पर स वे बीतती ही चली गई कि चिडिया की चहचहाहट काना म आई । दिन अब जगन को था । शायद ऊपा फूटेगी उजाला आएगा और सूरज आएगा और अघेरा बट्टणा । (प० १५७)
—उपादानलक्षणा
- ४४ उसकी आलो म जमे दुनिया भर का अचभा जम आया । (प० १६१)
—भावव्यजना

उपयास जपवधन

- १ वह उन दशा म नही है जो इतिहास म रहते हैं । जस यह अकाल मे रहता है । काल का इतिहास उस पर से हाता जाता है । (प० ६)
—वस्तुव्यजना
- २ यहा का विस्तार उह समा गया । उनका दप और बल सुतकर यहा की घरती म हवा म, पानी म खिच रहा । (प० १०)
—प्रयोजनवती लक्षणा
- ३ शान्त म वेग उतना ही था जितनी स्थिरता, उच्छ्वास जितना विश्वास । गौरव था यदि उनम तो अहतावग नही निष्ठा का । वाणी म गर्वोक्ति उतनी न जान पडी जितनी व्यथा और वेदना । (प० २०)
—वस्तुव्यजना
- ४ सब मिलते हैं इसमे अपने से मुलाकात का मौका ही नहीं आता ।”
(प० २१) —अभिधामूला व्यजना
- ५ ‘ मैं देखता रहा, गति म वेग था पग फिर थे । दृष्टि कसी और सीपी थी ।’ सब म एक भव्यता और शालीनता थी, जस सब स्वस्थ हो । नाटक कहीं न हो !’ जो हो गहरे तक मयाय हो ।” (प० ३१)
—(१) प्रयोजनवती लक्षणा
—(२) वस्तुव्यजना

- ६ 'ठीक है आचाय को ऐसे ही ऊंचे टांग रखना ठीक है।' (प० ४०)
—लक्षणा मूलक व्यजना
- ७ "कहकर उहाने बल की भांति अपना चरखा पास खींच लिया। देख सका कि वह यत्र सधा आयुध है अच्छा शरण स्थल है।" (प० ४५)
—प्रयोजनवती लक्षणा
- ८ 'और सचमुच मैं देखता हूँ। यह दिन अंतिम है। आगे वहाँ जाना न होगा। द्वार बंद है, इसलिए नहीं। पर जैसे उधर गति ही निपिद्ध है।' (प० ६०)
—लक्षणा लभणा
- ९ क्षण के लिए वह चुप रहे जैसे मेरे प्रश्न को स्तब्ध खड़े रहने को कह दिया गया हो।" (प० ६८) —सारापा गौणी लक्षणा
- १० 'मेरे प्रति पहले से वह बंद हैं। आएंगे, तो बंद आएंगे। जैसे अपने ध्यूह की सुरक्षा में होकर मुझसे प्रहार भागते और प्रतिप्रहार देना चाहते हों।' (प० ११५)
—वस्तुव्यजना
- ११ 'यह भी जानता हूँ कि इला का योग अनासक्त नहीं है। बल्कि मुझे ऊंचा पाकर उसको अपने में मुख मिलता है। (प० १२३)
—लक्षणा मूला यजना
- १२ 'बाणी म कसी एक कॅंपकॅंपाहट थी जैसे वह आत हो। भीतर तक मुझे वह घीरती हुई चली गई और मैं गडो रह गई।
फने हाथ मेरी ओर आते ही गये और प्यार से बिगडा मेरा यह नाम 'इती पछाडों पर पछाड खाता गूज गूजकर मेरे कानो के परदा पर पडता मेरे समूचेपन में रमता चला गया।' (प० १२६) —रसयजना
- १३ 'वजन करती ही मैं अपेक्षा में रही कि कोई होगा जो मेरी 'नहीं' नहीं सुनेगा और मुझे ले ही लेगा। इस अपेक्षा को ही 'नहीं' में बोह राती चली गई हाथों के वजन से तानेवाले को हटाती और बुलाती चली गई। (प० १२६) —भावव्यजना
- १४ वह बोली यह बिल्कुल प्रेम कहानी नहीं है। प्रेम में फुरसत होती है। जय को उसका अभाव रहा है। छीनकर कभी वह फुरसत निकाल भी सके हैं तो भट फिर काम में उन्हें वापस छीन लिया है। प्रेम नायक अवकाश का व्यापार है, लेकिन ' (प० १४०)
—वस्तुव्यजना
- १५ "गब्द मुझे बड़े थे, पर कहनेवाले से आकर उनका भाव मुझे सवधा अगोचर न रहा।" (प० १५१) —प्रयोजनवती लभणा
- १६ स्थिति को लिजा ने हाथ में लिया।' (प० १५५) —उपादानलक्षणा

- ३० 'पुरुष कोई नहीं है, जिसकी कुजी हम स्त्रियो के पास न हा ।'
(प० ४१३) —वस्तुव्यजना
- ३१ ऐसे बोला जसे बरण मे अपने को पाकर पूछ रहा हो ।'
(प० ४२०) —प्रयोजनवती लक्षणा
- ३२ "बात जाने किस दूर से आई । मुझे उसकी आहट मिली, अथ कुछ भी नहीं मिल पाया ।" (प० ४२०) —लक्षणा लक्षणा
- ३३ वह भी सम्मिलित हो सकते हैं कि-तु किसी क स्थान पर का प्रश्न नहीं है ।" (प० ४२८) —विशिष्ट पद रचना

उप-यास मुक्तिबोध

- १ बेटे-बेटी दुनिया मे अपनी तरह स जियेगे । जमाई लोग अपने बूते बढेंगे । मैं सीडी नहीं हू कि पर रखकर मुझ पर चढा जाये ।
(प० १४) —प्रयोजनवती लक्षणा
- २ मौका नाजुक होने पर केलि विनोद म जरा उसको बहला भर लिया करता था नहीं तो घर गिरिस्ती के सामान असबाब से ज्यादा किसी तरह नहीं मानता था ।' (प० १६) —वस्तुयजना
- ३ व्यक्तित्व को किसी हालत मे कीमत मे नहीं लिया जा सकता । लेकिन यह सारा तकनिष्ठ भाव किसी तरह भी मेरे भीतर सिर नहीं उठा सका ।' और मैं अवसन रह गया, यह अनुभव करके कि पत्नी ने स्वय मे निस्स्व बनकर मेरे स्व को ऐसा पराजित कर दिया है कि मैं कृत शता मे भीग उठा हूँ ।' (प० १७) —(१) रुढा लक्षणा
(२) सारोपा गौणी लक्षणा
- ४ 'अभी तो अनी के दिन हैं । कुछ-का-कुछ हो सकता है । खेल का मजा तो अभी है ।' (प० १८) —रुढा लक्षणा
- ५ 'हम सबको जमीन पर छोडकर तुम उडने की जो तयारी कर रहे हा बुनियाद ही नहीं रहने वाली है, तो ऊपर चिनाई की बात क्या सोचना है ।" (प० १९) —रुढा लक्षणा
- ६ ऐसे पन्द्रह बरस से इट इट जोडी गई इमारत ढह जाती है ।
(प० २३) —रुढा लक्षणा
- ७ 'अरे भई पालियामेट म क्या होता है, बस दो चार-बरस उछल कूद करने का मौका मिल जाता है । बाहर के लोग देखते रहत हैं कि हमारा आत्मी क्या कर रहा है । इस तरह नकेल तो बाहर हम लोगो के हाथ ही रहती है । नहीं तो जनतत्र के माने कुछ नहीं रह जाते हैं । (प० २४) —रुढा लक्षणा

- ८ यह सतपना मत आप्ना सहाय, खता खायाग । यह औरत जो दिखती है, वह नहीं है । (५० २७ २८) —वस्तुव्यजना
- ९ प्रताप चल गये और जान का ढग मुझे उनके याग्य नहीं मालूम हुआ । सदन म कुशल चर्चाकार माने जाते हैं । यह क्या कि खुलकर इस तरह अपनी अरुचि बखेर गय ।' (५० २८) —वस्तुव्यजना
- १० 'ठाकुर मर राजनीतिक जीवन के इतिहास म बुनियाद की तरह अनि वाय रह हैं उन्ही क प्रति दुलक्ष मुझस कम हा सका । गायद राज नीति म यही हाने लग जाता है । उपयोगिता की बेदी पर हार्दिकता को इन्सान कुर्बान करने लग जाता है । (५० ३१)
- रूढा लक्षणा
- ११ 'तुम, हुकुम तो मिनिस्टर जसा चला रहे हो । कल शाम सचमुच बन आय हा क्या ? (५० ३२) —लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना
- १२ ' बल्कि पद्रह-बास रोज के लिए आप भी हमारी तरफ आ जाइये । फिर यह निबट्टेगे अपने अतरजामी से । पूरी फुरसत से आत्म ध्यान करेगे और उसम जोत चमकेगी, जो य चाहत हैं । (५० ३४)
- अभिधामूला शाब्दी व्यजना
- १३ तुमन हमशा उस साये म और सलामती म रखा । अरे सामने मुश्किल नहीं आयगी ता आदमी म कस कस पदा होगा ? उसका मन उठता है और आसमान तक जाता है पर करन की बात आती है तो हौसला हवा दीखता है ।' (५० ३५ ३६) —रूढा लक्षणा
- १४ लेकिन तुम कोठा म आती हो, या मा-बाप के पास आती हो ? (५० ३८) —अभिधामूला शाब्दी व्यजना
- १५ तो मालूम होता है फिर तुम्हारे घर पर मुझे दस्तक दनी हागी । अरे भई राजनीति म जोर ही चला करता है प्रेम नहीं चला करता है । (५० ४१) —रूढा लक्षणा
- १६ जमीन म कुछ पसीना डालूगा और मन को तसल्ली रहगी कि पसीने का खा रखा हैं हराम का नहीं । (५० ४३) —रूढा लक्षणा
- १७ ठाकुर की भरी और जबर मुझे थी । उनका मुह कप आया, मूँछों के बाल हिले, कनपटिया भी हिलने लगी ।' मानो सहसा उनका गला भर आया हा और चेहरा टूट कर रो आना चाहता हो ।' (५० ४६)
- (१) विगिष्ट पदरचना
(२) रूढा लक्षणा

- १८ ठाकुर बोने नहीं और दोनों को छोड़कर वही मैं आया और फोन में कहा—'नीला ! यह क्या, एकदम आसमान से ? 'हा। लेकिन टपकी नहीं हूँ बाकायदा आसमान से उतर के आई हूँ। यह भी है।' (प० ४६)
—लक्षणा मूला शास्त्री व्यंजना
- १९ देहात ? देहात क्या बन जगल क्या नहीं जाते ? कि एकदम ऋषि महर्षि बन जाओ और हम लोग तुम्हारे चरणों में गिरें। (प० ५०)
—भाव व्यंजना
- २० मन में रह रहकर चुभन होती थी। सब तरफ खयाल जाता था, पर चुभन का काटा दूर नहीं होता था। (प० ५१)
—सारोपा गौरी लक्षणा
- २१ मैं और भी जोर जोर से पढ़ने लगा। पर जोर जोर अदर ही था बिताव तक नहीं पहुँचता था। किताब का पन्ना वही का वही रहा और मैं ससार की असारता के साथ स्त्री के हीन बुद्धि होने का विचार करता रहा—खास कर पत्नी बग की स्त्री। (प० ५२)
—वस्तु व्यंजना
- २२ मैं ऐसे बठा रहा कि आधी रात में कहीं सोया जाता है—या कि पढा जाता है ?' (प० ५३)
—वस्तु व्यंजना
- २३ मेरी आँखों से चिनगारिया निकल रही होगी। पर राजश्री मुस्करा रही थी। बाकी चितवन थी उस मुस्कान में।' (प० ५३)
—रूढा लक्षणा
- २४ मैं भारी भरकम आदमी हूँ और उस समय मन बदन में कम भारी न था। लेकिन उन हाथों में खिचता उठता चला आया। (प० ५३)
—वस्तु व्यंजना
- २५ 'उस समय राजश्री, जो बयस्क पुत्र-पुत्रियों की माता थी, जाने कसे पोडसी हो आई। यह ऐसे मुस्करा और छोटे-छोटे कदमों से ऐसी अजब चाल से बिस्तर पर गई और मुझे दखती हुई ऐसे रजाई में दुबकी कि सब मुझसे काफूर हो गया। मैं पिघल कर हर तरफ से मोम हो आया।' (प० ५३)
—रस व्यंजना
- २६ "सोच रहा था कि देह में भरती आई हुई नीला पहले से अच्छी लग रही है। जरा बाह को दबाकर देखूँ पूछूँ कि नीलिमा तुम पर स उम्र क्या कपूर की तरह उड़ जाती है ? सिर्फ सुगंध छोड़ जाती है। (प० ५७)
—भाव व्यंजना

२७ इस धूप में श्रीर गुन में श्रीर आजाती में तुम आत्मा की बात करना चाहोगे कि मन की बात करना चाहोगे ? (१० ५३)

—लक्षणाश्रुता शास्त्री व्यजना

२८ लेकिन आह्ला पर पहुँचकर तुम यह मत मान लना कि तुम जिदगी में श्रीर नही हो उसके मानिक हो। जिदगी अपने तरीके में चलती है। (१० ६४)

—वस्तुव्यजना

२९ बुद्धि का गुमान तुम्हारी तरह मुझे तो नहीं हो सकता है। श्रीर का ही हो सकता है। (१० ६५)

—वस्तुव्यजना

३० नीला न कहा अच्छा मैं चलूँ। नमस्त ठाकुर साहब। नमस्ते राज भाभी मान ममाल रमिय अपना। (१० ६७)

—अभिधामूला शास्त्री व्यजना

३१ सही कहते हो ठाकुर लेकिन मुसिफ न बना करो किसी के। (१० ६८)

—भावव्यजना

३२ आत्मी भरता है और फलता है तो आप ही भुक्त आता है। उससे पहले मन में उठने-उठने की चाह रहती ही है। और बीरेन्द्र कोई श्रीर में अलग नहीं है। (१० ७३)

—प्रयोजनवती लक्षणा

३३ कृवर के लिए उसके मन में खार है।" (१० ७४)

—भावव्यजना

३४ क्यों सरप्राइजेज आपको पसन्द नहीं है। मुझे वाक्यादगी पसन्द नहीं है। चरित्र पतन से आपने अपने को बचा लिया। (१० ७५)

—अभिधामूला शास्त्री व्यजना

३५ मैं बधाई देती हूँ आपको कि आप सत बन रहे हैं। (१० ७६)

—अभिधामूला शास्त्री व्यजना

३६ दखो सहाय, तुम लाग इज्जत में और पदों में रहकर जान किन किन व्ययनाओं को अपने साथ लपेट लते हो और उनमें गौरव मानते हो। तुम्हारा सच कपड़ों में है लिबास में नहीं और सचाई से डरने में है। (१० ७६)

—लक्षणाश्रुता शास्त्री व्यजना

३७ 'बस तुम्हारे अच्छे लगने के लिए ही तो श्रीर का होना है। गुडिया हो तो गुडिया कुछ और उमका रूप भा जाए तो वह। छूब रही।' (१० ७६ ७७)

—वस्तुव्यजना

३८ लेकिन तुम व्यवस्थापकों की बिरादरी से जरूर नाराज हूँ। तुम लाग आदि शक्ति में अविश्वास करते हो और अपने नियम कानूनों में विश्वास करने लग जाते हो। कभी तो अपने का उस शक्ति के हाथ में आकर पड़ने से डरते हो और सहाय है और जिसके सहाय कोई

दूसरा सच नहीं है। क्यों तुम ढकाव पसंद करते हो? क्यों प्रकृति के स्पष्ट से बचते हो और ससृष्टि का बैठन उस पर लपेटते हो?’

(प० ७७)

—लक्षणाभूला शास्त्री व्यजना

३६ छोड़ो नीला! तुम भी अपने शरीर को कब तक कसौटी बनाए रखोगी कि परल के पुरुष को पास फेल किया करो।’ (प० ७८)

—वस्तुव्यजना

४० “पकड़ रखकर तुम्हें पा जाऊगी यह तो कही तुम कहना नहीं चाहते? जितना तुमको स्वतंत्र रख सकूगी, उतने ही तुम मेरे होगे।”

(प० ८१)

—प्रयोजनवती लक्षणा

४१ “राजश्री एक शब्द नहीं बोली, लेकिन उसकी निगाह में स शिकायत भाक रही थी।’ (प० ८१ ८२)

—भावव्यजना

४२ ‘और मुझे बहुत खुशी है कि तुम अभी इस कदर हटे हो। इसी नाम पर लो यह जाम ला!—अरे ओ मैं भूली। तुम तो जाहिद हो।’ और कहकर वह घुघरुआ से निकलती-सी हँसी-हँसी।

(प० ८४)

—लक्षणाभूला शास्त्री व्यजना

४३ मुस्कराने में उसकी आँखें तनिक छोटी हो आई, और उनमें मधु आ भरा। मधु में जैसे कुछ तिक्त भी हो।’ (प० ८५) — भावव्यजना

४४ “ तुम स्फिरिट नहीं, अक्ल चाहते हो। ठीक है, रखो अक्ल अपने पास। लेकिन लुत्फ तुम्हारे बराबर से अगर निकलता चला जाए तो देखकर उसे कुठना मत। जाहिद से यही डर रहता है नजर लगने का डर।” (प० ८५ ८६)

—लक्षणाभूला शास्त्री व्यजना

४५ बोली—सही कहा तुमने, बहुत सही कहा। जरूरत तुम्हें होनी चाहिए थी, जो अक्ल का ढकना ऊपर देकर अपने को रोक रहते है।’

(प० ८६)

—वस्तुव्यजना

४६ लेकिन अदर काटा जरा भी रहेगा, ता समझ लेना रूह की रिहाई नहीं होगी।’ (प० ८७)

—वस्तुव्यजना

४७ ‘आखिर कोई क्या करता है जब वह देश समाज के लिए करता है। देश-समाज तो यही रह जाते हैं और वह चल देता है। यानी इन नामों पर जो किया जाता है आखिर हाता वह अपने अदर से और अपने खातिर है।’ (प० ८८)

—लक्षणाभूला शास्त्री व्यजना

४८ लम्बी उस हाथ की उगलिया थी और हथेली जरा जरा गुलाबी थी और वह हाथ निवेदित प्रतीक्षा में टिका था।’ (प० ९१)

—भावव्यजना

१६८ जनद्र व उपयामा का मनाविज्ञानपरक और शलीतात्विक अध्ययन

४६ प्रभागिन है वह जो स्त्री है, और राजनीति में घाती है, या उमवा विचार भी करती है। स्त्रीत्व के साथ एसा सम्भौता ही हाना है पालन नहीं होता। (प० ६२) —वस्तुव्यजना

५० तुममें सपन था और मैं तुम्हारी नजर में उस सपना का सपन तद्द दगन लगती थी। घादमी सपने के लिए जीता है और औरत उस सपन का घादमी के लिए जीती है। दर के साथ मैं रहती थी जीता तुम्हारे लिए थी। तुम्हारे लिए—यानी जा सपने में चलता था और सपन में करता था। (प० ६२ ६३) —भावव्यजना

५१ राजनीति तुम देगती हो वहा भाकर फस गई है। वह घनीति बन गई है। फिर उमम रहने से बालिष्ण ही तो लगगी हाय क्या घाणगा ? (प० ६४) —फटा लगणा

५२ वह चुकी है कि तुम भाजाद हो। जाओ और सपने घादमी के और कतव्य के साथ रहो वसे ही जस घादमी बीबी बच्चा के साथ रहता है। भाराम की और पाबन्गा की जिन्गी हागी वह और मुगारक हा वह तुम्ह। मैं राजनीति नहीं समझती हू तुम समझत हा। लकिन कुछ है जो तुम नहीं समझत हो हम सब समझती हैं। राज भी समझनी हैं। (प० ६४) —लगणामूला गान्धी व्यजना

५३ तमारा न बहा, नमस्ते, नीलिमा दबी। नमस्त तो थी पर जाने उसमें कसी एक धार थी। नीलिमा ने उत्तर नहीं दिया और हम लोग बाहर भा गए। मन में एक खाभ और ऊव थी जस वही अभिसधि की दुगंध हो और सोत का पता न हा। (प० ६६) —भावव्यजना

५४ बठन ही मालूम हुआ कि राम मुझमें दूर हो गया है ससार फिर भाकर फिर गया है। (प० १०१) —प्रयाजनवती लक्षणा

५५ विचार का बाळ डालकर मुझे सदह है कि आपन बीरद्वर के व्यक्तित्व को बीना कर दिया है। उसकी सभावनाएँ मैं समझता हू अब भी खिलने में भा सकती हैं। (प० १०६) —साध्यवसाना गौणी लक्षणा

५६ 'इसलिए कि पम की बमी नहीं है चुनाचे छोटी माटी फिरें मुझमें दूर रह जाती हैं और मेरी तटुरस्ती को जरा भी कुतर नहा पाती और मैं खयाल की उन ऊचाइयाँ पर पहुँच सकती और टहर सकती हू जा तुम्हें पसंद हैं। (प० १२१) —गुदा प्रयोजनवती लक्षणा

- ५७ लेकिन मुझे कभी आपने मुझ पर छोड़ा है ? जैसे की जब ज़रूरत पडी है तो साथ म आपने उपदेश भी पेश किया है । क्या इसी अविश्वास के बल पर आप सोचते थे कि मैं अपने बारे म फसला कर निकलूंगा । लेकिन बहुत हो गया । मुझे अब इस तग दायरे म नही रहना है ।
(प० १२५) —वस्तुव्यजना
- ५८ 'जी कुछ करने को नही रह जाता था । और अब भी कुछ नहीं है जो मैं आपको बग्ने को कहता हूँ । इतना है कि आप भूल जाइये कि मैं आपका लडका हूँ । मैं अनाथ होता ता इससे अच्छा होता । यह तो न होता कि दूसरे बाप मानते मैं बाप मानता और वह सब मानना बकार जाता । (प० १२८) —भाव व्यजना
- ५९ "आप हमारे परिवार से हमदर्दी रखती हैं आण्टी लेकिन इनका यह ढाग है कि पद नही चाहिए । पद के लिए तो सारा त्याग-तपस्या का यह रूप है । उपरी जो है, नखरा है । इसलिए है कि आप्रह अनुरोध और हो और यह जाहिर कर सकें कि पद ने नही बल्कि इन्होंने पद पर कृपा की है ।' (प० १२९) —वस्तुव्यजना
- ६० 'मैंने इन्कार तो नही किया । और कभी मा की तकलीफ भी दखता हूँ । पर आपकी अच्छी अच्छी बातों के चिंतन से मेरे हाथ तो नही भर जाते हैं । कुछ आप हाथ म काम लोजिय और सहायता म मैं उचित दिखाई न दू तो कहियेगा ? मुझे कुवर के पास क्या खुशी है । बहिन का बडा भाई होने से बल्कि वह मेरे लिये शम की बात है । पर आपने मुझसे कभी काम की बात की-ही नही ।
(प० १४१) —वस्तुव्यजना
- ६१ "पर सचमुच मेरे पास न प्याग था, न टाटस का एक शब्द था । मैंने गले मे पडी अजलि की बाँहा को अपने स भलग किया और कहा—अजलि, तुम मेरी बेटी हा लेकिन कुवर को गलत रास्ते पर जाने से रोक नही सकती हो—बल्कि शायद बढावा देती रही हो । पसा आराम जो देता है क्यों ? और अब बाप के पास प्राती हा । समझ लो बाप मर गया । वह कुछ नही कर सकता है ।" (प० १४७) —भावव्यजना
- ६२ 'कमरे म आने पर राजश्री बोली यह सच क्या हा गया है तुम्ह ? ऐसे तो तुम कभी न थे । मैं मिनिस्टर हा गया हूँ । अचरज म राज वाली, सच ? उसका मुह मुला रह गया और उसने मुझे देखा । मेरे माये पर तवर थे और उसका चेहरा अविश्वास के बाद शन-शन विश्वास म खिलता आ रहा था । (प० १४८) —संश्लेषणमूला शब्दी व्यजना

उप-यास अनंतर

१ उस सग-महार सचमुच क्या वे कोपल-मे नये तिन स्वर्गोपम ही नहीं बन घाए थे पर स्वग वह शन-शन फिर मटमली घरती बनता चला गया ।^१ मुग्धा वयस्का होती गई और रोमाचकों से उतरकर मैं स्वयं नित निमित्त के काम-काज में खपता गया । सच कम कसाले के दिन थे वे ।^१ (प० १४)

—(१) सारोपा गौणी लभणा

(२) रुढा लभणा

२ कहकर अपरा खिलखिला आई । उस हसी म कुछ मुझे विपम नहीं लगा । भरन की किनोल होती है वसी वह हँसी की लहर थी ।

(प० २७)

—सारोपा गौणी लभणा

३ पार्श्वों क साथ जितनी खिली और खुली दिग्वाई दी डरे पर उतनी ही बंद और नियुक्त ।^१ दोनो जगह वेप और व्यवहार भी उसका तन्नुबूल था । वहा अगर वह रानी थी ता यहा एकदम नीकरानी ही लगती थी ।^१

(प० ५३)

—(१) प्रयोजनवती लभणा

(२) वस्तुव्यजना

४ गिथिलाचार बढ रहा है, जीवन भागाभिमुख हाता जा रहा है । विनान बढे ता क्या मानव चरित्र को घटना ही चाहिए ? हाता यही दीख रहा है । सम्यता के इस विषफल पर क्या म उतरोण है । (प० ५६)

—मारोपा गौणी लभणा

५ इतना आराम दूगी कि जिसको खालिस निखानिस रहना कहते हैं वह आपका भिन जाएगा । दखते ही हैं मरे आसपास कोइ कतव्य नहीं है । इतनी बकाम कि निष्काम हूँ । (प ६०)

—वस्तुव्यजना

६ दिल की समाई ही सतम हुई जा रही है नहीं ता आतिथ्य भारत का स्वभाव था । (प० ६४)

—रुढा लभणा एव वस्तुव्यजना

७ उसम वही व्यग्य की रेल तक न होनी थी । मुमम वान अथ कम ही करती पर उन घाट-स वाक्या म भी मानो श्लेष की ध्वनि रहती ।

(प० ६६)

—भावव्यजना एव अलंकारव्यजना

८ उसका दखकर मुझे एकाएक लगा कि पस म यति गव हाता है ता हमारी अपभा के कारण ही हा पाता है । क्या का सम्भ्रम यति कुछ नान हुआ दीखा ता कारण यही कि उसम सस्या क निमित्त न पम की माग हा आई थी ।^१ हम चाहत हैं और चाह हमे नीचे लाती है । उस चाह से पसा गर्बिष्ठ हो आता है ।^१ (प० ७५)

—(१) प्रयोजनवती लभणा (२) वस्तुव्यजना

६ "पसे के खच से जो समय को भरा जाता है वह उसे और खानी बना जाता है।" कुछ लोक-सेवा का काम ले सकती है या कुछ हौबी ही बना डालो ! तब इन चीजा के लिए मन खाली न रहेगा—बोलो कहती हो कि अब मन भारी न करोगी ? और कुछ देखोगी भी तो शिकायत मन मे न लाओगी ?" बोलो ! बोलो ! (प० ८६)

—(१) वस्तुव्यजना (२) रुढा लक्षणा

१० "जी, मैं इण्डस्ट्रियलिस्ट इन्सान नहीं हूँ और अग्रेज भी नहीं हूँ।"

(प० ८५)

—वस्तुव्यजना

११ अब सोचो कि मजूर महाजन की सभ्यता से मजूर-हजूर की सभ्यता कसे बढ-चढकर हो जायगी ? —ठीक है कुछ लोग चितक होंगे मनीषी होंगे। बडी खुशी से हा। पर काया रखेंगे तो बिना काम और मशक्कत के उस काया मे जग नहीं लग जाएगा ?" (प० ८६) —वस्तुव्यजना

१२ मैंने कहा 'एक अपरा हटी तो क्या दिल्ली म सौ अपराए और नहीं है ? यह क्या मन हारने की बात करती हो !' (प० ६६)

—वस्तुव्यजना

१३ 'पसा समाज के शरीर का प्रवाही रक्त है। वह है, क्योंकि उस पर सरकारी मुहर है। मोहर की वजह स कोरा बागज भी कितनी कीमत का हो जाता है ! और सरकार वह जो प्रशासन के बन पर समाज को अनुशासन मे रखती है। शासन की इस सस्था से समाज की स्थिति बनती है।' (प० १०१)

—वस्तुव्यजना

१४ देख न लिया जी, अब तुमन। तुम्हारी अपरा जो निल्ली म नहीं है। सुना ? देखे ये लच्छन ?" (प० १०६)

—वस्तुव्यजना

१५ मैं पलग पर बठा-का-बठा उपनती हुई अपनी पत्नी को देखता रहा। (प० १०६)

—लक्षण लक्षणा

१६ यह क्या हो जाता है कभी ? सगे के बीच ही ऐमा हाता है एक क्षण मे कि सब बट गया हो और बीच म अलघ्य साई पदा बरके आपस म इधर और उधर पार बन आया हो।

(प० १०८)

—प्रयोजनवती लक्षण

१७ मैं सबके लिए खच हा सकती हूँ मेरा कोई घर नहीं है और मैं सबका घर बना सकती हूँ। (प० ११२)

—प्रयोजनवती लक्षण

१८ सुनकर मैंने अपने उस माय बंधु को देखा। वह भी किसम मलाह मागने बठ थे ? जो निरे गद बनाता है और करते धरत जिसमे कुछ बनता नहीं है। (प० ११५)

—वस्तुव्यजना

२०२ जनद्र के उपयासा का मनोविधानपरक और गलौनात्त्विक अध्ययन

१६ "जब ठौर ठिकाना न था जेल का खतरा सिर पर मटराता रहता था उस समय की मन की ताजगी और खुशी तो जस अपना सपना बन गई है। (प० ११६) —रुडा लक्षणा

२० अब मैं किसी की पत्नी नहीं हूँ होने की सभावना भी समाप्त हो गई है। ग्राम्मी को मैंने दख लिया वह बचारा हाना है। इस बचारगी म घम पत्नी सचमुच उसे सहारा होनी होगी।" (प० ११८)

—वस्तु यजना

२१ जी नहीं—गायक आप पिता बोन रह हैं। मैं लखक प्रसाद का माय रखना चाहती हूँ—और कहिए ?" (प० १२२)

—लक्षणा मूला शास्त्री व्यजना

२२ बुद्धि की और ग्राम्मी की बातों में जो हम ऊंच ऊठ जाते हैं ता जमीन से दूट आते और हवाई बनने लगते हैं।" (प० १२४) —वस्तुव्यजना

२३ पर पुस्तक जिसे कहते हैं उसमें भाव और विचार ही नहीं हाना कागज पुट्टा भी लगता है। भाव भाषा प्राप्त कर ल, इनका बस नहीं है। उसको फिर पण्य वस्तु बनाकर बाजार भेजना जरूरी हाना है। लखक भीतर अपने मन के माय बाहर उस माय में भी जुड़ा है। यहाँ से बात सीधी से टढ़ी हो जाती है। (प० १२५)

—वस्तुव्यजना

२४ 'इस पर एकाएक असगत भाव से वह बोला— आप अपने को बहुत बुद्धिमान समझते हैं ?' (प० १३०)

—विपरीत-लक्षणा एव भाव व्यजना

२५ 'अब वे लड़के कहते हैं बिना स दख लिया गया है कि आत्मा कही नहीं है। जा है है। दूढ़ बकार है। हममें तृष्णा है वासना है ता है। अरुचि के विरोध देकर उस हटाया नहीं जा सकता। व्यवस्था के नाम पर जो नीतिवाद खड़ा किया गया है ढकोसला है। ढकोसला उनका है, जा खुद के लिए भोग और दूसरे के लिए समय चाहते हैं।

(प० १३२)

—वस्तुव्यजना

२६ सँभालने में ज्यादा दरकार नहीं होता। दिमाग का उफान हाथ के काम से आप बटन लगता है। पसीना डाले कुछ उगाए-बनाए वह ता सब ठीक हो जाएगा। लेकिन तुमने ता दिमाग उसका चहका दिया है। वह मर पास आया क्या ? एक बार उखड़ा तो क्रांति से कम कुछ करना वह क्या चाहता ? (प० १३३)

—रुडा लक्षणा

२७ चारू बोनी ठीक तो कहता है अपनी बगी को बम रख ता और मारी दुनिया को मार डालो और क्या ? (प० १५३)—भावव्यजना

२८ “अपरा चारु और रामेश्वरी के चल जाने के बाद मैं अपनी अकिंचित् करता और स्त्री की प्रभुतापूर्णता पर सोचता रह गया। स्पष्ट हो गया कि जो मस्तिष्क के बस का नहीं है वह हृदय के संधान स अन्यायम हो आता है।” (प० १५४) —प्रयाजनवती लक्षणा

२८ ‘तुमने तब हृदयहीन न माना होगा वही सहृदय हो पड़ता है।’ विजयसि मे विचारे को अपनी सहृदयता के लिए मौका नहीं मिलता हम सबको वृत्तन होना चाहिए कि अपरा ने उसके हृदय के उस तल को छुआ है और बनानि, इसको तुम गलत न समझोगी। (प० १५८ ५६)

—भावव्यजना

३० अपरा तुरत बोली, तो आप सोच म क्या पडी हैं वनानिजी। आपका जो काम है आपका है। पसे का काम हम जैसा पर छोड़िए जो भोग राग सोग म दीखत हैं—वह सब मैं करूंगी। आखिर चरित्रहीनता का कुछ तो लाभ हो। कहकर फिर उधाडी-सी हस आई। (प० १६२)

—अभिधामूला शास्त्री व्यजना

(३) प्रतीक-योजना सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

प्रतीक की पृष्ठभूमि

चिरकाल से मनुष्य अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का आश्रय लेता रहा है। रहस्यवादी काव्य के सदर्भ में प्रतीकों को एक विशिष्ट अर्थ गौरव एवं गरिमा प्राप्त हुई है। छायावादी काव्य सृजन की प्रक्रिया में प्रतीकों का विशेष रूप से प्रयोग किया गया और इन्हे अभिव्यक्ति के लिए अपरिहाय समझा गया। छायावाद युग में कथा साहित्य पर भी इस प्रतीक पद्धति का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। संभवतः जनेद्र ही पहले उपयामकार हैं जिन्होंने प्रतीकों का पुष्कल मात्रा में उपयोग किया है इससे पूर्व इनकी आशिक अभिव्यक्ति प्रसादजी के कथा साहित्य में भी देखी जा सकती है।

प्रतीक की व्याख्या

हिंदी शब्द-कोश में प्रतीक के कई अर्थ मिलते हैं। जैसे—चिह्न लक्षण, आकृति किसी के स्थान पर या बदले में रखी हुई वस्तु। “दूसरी आर प्रतीक के अंग्रेजी पर्याय सिम्बल के भी निम्नांकित अर्थ प्रचलित हैं” (१) प्रतीक

१८ प्रामाणिक हिंदी शब्द-कोश सम्पादक रामचंद्र वर्मा।

१९ चैम्बर्स इंग्लिश डिक्शनरी।

वह चिह्न होता है जिससे कोई वस्तु जानी जाती है। (२) स्वच्छता से प्रयुक्त या परम्परागत संकेत। (३) जो किसी अर्थ का प्रतिनिधित्व करता हो। इन गणनाओं का समन्वय करते हुए डाक्टर गणपतिचन्द्र गुप्त ने यह निष्कर्ष निकाला है प्रतीक वह विषय संकेत चिह्न होता है जिसका प्रयोग स्वच्छता से या परम्परा से किसी अर्थ अथवा प्रतिनिधित्व के लिए होता है।^१

विभिन्न विद्वानों ने प्रतीक का विविध परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं (१) प्रतीक मूर्च्य का प्रतिनिधि होता है।^२ (२) एक विषय प्रकार का संकेतात्मक गणना प्रतीक है।^३ (३) किसी मूर्च्य के एक स्तर की सत्यता का किसी अर्थ मूर्च्य की समान सत्यता के द्वारा प्रतिनिधित्व देना ही प्रतीकवाद है।^४ (४) सौन्दर्यशास्त्र में प्रतीक वह वस्तु है जो कि अपने तात्कालिक अभिप्राय से भिन्न किसी अर्थ में अभिप्राय का सुभाषा है जो कि विषय की दृष्टि में अधिक महत्वपूर्ण है।^५

इन सभी परिभाषाओं के आधार पर डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने एक सम वित्त परिभाषा देने की चेष्टा की है, जो कि निम्न प्रकार है प्रतीक विषय संकेत चिह्न होता है जिसका प्रयोग किसी अन्य अर्थ के प्रतिनिधित्व के लिए होता है।^६

प्रतीक के सामान्य स्वीकृत लक्षणों के रूप में तीन विचार विदुषों का प्रस्तुत किया गया है

- (१) विषय संकेत चिह्न
- (२) अनवाचक, निरमल से एक सामान्य और प्रत्यक्ष तथा दूसरा विषय और अप्रत्यक्ष होता है।
- (३) अप्रत्यक्ष एवं विषय अर्थ की प्रत्यक्ष एवं सामान्य अर्थ से अधिक महत्ता।^७

यदि इस उपर्युक्त विवेचन का जनैद्रक उपयासा के प्रतीक विधान के सन्दर्भ में देखा जाए तो हम यही कह सकते हैं कि प्रतीक उपयासकार का ध्येय

२० साहित्य विज्ञान डाक्टर गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० ३२८

२१ लम्बेज एण्ड रियलिटी डबल्यू० एन० अरवान पृ० ४०३।

२२ डिक्शनरी ऑफ बल् लिटरेरी टर्म गिप्स पृ० ४०५।

२३ वही।

२४ लम्बेज एण्ड रियलिटी डबल्यू० एन० अरवान पृ० ४६६।

२५ साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० ३२८ २६।

२६ वही, पृ० ३२६।

रिव अभिव्यक्ति के एक विशिष्ट सदस्यों के वे सबैत चिह्न हैं, जो कि घटना और चरित्र को एक नयी अथवत्ता प्रदान करते हैं। उपयोगकार का कथ्य इस सचित्र हा जाता है और उसका ध्वयर्थ पाठक के मन में नये विम्बों का निर्माण करता है। जिस बात को प्रत्यक्ष रूप में नहीं कहा जा सकता, उसका हम किसी प्रतीक की भाँट लेकर बड़ी आसानी से कह सकते हैं। उदाहरण के लिए त्यागपत्र में मृणाल और प्रमोद के सबधों को, लहराते हुए जीवन-समुद्र में डूबती हुई मृणाल के रूप में, प्रस्तुत किया गया है, प्रमोद तट पर खड़ा है और वहीं से उसकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ बुझा की गतिविधि को लक्ष्य करके प्रकट होती हैं।

प्रतीकों की अभिव्यक्ति में भाषा शली का स्वरूप

प्रतीक विधान में भाषा-शली एक नये रूप को ग्रहण करती है। जो भावनाएँ रचनाकार के मन में वायवी रूप में विद्यमान होती हैं, उनको वह कल्पना का रक्त-मास प्रदान कर अस्तित्व में लाना चाहता है। ऐसी स्थिति में अत्यन्त ही शुद्ध प्रसंगों को एक निपिद्ध अभिव्यजनाओं को वह प्रतीक के माध्यम से प्रकट कर सकता है। उदाहरण के लिए, सुनीता और हरिप्रसन्न के उस प्रकरण को लिया जा सकता है जिसमें वे दोनों एक-दूसरे के प्रति समर्पित होने की सीमा तक पहुँच गए थे, और फिर समपण धारा के तट से वापस लौट आए। ऐसी स्थिति में रचनाकार की भावनाएँ अत्यन्त उत्तेजित एवं स्वतः स्फूर्त होती हैं। उसका विम्ब विधान प्रतीकों का आश्रय लेकर अपनी कल्पना को साकार करता है। वस्तुतः प्रतीकों की अभिव्यक्ति में उपयोग की भाषा शली का स्वरूप भी बहुत-कुछ कविता के निकट पहुँच जाता है। वसी ही भावना, वसी ही कल्पना की द्रावकता और अनुभूति की तल्लीनता हम गद्य में भी पाने लगते हैं। स्वाभाविक ही है कि ऐसी स्थिति में उपयोगकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का आश्रय ले और उसकी भाव-बीचिया रस की धारा से उद्भूत हो। जनेद्र के उपयोगों में जहाँ कहीं भी प्रतीकों का प्रकरण आया है वहाँ कथा गद्यकाव्य का परिधान प्राप्त कर लेती है और तब उनकी और छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति में कोई पाथक्य नहीं रह पाता।

प्रतीकों का महत्त्व

प्रतीक-योजना के अनेक प्रयोजन बताये गये हैं (१) विचार की व्याख्या करना, (२) उसे स्वीकार्य बनाना, (३) उसे आकर्षक करना, (४) उसे अनुभूति गम्य बनाना, (५) विषय को अलङ्कृत करना आदि।^१ इन प्रयोजनों से एक बात

स्पष्ट है कि प्रतीक के माध्यम से कथ्य में चारता एवं प्रभविष्णुता की वृद्धि होनी है। डा० गणपतिचन्द्र गुप्त का कथन इस सदर्भ में द्रष्टव्य है। विचार एवं अनुभूति के योग तथा कल्पना शक्ति की उद्दीप्ति के कारण प्रतिपाद्य विषय में उस शक्ति की उद्दीप्ति हो जाती है जिसे हम आकषण शक्ति कहते हैं। किन्तु यहाँ यह ध्यान रहे कि यदि प्रतीका के दोनों अर्थ—प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत—ही बौद्धिक या विचारात्मक हुए तो वहाँ प्रतीक का व्याख्यात्मक न रहकर विज्ञानात्मक बन जायेंगे। विज्ञान में प्रयुक्त प्रतीक केवल अर्थ की व्याख्या करते हैं, उनमें उस आकषणता का उद्बोधन नहीं हो पाता जो कि साहित्यिक प्रतीकों में होता है।^{१६}

उपयासो में प्रतीक विधान कल्पना एवं वास्तविकता के बीच सेतु निर्माण का कार्य सम्पन्न करता है। चूँकि उपयास का वास्तविकता से घनिष्ठ संबंध है अतः उस बुद्धि-प्राप्त बनाने के लिए उपन्यासकार को कुछ काल्पनिक प्रतिमात्रा का निर्माण करना होता है जिससे कि वास्तविकता में स्थिरता का सन्निवेश हो। एकदम यथाय चित्र कथा सृष्टि को रूक्षता प्रदान कर सकते हैं अतः प्रतीका की परिकल्पना से उन्हें मोहक रूप प्रदान किया जाता है। जब कोई मनोवैज्ञानिक उपयासकार प्रतीक का आश्रय लेता है तो उसका आश्रय सचित्र हो जाता है और उसका पाठक से तादात्म्य सहज ही स्थापित हो जाता है। प्रतीक का यही महत्त्व एवं उपादेयता है।

प्रतीकों का वर्गीकरण

श्री अरवान महादेय ने रूपात्मक दृष्टि से प्रतीकों के तीन भेद किये हैं (१) सकेतात्मक (२) व्यंग्यात्मक और (३) आरोपमूलक।^{१७} इनमें परस्पर सूत्र अन्तर इस प्रकार दिखाया गया है (१) सकेतात्मक—इनमें प्रतीकात्मक शब्द का विशेष महत्त्व नहीं रहता, केवल संबंधित पदार्थ का ही महत्त्व रहता है। उदाहरण के लिए हम अपने कुत्ते का नाम कमल रख देते हैं। यहाँ कमल विशेष कुत्ते का पर्यायवाची है। (२) अभिव्यञ्जनात्मक—इनमें प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग विशेष प्रयोजन से होता है। मेरा नौकर विल्कुल गधा है उसे कुछ भी समझ में नहीं आता। यहाँ गधा सूक्ष्मता का प्रतीक है। (३) आरोपमूलक—इनमें जान-बूझकर एक अर्थ पर दूसरे अर्थ का आरोपण होता है। यथा—ठाढ़ा सिंह चराव गई (कबीर) मधुर-मधुर मेरे

१६ साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० ३३२।

१७ लन्वेज एण्ड रियलिटी, पृ० ४०७।

दीपक जल' (महादेवी)। साहित्यिक दृष्टि से दूसरे और तीसरे प्रकार के प्रतीको का विशेष महत्त्व है।

प्रतीक और शब्दशक्तियाँ

यह संयोग की ही बात है कि प्रतीक और शब्द शक्तियों में बड़ा घनिष्ठ संबंध है। सकेतात्मक प्रतीको या व्यक्तिवाचक सज्ञाओं में वाच्याय सूच्य होता है जबकि नथाकथित अभिव्यजनात्मक प्रतीक, विशेष प्रयोजन से प्रेरित होने के कारण लस्याय की अभिव्यजना करते हैं। आरोपमूलक प्रतीको में शब्दों पर नये अर्थ का आरोपण होता है तथा इनमें दो अर्थों—प्रस्तुत और अप्रस्तुत—की सह स्थिति रहती है अत इनके मूल में व्यजना-शक्ति की सत्ता स्वीकार की जा सकती है। वस्तुतः आरोपमूलक प्रतीक व्यख्याय की व्यजना करते हैं। अस्तु प्रतीको के तीनो प्रकार—सकेतात्मक अभिव्यजनात्मक एवं आरोपमूलक—ममश अभिधा, लक्षणा एवं व्यजना शक्तियों पर आधारित हैं।'

जनेद्र का प्रतीक विधान

'परम से लगाकर अनंतर' तक जनेद्र ने प्रतीको का पुष्कल मात्रा में उपयोग किया है। इस सद्म में उनकी तुलना सहज ही छायावादी कवियों के प्रतीक विधान से की जा सकती है। इन प्रतीको के माध्यम से कहीं जीवन की ललक मूर्ति एवं व्यथता दर्शायी गई है तो कहीं यौवन का दुर्दांत रूप इनका विषय बना है। नारी जीवन की यातना को जनेद्र ने विशेष रूप से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। इस यातना की बहुविध छवियाँ प्रतीको के माध्यम से ही दर्शायी जा सकती थीं। मनोवैज्ञानिकता के निर्वाह में भी इन प्रतीको से बड़ी सहायता मिलती है। मानसिक जीवन के विविध नियम-कलाप, इनकी विषय-वस्तु बनते हैं। प्रतीक विधान की स्थिति में भाषा शली भी एक नये साचे में ढलती है, उसमें कल्पना का बभ्रव और अनुभूति की द्रावकता विनेय रूप में देखी जा सकती है।

जनेद्र के श्रेष्ठ उपन्यासों में सुनीता, त्यागपत्र जयवधन और मुक्तिबोध का लिया जा सकता है। इन उपन्यासों का प्रतीक विधान अत्यंत रुचिर एवं सचित्र है। शब्दों के माध्यम से उपन्यासकार जब चित्र का निर्माण करता है, तो प्रतीक उसकी सहायता को दौड़ भाते हैं। छायावाद युग में प्रतीकमयी पद्धति को एक विशेष गौरव प्राप्त हुआ ही था किंतु इसके बाद के युगों में भी इनका

महत्व कम नहीं हुआ है। नविता व उपमान भल ही भल पड गय हा, पर प्रतीका म इतनी विविधता एव नवीनता है कि उनक भल पढन की कल्पना सहज म नही की जा सकती।

अगल पष्ठा म हमारा प्रयत्न यह होगा कि हम जनेत्र की औपयासिक मृष्टि म प्रतीक विधान की म्पनि का पर्यायाचन करे और उसक उपरात कुछ निष्पन्न निकाले। प्रारम्भ म प्रतीक व उदाहरण, तत्पश्चात् उसी का प्रतीकाय दन की सष्ठा की गई है।

(४) प्रतीक के उदाहरण एव प्रतीकाय 'परम्ब से 'अनन्तर' तक

उपयास परस

प्रतीक

पर यह क्या हो गया ? पल भर म यह कसी गडबड भच गई। अब तक तो कुछ न था। अपने उस चबूतरे पर बठकर जीवन को और ससार को पढने और मुलभाते रहन म काई मुश्किल नही जान पढी पर जस अब सारा ससार और वह उनरा चबूतरा—भव एक भून म भूलने लग गया। एक लहर उठी और उनके सारे अस्तित्व को डुबाने-उतराने लगी। सब-कुछ मिट मिटाकर सावन व इद्रधनुष के रगों म लय हो गया—और उन बिरग रग म भाक भाक कर दसती हुई दीसने लगी वह बट्टा ! यह किसकी माया थी ?

जरा सी ककरी ने आकर सोय हुए विगल जल-तल की स्थिरता भग कर दी। हल्की सी हवा का भोका जस जब जल-तल को धपकता हुआ बहता है तो उस सारे तल म एक सिहरन-सी होती है उसम कपकपी उठ जाती है वस ही किसी अज्ञात आवेग के मीठे भकि ने उनके सोये जीवन के तल पर एक सिहरन सी फना दी। बटार को जस बाहर स छ लिमा हो और उसके भीतर का पानी यहा से बहा तक काप गया हा। जीवन की गहराई में से जो लहर उठी हो उसको मनुष्य के बनाए हुए धारणा-सकल्पों के रेत के किनारे कहा तक और कब तक रोक सके हैं !

प्रतीकाय

यह भूना प्रणय का सजीव प्रतीक है। लहर भावुकता की है उसी ने उनके मन को अभिभूत कर लिया है। इद्र धनुषी रग प्रणय-कल्पनाओं के प्रतीक कहे जा सकते हैं—विविध रगी और सजल। इन रग म स बट्टो का

भावता हुआ चेहरा प्रणय का साकार स्वरूप है। कुल मिलाकर यह एक निवा स्वप्न है जिममें प्रणय प्रतीक बड़े मोहक रंगों में उद्भासित होते हैं।

विशाल जल-तल सत्यधन के जीवन का प्रतीक है और क्वरी प्रणय के आवेग की। अनात आवेग के भीठे भोव भी प्रणय भावनाओं के हैं। कटोरे के पानी के वापने में जल तरंग का तरल प्रकपन है। कटोरा भी प्रणय भावना के छलकते हुए हृदय का प्रतीक कहा जा सकता है। धारणा सबल्पा के रत के बिनारे रुनिया और मर्यादाओं के प्रतीक हैं, जिन्हें जीवन की गहराई में से उठने वाली प्रणय की लहर अपदस्थ कर देती है।

सम्पूर्ण चित्र एक गद्यकाव्यात्मक गरिमा लिये है और इस रूपक का झिलमिल आवरण इतना पारदर्शी है कि अंतःसरोवर की सभी तरंग उसमें भासमान होती हैं।

२ प्रतीक

बारह एक बजे से इस बात की टोह में है कि कोई पर्वी जाने वाला जागे और यह अपने जाने की बिध ठीक कर ले।

क्या साएगी ?—दो चूडिया लाल एक टिन्टी टिकिया की डिबिया एक ऊँह। वह कैसे बताए ? याद नहीं। लाज आती है। बल देखा जाएगा।

और बात देखो। कसी गंगा की पर्वी आई है—ठीक जबकि उसके भी जीवन का पव अचानक ही आ पहुँचा है। उसके मन में सदेह नहीं यह इस पर्वी का ही प्रसाद है। (प० ४०)

प्रतीकाय

बारह एक बजे से इस बात की टोह में होना कि कोई पर्वी जान वाला जागे—यह कट्टी के अभूतपूर्व उत्साह का प्रतीक है। इसी उत्साह उल्लास की पृष्ठभूमि में सौभाग्य के प्रतीक रूप में दो लाल चूडियो और एक टिन्टी टिकिया की डिबिया के रूप में वह न केवल अपने प्रसाधना का जुटाने की बात सोचती है बल्कि भविष्यत् जीवन के आनन्दोत्साह की भी इसमें अभिव्यक्ति है। आगे की कल्पना में लाज से ग्रसित हो जाना नववधू की मन स्थिति का परिचायक है। देहाती बालिकाएँ बड़ी आस्थावान् होती हैं। कट्टी सोचती है कि यह इस पर्वी का ही प्रसाद है कि वह अपनी मन की मुराद पूरी कर सकी। कुल मिलाकर ये पत्निया नव वधू के स्वाभाविक उल्लास को प्रतीक रूप में प्रकट करती हैं।

३ प्रतीक

वह भाग गई। भागकर चौक में नहीं गई अपर कमर में आई। वहाँ एक तन में चिन्नी है रक्त घात में अभा अभा ताजा ताजी मिमाती से खरीदी एक मित्रुता की मित्रिया एक छाटा सा दवा एक राधा मिमन की तस्वीर—एमी ऊप्यगग चात्र मनाकर रग दा ह। वहाँ आकर उस छोटे से स्तन का लकर ताजा भोग क पीना पीच जग ऊपर का मास उस टिप्रिया में म बटी नहा सा एक मित्रुता नगा ला। खसती रही—कसी यह लाल लाल बिन्दी काली पटती जा रग। (पृ० ४७)

प्रतीकाय

प्रस्तुत पत्तियाँ में हम प्रतीक रूप में बट्टों के उस भविष्यत् जीवन का चित्र पान है ता कि उसका मनाकाम्य है। मित्रुली स्पर्ण जहाँ उसका शृंगार सज्जा के प्रसाधन में वही राधादृष्टि का तस्वीर उसका अमर प्रणय जीवन का प्रतीक। लाल लाल बिन्दी का काली पटना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है मित्रुता उप शमरान न इसका द्वार बट्टा के भविष्य की अभिगप्त मिमति का स्थान कराया है। उस प्रकार बिन्दी का काला पटना भविष्य के विनाश का प्रतीक कहा जा सकता है।

४ प्रतीक

मा उरग में साधन साधन तीव्रता आ गई। तभी वह कोने में से उठ आई। हाथ के एक भस्म में पाता का रंग पीला जा पडा। सिर उतर गया। उघटा ग—गा नगा हृष। दावा के तम वागत ल आई और खान पर बठर लिखा लगा। मित्रा वही भाग पर बटी बठी ज्वर उप सिर का दमकर और नीत्र उस मित्रा जानी हई बिन्दी का दमकर चुप चुप कसी लाल लाल हसी हस रग। (पृ० ६८)

प्रतीकाय

मित्रा का उघट जाना और फिर उस उघटपन का निना न करना गह्वरना सा हा प्रतीक है। खाट पर बठर लिखन की नमयता गह्वरता के लक्षणों की याद मित्रा है यह प्रणयाभिप्रेति का एक प्रकार है। बिन्दी लाल लाल का प्रतीक है और यहाँ मित्रा उस मजाब है कि वह रक्त सिर का भी खसता नहीं और नाच इस लिखा जाती हृद बिन्दी का देखकर लाल लाल हसा रग जाती है। लाल लाल हसी अनुगग की प्रतीक कनी जा सकती है। कुत्र पिनाकर यह जने द्र के प्रारम्भिक उपवास का विशिष्ट उपहार है।

५ प्रतीक

बिहारी ने भट से सभाल लिया । सत्य पर उस बड़ा गुस्सा आ रहा है । सत्य यहा होता तो उसका सिर पकड़कर, इस कट्टा के पैरा के पास धूल म इतना घिसता कि बाल सारे उड़ जाते । हाय, कमबख्त स्वर्ग व इस अदूते पारिजात की गंध को जूठा करके छोड़े जा रहा है । (पृ० ६६)

प्रतीकाय

कट्टो की सत्य क प्रति जा निष्ठा बिहारी न देखी तो उसे अपने मित्र पर इतना क्रोध आया कि वह सत्य के सिर को कट्टो के परो मे डालकर इतना घिसना चाहता है कि उसके सारे बाल उड़ जाए । सारे बालो को उडाना बिहारी के क्रोध की चरम सीमा है । इस क्रोध के प्रतीक मे कट्टो के प्रति उसकी निष्ठा और सत्यघन के प्रति उसकी जुगुप्सा छिपी हुई है । स्वर्ग का अछूता पारिजात कट्टो के व्यक्तित्व का सजीव प्रतीक है । इस पारिजात की गंध को जूठा करने मे सत्यघन की स्वायत्तता भाव रही है । इस प्रतीक के द्वारा उसकी नीचता पर भी पूरा प्रकाश पडता है ।

प्रतीक

इस हा को मुनकर कट्टो पत्थर की मूर्ति से खडे सत्य के परा म जाकर लोट गई । एक बार और लोनी थी । तब शाम थी अब दोपहर है । तब स्वर्ग के द्वार खोले गए थे आमत्रणपूर्वक अब आमत्रित कट्टा के मह पर ही ढाप दिए गए है । खुले थे तब भी वह उन परो म लोटी थी बंद कर दिए गए हैं तब भी वह इनम ही पडी है । उसकी यह कंसी समझ है । (पृ० ८१)

प्रतीकाय

पत्थर की मूर्ति निष्पत्ता की प्रतीक है । परो म लोटना अगाध श्रद्धा का प्रतीक है । स्वर्ग के द्वार प्रणय-लोक के द्वार हैं । चाह प्रेम करे या न करे किन्तु समर्पिता नारी तो प्रियतम के चरणो म अपना स्थान पाती है । अह का विलय ही सच्चा प्रेम है ।

उपवास मुनीता

१ प्रतीक

श्रीकांत और मुनीता के परस्पर सयुक्त जीवन म इधर कुछ प्रमाण जडता और बंधन का बोध आ चला था । उस शान्त असल तल पर हृत्प्रसन आ

आविभूत हुआ । वहा लहरें उठ लहरी । नीरु जागी । प्रगान्तता अगान्त हुई । विन्नु इसम उस सयुक्त जीवन को बुद्ध ह्य और रमास्वात की अनुभूति प्राप्त हुई । बुद्ध पुष्टता ही प्राप्त हुई । तव मुनीता के प्रति श्रीगान्त की आखें जमे अधिक मुनी । मुनीता भी जस भीतर स अधिक खिली और दोना परस्पर म माना बुद्ध मतक समभ्रम अधिक प्रस्तुत और अधिन प्राप्त होना चाहन लगे । (पृ० ४०)

प्रतीकाय

प्रस्तुत पत्तिया म सरोवर के रूपक द्वारा श्रीवात और मुनीता के दाम्पत्य जीवन म हरिप्रसन के आने स जो परिवतन आया है, उसकी प्रतीक-पूण व्यञ्जना है । नीरु जागी । प्रगान्तता अगान्त हुई — इन दो लघु वाक्या म साहित्यिक विरोधाभास का आत्मिक चित्र है । हरिप्रसन के आविभूत होने के सदम म श्रीवात को मुनीता म अधिक सौत्य दीखने लगा परिणामस्वरूप अपनी स्वीकृति स मुनीता भी फूल के मानिद खिल उठी । फूल के खिलने मे यौवन और सौत्य क प्रस्पुटन का प्रतीक है । दोना के बीच की एकरसता समाप्त हुई और परस्पर आकर्षण म वृद्धि हो चली । इस प्रकार प्रस्तुत अनुच्छेद म रूपक और प्रतीक-योजना एक-दूसरे के समानान्तर चलते है ।

२ प्रतीक

उम रात उसने दा तीन रगीन बेल बूटा की ड्राइग बनाई । वाच-बीच मे उनम नागरी के अक्षर लिखे जो ठीक चीन्ह न पडते थे न जिनका क्रम और अर्थ बुद्ध समझ म आता था । एक मोटो बनाया— जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी । और उस वाक्य के चरण-तल मे ऊपर की ओर दखता हुआ एक नन्हा-सा प्रश्नवाचक लाल रंग म टाक दिया । वह गवा चिह्न लहू की बूद सा नन्हा और लाल रमणी के भाल पर कुकुम के छीटे जसा स्थिर और दीप्त उस गरिमाय वाक्य के मूल म स्थान बनाकर बठा रखा । मानो वही मुख्य है मानो समस्त का मध्य बिन्दु वही है उस तमाम पक्ति का सुहाग उसकी गरिमा मानो उसी फदे की सी बिन्दी म द्य है । माना आत्मा उस प्रश्न म ही है गेप तो गरीर है — मर भी सकता है । उसको लेकर ही मानो सब सजीव है नही ता सब व्यथ है भ्रम है । (पृ० ८७)

प्रतीकाय

प्रस्तुत चित्र म हरिप्रसन अपने मन के अचेतन एव अचेतन को रूपाकार

दे रहा है। जननी जमभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' से उसकी स्वदेश भावना प्रकट होती है। अगरो का रेखावन जम एक चुनौती को प्रकट करता है कि इस जमभूमि के लिए प्राप्ति करनी है। नन्हा-सा प्रश्नवाचक, जो कि लाल रंग में टाका गया है और जिससे लहू की बूद या रमणी के भाल बिंदु की कल्पना की गई है वह वास्तव में प्राप्ति का प्रतीक है। इस प्रकार इस चित्र में प्राप्ति और स्वदेश भक्ति के परस्पर संबंध को स्पष्ट किया गया है। इसके बाद के दूसरे चित्र में उसन नारी सौंदर्य के प्रति अपनी सजीव प्रतिक्रिया का आका है। इस चित्र में जो बलिदान की मुद्रा है, वह भी जैसे इस बात की प्रतीक है कि वह नारी सौंदर्य में नहीं अटक सकती, और कि उसे प्राप्ति की ओर भी उमुख होना है। सारी रात जाग कर जो चित्र उसने बनाये हैं उनमें उसके प्राणों की व्यथा की अभिव्यक्ति है। कुल मिलाकर यह हरिप्रसन के अतद्वद्ध को ही प्रकट करते हैं।

३ प्रतीक

किन्तु भीतर से क्या कुछ काला-काला पेन सा धुमडता उठ रहा है? उसी को खींचकर बाहर निकाल देना होगा। उसी को चीरकर अपने से अलग करके इस तस्वीर में कौल देना होगा। यह हो जाएगा तब कहेगा—ओ तू!—वही रह। और ओ रे हठी प्रार्थी मनुष्य। उस अंधेरे स्तूप को छोड़। वहा अंधेरा है, वहा उत्तर नहीं है। मुड़ आ कठोर पृथ्वी की ओर, उसे उबरा कर उस हरियाली कर शस्यदा कर। उस अंधेरे गहर में घाह नहीं है तल नहीं है। अरे अभाग, मुड़ आ। यहा कम के बीच तेरी प्रतीक्षा है। वहा क्या भक्ष्य बनने को खडा है? यहा आ और जयी बन, यशस्वी बन! (पृ० ११६)

प्रतीकाय

काला पेन हरिप्रसन की अतस्य वासना का प्रतीक है। इसे खींचकर अलग कर देने के विचार में नतिक्ता का स्फुरण है। पृथ्वी की ओर मुड़ना उस उबरा करना—इन सबमें कतव्य की गूज है। अंधेरा गह्वर मन की अथाह गहराई का प्रतीक है। जो कतव्य के आवाहन को नहीं सुनता, वह उसी अथाह गहराई का आस बन जाता है। जयी और यशस्वी बनने के आत्म सवेत में कतव्य का ही विस्फोट है। इस प्रकार प्रस्तुत चित्र में हरिप्रसन अपने ही आत्म सक्तों द्वारा अपने अतद्वद्ध को काटकर श्रेय की ओर बढ़ना चाहता है किन्तु क्या वह बल सकता?

४ प्रतीक

स्वामी के वक्ष से लगकर सुनीता न कहा कुछ नहीं है मेरे प्रिय । राहु आया है सो दूर होगा । श्रद्धा की पूर्णिमा तो प्रकाशित ही रहेगी । श्रद्धा मेरी डमी न जाणगी । मरे प्रिय ! मुझे प्रेम करना न छोडो । मुझे व-मुघ रहने दो । मुघ पाकर मैं फिर क्या रहगी । मरा ता सब आधार लुट जाएगा । मुझे तो खोया रहने दो । (प० १२२)

प्रतीकाथ

प्रस्तुत पत्निया म सुनीता जमे अपन पनि स आत्म विश्वास की ही याचना कर रही है । राहु सुनीता के मन का बह अविश्वास है जो कि हरि प्रसन के सान्निध्य म आने पर उभरा है । श्रद्धा की पूर्णिमा गम्पत्य जीवन क प्रति आस्था की प्रतीक है । सुनीता श्रीकांत के प्रेम म ही अपने को खोया रखना चाहती है क्योंकि जहा उसने इससे विस्तार पाया वही वह राहु म ग्रमी गई ।

५ प्रतीक

बठी-बठी सुनीता तस्वीर को देखने लगी । ज्या ज्यो वह तस्तीर को देखती है, त्या त्या उसम खोई सी हो जाती है । मानो एक गुफा है जिसका प्रवेश द्वार निमत्रणपूर्वक खुला है पर जिसम प्रवेश करके वापस आना नहा होता जिसका द्वार पार नहीं है । मानो उस गुफा की दहलीज पर खडी वह दल रही है और पूछना चाह रही है कि क्या है ? बन्दे का साहस नहीं है पर आगे से काई चुनौती आ रही है जो कह रही है—मत आओ । देखो मत आओ । और बह चाह रही है जानना कि वह पुकार क्या है ? (प० १३२ ३३)

प्रतीकाथ

प्रस्तुत चित्र म हरिप्रसन के अतश्चेतन की आडी तिरछी रेखाए हैं । गुफा नारी क सौन्दय लाक का प्रतीक है । जो इसमे आवद्ध हो जाता है उसका काई राण नहीं । यह सौन्दय लाक अत्यत आमत्रणकारी है । इस लोक मे एक चुनौती की आवाज आती है जिसम निषेध भी है और आमत्रण भी । नारी क प्रति नर का भी बुद्ध एमा ही भाव रहता है । हरिप्रसन का कालांतर ऐसे ही चित्रा म आत्माभियक्ति पाता है ।

६ प्रतीक

एकाएक उसे जान पडा कि भाग्य न जो उसे सुनीता के तट पर ला छाडा

है, सो इसलिए कि वह उस पहचाने और उपयुक्त उपयागिता में उसका प्रतिष्ठित करे। दल का एक पत्नी (नेत्री) चाहिए जो युवका की स्फूर्ति का छात हो। आज सुनीता को दखतर हरिप्रसन्न को नग रहा है—वह यही है यही है।

कमर में आकर इसी विचार को बह अपने भीतर पं। वि। मग्न बना। वह विचार दलत दलत रग विरग के पत्र पुष्पा में लसित उनका भी — रह रहा उठा। मना सुनीता इस घर की ही नहीं है। वह हरिप्रसन्न के स्वप्न का ही है। कीच मिट्टी पत्थर के नीचे दबा हुआ हीरा जैसा मुकुट में अपने रथान पर नहीं पहचाना? धरती में दबा रहता था तब के लिए ता है अब तक पारखी का छाया उम नहीं पाती। पारखी वह क्या है जो जान के प्रति अपना रिश्ता दारी नहीं पहचानता नहीं, वह अपने धर्म में नहीं हारगा। (प० १३२)

प्रतीकाय

प्रारम्भिक अनुच्छेद में एक विचार स्फुरण है जैसे उन सुनीता की माया बना का अचाक हो अहसास हुआ है। वह यही है यही है—इस वाक्यांश में जमे उसके विचारों की सम्पुष्टि ही साकार हो गई है। इस सम्पुष्टि का मूल में उसके मन का दुबलता है जो कि सुनीता पर एक नया आवरण पाल कर उसका उपयाग किया चाहती है। उपयुक्त उपयागिता एक चित्त प्रयाग है उपयागिता के पूर्व उपयुक्त शब्द लाकर दाहर बनाघात (डबल एम्पेनिम) का प्रयोग किया गया है जो कि विनियम नहीं रखता। पत्र पुष्पा में लसित विचार का लहलहा उठना मना रामाचक उभय है। यही धारणावाणी गद्य की छत्र स्पष्ट देगी जा सकती है। सुनीता घर की है ही नहीं हरिप्रसन्न के स्वप्न की ही है इस वाक्य में गवाधितार की भावना है जो कि प्रति के आदरग में नियोजित की गई है। कीच मिट्टी पत्थर गृहस्थी का प्रतीक है और हारा सौंदर्यमयी सुनीता का प्रतीक है। मुकुट वह शीघ्र प्रति है जिसमें हरि सुनीता का उपयाग करना चाहता है। पारखी स्वयं हरिप्रसन्न है जिस कि आत्मा 1) द्बोधन के द्वारा पहले सप्रश्न किया गया है और बाद में उसी प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप में लिया गया है। इस प्रकार उपयुक्त अनुच्छेद में भूख हरि की नग्न कामनाओं को रग विरग पत्र-पुष्पा में लसित करके दिखाया गया है।

७ प्रतीक

तथा हठात् दीक्षा कि तस्वीर अभी बोड पर हां चठी एक अलभारी के सहारे टिकी है। इस तस्वीर में अधियार स्तूप के आगे दाना बाह फनाकर

विरतन रूप म बुद्ध पुकारता हुआ जो निरीह, नग्न पुरुष खड़ा है जिसके पेटे उभरे हैं और यह बलिष्ठ है किन्तु जो अतिथि बनकर हाथर प्राथी बना है—काम कीवित वह पुरुष मानो मुनीता की शक्ति का वाष लेता है। मुनीता जब उस स्त्री है स्त्री रह जाती है। बुद्ध उसम स्पष्ट नहीं है। फिर भी एक प्रकार की भयकर प्रतीक्षा उस चित्र म स पूट पूट कर मुनीता व बनज म लगती है। उस स्तूप व अघरे म क्या है ? क्या है ? वहा क्या कोई आहृति भी है ? गायन है ता पर ठीक तरह स बुद्ध समझ म नहीं आता। पर जिम अन्वय अतक्य अघाट व सम्मुख हाकर यह चित्रप्रश्न जडित प्राणी एक ही मुद्रा म इस भाव म खड़ा है कि अनन्त काल तक भी उसका प्रश्न और उसकी प्रतीक्षा टूटन वाली नहीं है—यह रहस्यमयील दुरधिगम्य मुनीता का माना एक ही साथ प्रस सता है। उस दखन-स्त्रने मुनीता माना बबम हा पडी और उसने एक साथ उस चित्र का घुमाकर रख दिया कि वह दीम नहीं। तब जा र म भपटती हुई गई और जीने का दरवाजा बन्द कर दिया। उसके बाद सीधी कमरे म धा गई और बिना दर नगाण पलंग पर लट गई।

प्रतीकाय

बलिष्ठ स्त्र का यह वातर प्राथी पुरुष और कोई नहीं स्वयं हरिप्रसन्न है जस युग-युग म यह व्यक्ति मुनीता व लिए प्रतीक्षा रन है। यह चित्रप्रश्न जडित प्राणी एक हा मुग्ध म खड़ा हुआ अपनी साधना और व्यथा का एक साथ ही प्रकट करता है। मुनीता का उसके द्वारा अस्ति होना जहा हरिप्रसन्न की प्रतीक्षा की सफनना है वहा इसम स्वयं मुनीता व मन की दुबलता भी है जा कि इस पुरुष के प्रति समर्पित होने के लिए विवग है जस यही उसकी नियति हा। चित्र को घुमाकर रख देना वास्तविकता को न सह पान का एक प्रयत्न है किन्तु इस प्रकार घुमाकर रख देने म तो वह चित्र अपनी अन्व सन रगी आभासा म मुनीता व मन व आकाश म कीधन उग गया। भपट कर जीने का दरवाजा बन्द करना और फिर पलंग पर लट जाना एक आर मुनीता के आदेण का प्रकट करता है और दूसरी ओर इसम उसके मन की पराजय भी निहित है। इस प्रकार कुल मिलाकर यह चित्र हरि के अवचेतन मानस का अभिव्यक्ति प्रदान करता है और मुनीता का प्राप्त करने की उसम जो कामना जगी है उमी को प्राप्त करने की एक परिवर्तित परिष्कृत प्रक्रिया मात्र है। कला म नतिकता व बचन वास्तविकता पर आवरण डाल दत हैं और तब अवचेतन मानस की भाषा प्रतीक रूप म ही अपने आपको व्यजित करती है।

८ प्रतीक

हरिण के पेट में जो गाठ होती है उसे वस्तूरी कहते हैं। उसको लिये लिये वह भ्रमता रहता है, बचन रहता है उसके लिए वह शाप है। वस्तूरी हमारे लिए है उसके लिए वह गाठ है। वह गाठ उसे तो मौत लाती है किंतु उस हरिण के पास वह ही एक ईश्वर की देन है। उस ही वह दुनिया का द सक्ता है। दुनिया उसी का वस्तूरी कह सकती है उसी पर रीभती है उसी के लिए उसे मारती है। यह चित्र सुनीता हरिप्रसन्न व चित्त की गाठ है। यह वह है जिसे हम घाट कहते और बहुमूल्य बनाएंगे इसीलिए तो मैं इसमें बधा है प्रतिभण उसके प्रत्येक अणु में स्पंदित होता रहनेवाला वह प्रश्न, वह जिज्ञासा, वह आकांक्षा जो हरिप्रसन्न के जीवन का जीवन थी जिसने उस सदा या भट काए रखा। आज क्या मैं नहीं जानता कि यह गाठ उसके भीतर स खीच निकालने में उपलक्ष्य तुम बनी ? हा, तुम ! मैं इसके लिए तुम्हारा चिर-वृत्तज्ञ हूँ, सुनीता ! दुनिया जब यह जानगी वह भी तुम्हारी वृत्तज्ञ बनगी। मुझे ऐसा मालूम होना है कि तुम्हारे सबंध में मेरा पतित्व इस कलाकृति में भरी यथा के समक्ष मान थोथा ही तो कही नहीं है। (पृ० १८६ १८७)

प्रतीकाय

हरिण के पेट की गाठ उसके जीवन तत्त्व की प्रतीक है वही उसके जीवन का सार है किन्तु यह सार उसे तो भटकाता है, और दुनिया उसी गाठ से वस्तूरी के रूप में फायदा उठाती है। यही वस्तूरी उस हरिण के लिए मृत्यु का कारण भी बनती है। श्रीकांत की दृष्टि में यह चित्र हरिप्रसन्न के चित्त की गाठ को प्रकट करता है। इस चित्र का मर्म उसकी जीवन पहेली पर प्रकाश डालता है कि कौन सी थी वह ग्रन्थि जो उसके जीवन को परिचरित किए थी ? इस गाठ को निकालने और उसे कना रूप देने में सौदयमयी सुनीता का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उसी के उपलक्ष्य से यह कलाकृति विश्व को प्राप्त हुई है। ससार जब इस रहस्य से अवगत होगा तो वह सुनीता और श्रीकांत के लिए न जाने कितना आभार जतलाएगा—श्रीकान्त इसी कल्पना में सोया हुआ है। एक प्रकार व अताद्रिय जीवन की अनुभूति उसे घेरे हुए है यही कारण है कि वह अपने पतित्व को भी निरथक समझने लगता है और सोचना है कि यदि सुनीता-हरिप्रसन्न व बीच में उसका पतित्व बाधा रूप न बनता तो ससार को यह कलाकृति कभी न मिल पाती। इस चित्र में हरि ने अपना सब-कुछ खाल कर रखा लिया है। एक प्रकार से यह चित्र उसके जीवन की कुजी है इसके माध्यम में हम उसके जीवन रहस्य को, अन्तर्द्वन्द्व का भवोभाति समझ सकते हैं।

उपयास त्यागपत्र

१ प्रतीक

मैं उस समय यह भी अनुभव किया कि उह अब एकांत उनना बुरा नहीं लगना। वह गाम व वक्त छन पर सटाला डाले ऊपर उडती हुई चीला को ही चुपचाप दग रही है। तभी पतग व पच दगती है और बटी हुई पतग पर जब तक आभन न हा जाए घास गाडे रहती है। और नही ता खटाल पर पट के वन लखर बायल से घरती पर कीरम-काटे ही खाचती है। (पृ० १०)

प्रतीकाय

यह किंगारिका के मन-परिवर्तन का अर्च्छा चित्र है। वय सन्धि-काल म युवक एव युवतिया की कुछ ऐसी ही मन स्थिति हा जाती है। इम हम निवा स्वप्न दग्ना भी कह सकते हैं। ऊपर उडती हुई चीलें मन की भावनाया एव कल्पनाया की प्रतीक हैं जो रि निस्सीम आकाश म पगें मारता रहती हैं। बटी हुई पतग मृणाल व अपन जीवन की प्रतीक है जा रि निस्सहाय निस्देय उन्मुक्त गगन म विचरण करती है। बटी हुई पतग की नियति हा मृणाल की नियति है। वय सन्धि-काल म एक किंगारिका अपन आपका बटी हुई पतग व समान हा समभना है जिसका न कही और है न कहा छार। घास गाड रहना इस क्रिया व प्रति उसकी लिलचस्पी जाहिर करता है जम इम पतग स ही उसन तात्काल्य कर लिया हा। घरती पर कीरम-काट खीचना मन की उधड बुन, कल्पनाशीलता एव विभ्रम का परिचायक है। कीरम-काटा म मृणाल व अन्वचेतन मन की अभिव्यक्ति है। इन कीरम-काटो म भविष्यत् जीवन की भलक भी दखी जा सकती है।

२ प्रतीक

मैं नहीं बुझा होना चाहती बुझा। छि। देख चिडिया कितनी ऊची उड जाती है मैं चिडिया हाना चाहता हूँ।

मैंने कहा चिडिया ?

वाली हा, चिडिया। उसके छोटे छोटे पख होने हैं। पख खोल वह आसमान म जिधर चाहे उड जाती है। क्या रे कसी मौज है। नन्हा-सी चिडिया नन्ही सी पूछ—मैं चिडिया बनना चाहती हूँ।

उस राज रात को वे मुझे देर तक चिपटाए रही। पूछन लगा, प्रमाद तू मुझे प्यार करता है ? सुनकर बिना कुछ बोले मैंने अपना मुह उनकी छाती के घोंसल म और दुबका लिया। इस पर वे वाली, प्रमाद, मैं तुझे बहुत प्यार करती हूँ। (पृ० १२)

प्रतीकाय

मृणाल के बुझा न हान की कामना से यही प्रतीत होता है कि वह बुजुर्गियत से नफरत करती है। इसकी तुलना म चिडिया के प्रति उसके मन म जो ललक हैं उससे यही प्रकट होता है कि उसे चिडिया का स्वच्छन्द जीवन बेहद प्रिय है। उसके जीवन को उमुत्तता कल्पना के गगन म उसका ऊचा उडना सब मृणाल का बेहद भाते है। नही सी चिडिया क समान ही वह भी अपने जीवन को नन्हे पन तक परिसामित रखना चाहती है क्वाकि उसे बुजुर्गियत म नफरत है। आममान उमुत्त स्वच्छन्द एव वृहद् जीवन का प्रतीक है जिसकी परिधि मे चिडिया चक्कर काटती है। ऐसा ही जीवन मणाल को भी चाहिए। वह अपने कठार नियन्त्रण के जीवन स सतप्त है इसीलिए वह चिडिया हुआ चाहती है। यह चिडियापन का भाव इतना प्रबल हुआ कि प्रमोद भी अपने आपको चिडिया समझने लगा और अपन को उनकी छाती के धौसले म दुबकाए रहा। प्रमोद के प्रति यह अतिशय अनुरक्ति मृणाल की भावना का प्रत्येषण मात्र है। यहा शीला क भाई के प्रति जो उनकी अनुरक्ति थी वही प्रमोद मे स्थानानरित हो गई है। प्रमाद को प्यार करने के मिस ही वह शीला के भाई के प्रति अपनी भावना जतलाती है।

३ प्रतीक

एक अहेतुक त्रास मुझे दाव हुए था। वह न रोने देता था न कुछ करने देता था। नतीजा यह हुआ कि मैं बुझा का विटा के समय एकाएक इतना भल्ला गया कि भागकर बुझा वाली कोठरी म अपने को बंद करके खडा हो गया। किवाड बंद कर लेने सं अघेरा हो गया था तिस पर भी दोना हाथो से आखें ढाप ली थी, और गुमसुम कोठरी क बीचो-बीच आकर खडा रह गया था। मानो आशा थी कि कोई करिश्मा होगा भूचाल आएगा, कुछ-न कुछ होगा और आखिर म सब ठीक हो जाएगा। यहा खडे खडे चाहता था कि सास रोक लू, बेआन हो जाऊ एकदम रहूँ ही नही (पृ० ४३)

प्रतीकाय

अहेतुक त्रास बुझा के सभावित विद्योह से उत्पन्न हुआ है अत इसे विद्योह का प्रतीक कहा जा सकता है। बुझा की कोठरी मे प्रमोद का खडा होना एक प्रकार का पलायन है इसके पीछे सुनुरभुर्गी प्रवृत्ति लक्षित होनी है। आखा को ढाप लेना इस प्रवृत्ति को पुष्ट करता है जैसे आखें ढाप लेने से वह इस विद्योह के दश्य से अपने आपको बचा सकेगा। करिश्मा और भूचाल कामना-पूर्ति (विशफुल थिंकिंग)

के प्रतीक है। सास रोके लना और बेजान हाने की कल्पना करना गुतुरमुर्गी प्रवृत्ति की चरम सीमा है। छायावादी युग में इस प्रकार क पलायन प्रतीक सबमाय था।

४ प्रतीक

समन्दर है। अपनी नन्ही कागज की डोगी लिय हम भी उसके किनारे किनारे मन क लिए आ उतरे हैं। पर किनारे ही गुल है आग चाह नहीं है। हिम्मत वाल आग भी बन्दे हैं। बहुत दूबत है कुछ तरते भी दीखत है पर अधिकतर तो किनारे पर सास लने भर जगह के लिए छीन भपट और हाय हाय मचान म लग है। नहीं ता वे और करें भी क्या। लडत भगडत अपने छोटे-स वृत्त की परिधि में घूम लते हैं आर इस भाति जो लेत हैं। सागर ताना आर कम उल्लास से लहरा रहा है। पर वह लहराता रह—हम अपने घबे हैं उधर करने का हमारी आस खाली नहीं है।

और कस करें उधर आस ? उस सागर की लहरा का अन्त कहा है ? कूल कहा है ? पार कहा है ? कही पार नहीं है कही किनारा नहीं है। आखो का ठहरने को कोई सहारा नहीं है। क्षितिज का छोर है यहा आसमान समन्दर में आ मिला है। वहा नीला अधियारा दीखता है पर छार बहा भी नहीं है। वहा छोर तो हमारी अपनी ही दृष्टि का है आयया वहा भी वसी ही अकूल विस्तीर्णता है। (प० ६२ ६३)

प्रतीकाय

त्यागपत्र क अन्तिम अध्याय में मणाल के जीवन को लेकर जिस विराट रूपक की सृष्टि की है उसमें अनेक प्रतीक भी हैं। यहा उस रूपक का एक ही अंग उद्धृत किया गया है। समन्दर जीवन की विराटता का प्रतीक है। नन्ही कागज की डोगी मानव-जीवन की प्रतीक है। अधिकतर व्यक्ति जीवन-सागर के किनारे ही रह जाते हैं क्योंकि आगे अध्याह जल है। कुछ साहसिक व्यक्ति ही आगे बढ पाते हैं। इनमें से अधिकांश डूब जाते हैं कुछ ही जल की सतह पर तरत दिखाई देते हैं। उन व्यक्तियों की सख्या बहुत है जो कि किनारे पर खडे हुए हैं किन्तु क्या किनारे पर खडा रहना भी आसान है ? उसके लिए भी छीना भपटी और हाय तोबा मची हुई है। छाट-से वृत्त से सीमित जीवन की ओर सकेत किया गया है। उल्लास से लहराते हुए समुद्र को देखन और उसकी विराटता का आत्मसात् करने के लिए न हमारे पास समय है और न वसी

जिधर भी हमारी दृष्टि जाती है जल ही जल दिखाई देता है। यहा तक कि दृष्टि के विराम के लिए भी वहा कोई स्थान नहीं है। जिस म्यान पर आकाश समुद्र मे मिलता है, वहा नील वण भ्रमकार छाया हुआ है। उसका भी कोई ओर छोर नहीं। तत्त्व की बात तो यह है कि हमारी अपनी दृष्टि की भी एक भीमा है इसी कारण हम उस अनूल विस्तीर्णता के रहस्य को समझ नहीं पाते। यह अनन्यता जीवन के विराट् प्रसार की ही धोतक है और आदमी इस विराटता के सम्मुख केवल एक नही-सी बूद है। इसी विराटता म मशाल परती हुई प्रमाद को दिखाई देती है।

५ प्रतीक

भीतर पशु हो, इस जलवायु म आकर बाहर की मनुष्यता एक क्षण नहीं ठहरेगी। मनुष्य हो तो भीतर तक मनुष्य होना होगा। कलाई वाला सदाचार यहा खुलकर उघडा रहता है। यहा खरा कचन ही टिक सकता है क्योंकि उसे जरूरत ही नहीं कि वह कहे कि मैं पीतल नहीं हू। यहा कचन की माग नहीं है पीतल से परहेज नहीं है। इसस भीतर पीतल रखकर ऊपर कचन दोखने वाला लोभ यहा छन भर नहीं टिकता है बल्कि यहा पीतल का मूल्य है। इससे साने के धम की यहा परीक्षा है। सच्चे कचन की पक्की परब यही हागी। यह यहा की कसौटी है। मैं मानती हूँ कि जा इस कसौटी पर खरा हो सकता है वह खरा है। और वही प्रभु का प्यारा हो सकता है। (प० ६७ ६८)

प्रतीकाथ

प्रस्तुत उद्धरण म वास्तविक सदाचार और मुलम्म वाले सदाचार की तुनना की गई है। जिस परिवेश म मशाल रह रही है वहा बीच की स्थिति नहीं हा सकती या तो सच्चा इन्सान ही वहा टिक सकता है या फिर हैवानियत को खुनकर खेलन की वहा पूरी आजादी है। खरा कचन सच्चरित्र का प्रतीक है, पीतल दुश्चरित्र का प्रतीक है। इस परिवेश मे सच्चरित्रता की अपशा नहीं की जाती और दुश्चरित्रता को बुरा नहीं समझा जाता। समाज मे सपेद-पोशी की तरह ही तथाकथित सज्जनता का प्रचलन है पर इस परिवेश म दुश्चरित्रता ही महत्वपूर्ण बन गई है। ऐसे ही वातावरण मे सज्जनता की वास्तविकता जानी परखी जा सकती है। एक वाक्य म कहें तो कह सकते हैं कि इस परि वेग म दिखावे के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जो जसा है, उसे उसी रूप म प्रकट हाना होगा। ऐमा ही व्यक्ति ईश्वर के प्यार को पा सकता है।

६ प्रतीक

कल्प ही तब मर धार म घररर मुझे छा लगा । तब इम जिन्गी क बीच किम एन अरनम्ब के महार में टिकूंगा ? अब ता मन का उचा उठाकर माफ हवा पेपना म भर नती हू और म विपाकन वातावरण म महज भाव मे जिग चरता हूँ । वह न रहा तब में कम त्रिबुगी ? मर जाऊंगा इमरा साध नहीं है । पर जावन की टेक हाथ म छूट जाणगी यह ता बहून बडा भय है । अद्धा क नाय मरना भी साधन है । पर अद्धा गई ता पास क्या रह गया । (प० ६८ ६६)

प्रतीकाय

एक पापी व्यक्ति जीवन म गहन अघकार स घिरा रहता है । प्रकाश की एक किरण हा उमक जावन का अवलम्ब हाता है । इमी प्रकार मणाल का जावन कर्मण म दूबा हुआ है प्रमात् का प्यार हा उसक जीवन का एकमात्र अवलम्ब है । उमा क महार वह घनघार अघकार म भा जा पा रहा है । प्रमात् क प्रति उसका स्नेह भाव हा उसर जीवन की टक है । यह टक यदि उसक हाथ म किसी प्रकार छूट गई ता वह कही की न रहेगी । अपनी आस्था का लकर यदि किसी का जीवन का बलिदान भी करना पडे ता काद चिन्ता का बान नहीं । अनास्था की स्थिति म जीवन निरवलब हा जाता है ।

७ प्रतीक

इस क्या का उत्तर अब में देता हूँ । उत्तर है कि—मैं धुद्र हूँ । क्या क्वा लत म आख गाडकर खुद पूजन म लगा रहा ? क्या मन म मानता रहा कि मैं ठीक हूँ ? क्या कतय्य का दवाता रहा और क्या अरनम्ब करता रहा ? उत्तर है—कि मैं बुद्धिमान् था भूख नहीं था । ताव तालकर चला और तराजू अपने हाथ रफी ।

इसीलिए आज जो असला तराजू है उसन हल्का तुल रहा हूँ । आज इम सारा बकालत क पस और बुद्धिमत्ता का प्रतिष्ठा क ऊपर बठकर साधता हूँ कि क्या मुभम तनिक भूख नहीं बना गया ? इस मदका मैं क्या कर् जमकि सपण रहत प्रेम क प्रतिष्ठा स मैं चूक गया । यह सब मल है जा मैं बगरा है । मल है कि मरी आत्मा की ज्याति का ढक रहा है । मैं सब यह नहीं चाहता हूँ । (प० १०३)

प्रतीकाय

प्रस्तुत पक्तिया म प्रमात् की स्वीकाराक्ति है । खुद पूजन म लगा रहना

स्वाय का प्रतीक है। तोल-नोलकर चलना और तराजू अपने हाथ में रखना वणिक्ता का प्रतीक है। बुद्धिमान् होना और मूर्ख न होना सासारिकता का प्रतीक है। इसे मुहावरे में बड़े तो बह सकते हैं— पाई का लेखा और रुपए की भूल (पैनी वार्डज पोण्ड पुनिश)।

असली तराजू मानवता की प्रतीक है जिसमें कि प्रमोद हल्का सावित हुआ है। प्रेम के प्रतिदान से चूकना सासारिकता के हावी होने का परिचायक है। मल सासारिक सम्पत्ति और प्रतिष्ठा का प्रतीक है। आत्मा की ज्योति विशुद्ध मानवता की प्रतीक है जिस प्रमोद बुद्धि के जीवन सदम में गवा चुका है।

८ प्रतीक

वे बुद्धि जिहोने बिना लिये दिया। जिहोने कुछ किया मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद अब मेरे भीतर अगार सी जलती है। जिनका जीवन कुछ हो, ऊपर उठती लौ की भांति जलता रहा। धुआ उठा तो उठा पर लौ प्रकाशित रही। उही बुद्धि को एक तरफ डालकर मैं किस भांति अपनी प्रतारणा करता रह गया। (प० १०४)

प्रतीकाय

बिना लिये देना आत्म बलिदान का प्रतीक है। अगार-सी जलने में दह बन का भाव निहित है इससे याद की प्रखरता और दाहकता—दाना ही सिद्ध होती हैं। ऊपर उठती लौ में ज्योति की विमलता और उत्पन्न यजित हाता है। धुआ कालुष्य या बुराई का प्रतीक है। लौ के साथ धुए की अनिवायता जुड़ी हुई है इससे यही ध्वनित होता है कि इन दोनों में अतर्विरोध नहीं बल्कि सह अस्तित्व है। लौ के प्रकाशित रहने में यही भाव प्रकट होता है कि कीचड़ में ही कमल की उत्पत्ति होती है। ऊपर उठती लौ में बलिदान की भी व्यंजना है जिसमें सहसादत भी भाकती है। इसकी अपनी गरिमा है।

उपमाय कल्याणी

१ प्रतीक

बटोही वह जान कब से चला आ रहा है। राह उसकी दीघ है सकेत कोई उसे प्राप्त नहीं है। बस, एक पुकार अपने भीतर सुनी है। उसकी टोह में वह चलता चला आ रहा है चलता चला आ रहा है और चलता चला जाएगा। क्या चिह्न पीछे छोड़ता आ रहा है, पता नहीं। उसका गतव्य पथ

भी है या नहीं है पता नहीं। क्या भय है या परमार्थ है या सब यथ है कुछ उसको पता नहीं है। बटोही ज्ञानी नहीं है ध्यानी नहीं है। वह किसी माग को नहीं जानता। बाहर उस कोई सकेत प्राप्त नहीं है। एक पुकार उसन भीतर सुनी है। वही है वही है अनिर्दिक्त वह कुछ नहीं जानता है, उसी म वधा वह बटाही अकिंचन चलाचल रहा है, चलता चला आ रहा है चलता चला जाएगा। कहा न आई है वह टेर ? कौन देता है उसे गुहार ? कहा है उसक प्राणा का सूत्रधार ? कहा, रे कहा ? बटोही यहा जिधर बिछुड आया है ? क्या यह बिछोह अनंत है ? क्या उसका कही अन है ? आह बिछुटा बटोही नहीं जानता। वह चल रहा है चल रहा है। आस नहीं निरास नहीं। बिछोह की विया बस भीतर है। वही धुन और वही टेक। वही उसकी सास। बटोही उसके सहारे चलता चला आ रहा है और चलता चला जा रहा है। सकेत कोई उस प्राप्त नहीं है पर टेर उसे बुला रही है और बिछोह उसे खींच रहा है। बटाही राह बेराह चल रहा है क्याकि वियोग म कहा चन है ? यहा सराय म बुद्ध उसका नहीं है। वह बटाही है राह चलते की उसकी सबका राम राम है चलना उसका काम है। रह-जाएगा सब रह जाएगा। वह ता चलता ही आ रहा है चलता ही चला जाएगा। वह बटोही ! (प० १४ १५)

प्रतीकाय

यह एक रहस्यवादी कविता है जिसे कल्याणी ने रचा है। बटोही यहा प्राण पथिक का प्रतीक है। प्राण अनन्त पथ पर अग्रसर हैं एक अन प्रेरणा मे स्वतः स्फूर्त होकर। प्राणा का यह पथिक अपने जीवन के अन्तिम क्षण से अपरिचित है। वह स्वाय परमाथ म भी भेज नहीं कर पाता। पथिक को नान माग स भी परिचय नहीं है प्राणा म उसने एक टेर सुनी है उमी से वधा वह चना जा रहा है। वह नहीं जानता कि उसे आवाहन करने वाला कौन है। एसा लगता है कि प्राण-पथिक अपने सूत्रधार म बिछुड गया है। एग बिछोह का कव अंत होगा यह भा वह नहीं जानता। वह आगा निरागा म तस्थ हा केवल विरह व्यथा म ही परिचलित है। जिधर म उमके त्रिण आवाज आई है उसी पथ पर वह बढा चला जा रहा है। प्राण पथिक का अपन माग की भी सुध नहीं है। उन एक पल को भी गति नहीं मिलती। इस जीवन रूपी सराय म वह किसी स आत्मीयता का सबध भी स्थापित नहीं कर पाता किन्तु प्राणि मात्र के प्रति उसके मन म कोई अवना नहीं है। वह सबका नतमस्तक हा अभिवादन करता है। उसकी यात्रा अनन्त है गति ही उसका जीवन सम्बल है। इस प्रकार आत्मा की अनन्त यात्रा उमकी अविराम गति और उमक

शक्ति पडाव को सूचित कर कविता समाप्त हो जाती है। इस कविता में कल्याणी के प्राणों की पीर ही निहित है।

२ प्रतीक

बाली—सुनिए मैं कहती हूँ कि मैं अपना अविश्वास कब तक कर सकती हूँ ? किताब की बात नहीं है पढ़ी सुनी बात नहीं है देखी भाली कहती हूँ। चार राज स बराबर नहीं देख रही हूँ ठहरिए हुलिया बताती हूँ।

* * *

सुनिए रंग गेहूँगा चश्मा लगाते हैं, कद बड़ा सुंदर दीखते हैं।

* * *

क्या आप मानते हैं कि मैं अपने होश हवास में नहीं हूँ ? मैं उस आदमी को हजारों में पहचान सकती हूँ। मूँछें छोटी वाली में लहर, विलायती लिबास में रहते हैं उम्र कोई चालीस।

मैं सच कहती हूँ सुनिए लेकिन आप कहिएगा नहीं किसी से न कहिएगा। मैं किसी का अनिष्ट नहीं चाहती हमारे घर के गुसलखाने में एक युवती की हत्या की गई है।

* * *

ना दिन ठीक नहीं बता सकती। नहीं दीवानी अभी नहीं हूँ। वह युवती घर में मुझे कई बार मिल चुकी है क्या वह जीती है या मर गई है ? उसकी हत्या हुई थी। वह मुझे कुछ बताती नहीं है। उसके ओठों से आवाज नहीं निकलती। लेकिन मैंने खुद देखा कि उसे गला घोट कर मारा गया था। गला घाटे जाते हुए तो खुद नहीं देखा लेकिन मैं वह कहती हूँ कि उसकी हत्या हुई है।

* * *

देखिए इस बारे में आप मुह न खोलिएगा। जो अभी मालूम नहीं है वह आप भी मालूम न हो लेकिन अगर मन की बात निकल सके तो पता भी हो सकता है कि मैं सच कहती हूँ या क्या ? इधर रोज जा आखा स देखती हूँ वह भूँ है तो फिर सच नाम का पदाव इस दुनिया में कहा मिलेगा ? ओह मुझे उस आदमी पर बड़ी दया आती है। और वह नई उम्र की युवती—वह तो मेरी हर घड़ी की साधिन हो गई। मैंने सुना और सुनकर उस विश्व खल उद्गार का जा भाव मैं बना सका वह यह है—

कोई एक महीने से गुसलखाने से सिसकी की आवाज उन्हें सुन पड़ती थी, जस कोई मुह दबाकर रोता हो। साभ का अधेरा गाढा हाता कि आवाज शुरू हो जाती। पहले तो वह सुनती रही और टोह टालती गई, सोचा कि होगा कुछ,

वही मन का भ्रम ही न हा पर चीज वह टाल टन न सकी जस वह आवाज उठती हो ता अन्दर कलेज को पकड लेती हा । कर्न वार भपटकर वह बहा गई पर दखें ता वही कुठ नही पहुचन पर मख सुनसान दीखता था । वह लौट आनी और अपनी धवराहट पर हँसना चाहती । एम कर्ट पिन निकन गए । हठात् उचरन म ध्यान माडना चाहा पर रह रहकर सिसकी भरती किमी स्त्री की वह आवाज काना पर आती ही थी । सुनकर जी म हौन चढती थी । कुछ सूभता नही था । एक रांज आधी रात बीन वह सपने स चौक्कर जागा सनाटा था । बत्ती मद्धम जल रही थी । सपन सिर म घूम रह थे । तभी सुनती क्या है कि गुसलखान म कुछ फुम फुस आवाजें हा रही है । कमर म वह अकेली थी मारे डर के वही की बहा वह गड-सी रही । पर कान धौक्कन थ और चेतना उद्दीप्त थी । कुछ देर म आवाजें जरा प्रबल हुई जस किस्ती स्त्री और पुरख म बहस छिडी हा । वहम जरा म बखडा बन आई अथ कुछ साफ सुनाइ दन लगा ।

एक पुरख कठ ने कहा—चुप नही रहगी क्या ? स्त्री कठ न उत्तर लिया—
मैं नहा रूंगी चुप । कभी नही रूंगी मुझे मार क्या नही डालते ? लेकिन चुप मैं नही रूंगी । मैं

नही रहगी ? मुझे गुस्सा मत लिला ।

जा मन म है पूरा क्यों नही कर डालत हा ?

ला मुझको मार डाला । पर समझ रखना चुप मैं मरन के बाद भी नही रूंगी ।

नही रहगी ?

नही नही नही रूंगी ।

दख मैं फिर कहना हू—

नही नही, नही हा घाटा गला ।

नही ? तो त मत रह चुप—

उसम बाद आवाज कुछ भर्राई-सी निकनी छत्पटापट सुनाती और धीम धीम सब गान ।

कल्याणी ता जस इस पर पत्यर धन आई था । मति-गति उसकी खा गई थी । इनन म पथराई आवा स देखती है कि एक आदमी उमी तरफ म आकर उसक कमरे म आर-मार चला ता रहा है । उसकी धिग्गी बध गद । डर के मार चान्च भी न सकी । क्षण म वह आदमी जान कहा बिला गया । उस पमाना छूट चला था । कुछ पन बाद हांग हुमा तब जार म वह चीखी लाग जग आण पर तब तक सत्र जुप हा चुका था । कल्याणी आखे पाडे जमा हूण उन सब नौकर चाकरा का दखती रह गई । कुछ भी मन् म न बनना मकी ।

उसके बाद उनका कहना था कि कई बार वह स्त्री उसे दीखी है। इधर तीन राज से वह पीछा ही नहीं छोड़ती। जम उसका गला घाटा जा रहा था और आखें निरली पड़ रही थी वह उसकी मूर्ति बार-बार सामने आ खड़ी होती है। मन से वह दूर नहीं होती। छरहरे घदन की अतिशय सुन्दरी अभी जैसे सयानी उमर भी नहीं है गम्भवती है। अब भी वह इस घर म रहती है और रोज मिलती है। कल्याणी बचती है पर कहा बचे ? उसकी फटी आखें, कातर मुद्रा—

* * *

वह उसी युवती मे तमय होकर कहने लगी—मैं उससे बात करना चाहती हूँ पर वह मुझे जम देखती भी नहीं मालूम होती—

* * *

बता सकेंगे क्या कुछ वय पहले यहा कोई महाराष्ट्र परिवार रहता था ? वह स्त्री महाराष्ट्रीय थी। पर वह कौन थी ? क्या पुरुष की पत्नी थी ? नहीं तो फिर कौन थी ? देखती हूँ आप इसे सच नहीं मानते। (प० ६२ से ६५)

प्रतीकाय

प्रस्तुत प्रकरण म कत्याणी के असामाय मानस की स्पष्ट प्रतिच्छाया है। उसन एक ऐसी युवती की परिकल्पना की है जा कि मृग नयनी है और अत्यंत ही सुन्दर है। इस सुन्दरी युवती को उसका पति गुसनखान म मार देता है।

वस्तुतः वह युवती और कोई नहीं कत्याणी है। उसी का आत्म प्रक्षेपण इस युवती के रूप म हुआ है। हत्यारा और कोई नहा स्वयं डा० असरानी है जो कि कल्याणी के सौंदर्य कौशल एवं सामर्थ्य का सीमा करना चाहता है। ऐसी स्थिति म आत्म प्रक्षेपण की मनोवृत्ति किसी वास्तविक व्यक्ति म, अपने कल्पित व्यक्ति को आरोपित करती है। यो देवलालीकर पाठक के सामने आत है। प्रकट म तो कल्याणी देवलालीकर के प्रति आकृष्ट है और उह उनके विधुर जीवन की यातना स मुक्त किया चाहती है किन्तु प्रच्छन्न रूप म वह पुरुष मात्र के प्रति प्रतिशाध की ज्वाला मे धधक रही है और उसी स प्रेरित होकर वह उसे अपने सौम्य की मरु मरीचिका म फसाना चाहती है।

देवलालीकर की सौम्यता और उनके नाक नका का जो वणन धाया है उसम स्वयं कल्याणी की भी दुबलता भाकती है। दर असल कल्याणी देवलालीकर का ही नहीं छन रही बल्कि अपने आपको भी छन रही है और प्रकारान्तर से देवलालीकर के प्रति आकृष्ट होकर वट डा० असरानी से भी बदला वे रही है। मन की इस द्रत या भत स्थिति मे कत्याणी के व्यक्तित्व का

मनुष्य भग्न हो जाता है और उमर धारण एवं उद्धार पर उमात्प्रणा नारी का समाप्त प्रभाव होता प्रमत्त है। इन पत्नियों में उमा नय्य का प्रतीतपूर्ण व्यक्तता है।

प्रायास रात का जो घटना घटी है वह कल्याण का मन का ध्यान ही या रक्ति विभ्रम है। पुण्य बट और स्त्री-बट का बाध तिम गवाह का परिष्कार की गई है, उमर धारण की स्त्री का ही जीवन ध्वनित होता है। एम धाम प्रोपण का उमा में जो भी मति-गति तिमि नारी का ही मजती है वही कल्याणी की हुई। उमर का धामें पयरा ग-उमर का उमर जट हा गया और कुन मितारक धिग्घी-मी बध गई।

जो नारी-ध्याया कल्याण का पीछा करती है वह उसी का व्यक्तित्व की परछाया है। उमर का धामें धारण जाना और धामें निरन्तर स्वयं कल्याण का धात्म-यातना का प्रतीक है। साध्य का एक आधार इस मूत्र में भी गिहित है कि कल्याणी गभवता है और वह मुन्नी युवती भी गभवता है।

कल्याणी उस युवती में समय हुआ चाहती है पर वह युवती है कि उस निरन्तर उपा ही दती है। उसका इस प्रकार का धात्म्यापन और उपाया कल्याणी का ही बाध और धनमानस की प्रतिच्छाया है।

इस संपूर्ण घटनाक्रम में एक निष्पत्ति यह भी निकल सकती है कि विवाह जानि और प्रात की सन्तुष्टि सीमा में सफल नहीं हो सकती। स्वयं कल्याण का जीवन इसका प्रमाण है। इसी धात्म जीवन का प्रोपण हम देवलालीनर उमपती में भी पाते हैं। इस समस्याप्रस्तुत नियति का समाधान-गवन इस रूप में मिलता है कि यदि भिन्न प्रान्ता और ससृष्टियों का बीच धावागमन की सुविधा मिले तभी इस सकीणता से पार पाया जा सकता है। वज्ञानिका न तो यह सिद्ध कर ही सिया है कि जितना सबध दूर का होगा उतना ही पत्रप्रद हागा। कल्याणी का जीवन की यही विश्वासना थी कि वह मिधा समुदाय में ब्याही गई और वही उमरी घृत्न का कारण बना। कल्याणी जब वही-वही बातें करती है तो वकील उसका पूरी बातों को न समझ ही पाते हैं और न तन्नुकून आचरण ही कर पाते हैं। इन सारी बातों का पति की अनुपस्थिति में विस्फोट होना भी एक गहरा ध्रुव रखता है। पति इसलिए बाहर है कि वह प्रमाखित कर सकें कि वह भी पृथक व्यक्तित्व का अधिकारी है और स्वतंत्र रूप से काम-काज कर सकते हैं यद्यपि यह चितना ठाकरक ही अपराधी मानस का प्रतिबिंब है।

कुल मितारक यही कहा जा सकता है कि यह संपूर्ण मृग मरीचिका सिवा स्वप्न पर आधारित है और इसमें हम कल्याणी का रागी मानस का सही-सही रूप में रोग-वृत्त प्रस्तुत कर सकते हैं।

३ प्रतीक

वानी—पत्थर राजधानी है । आज की राजधानी नई दिल्ली, क्या ऊपर और क्या भीतर पत्थर नहीं है ? खूबसूरती उसकी पत्थर की और दप की है पानी और घास की ठण्ड नहीं बिछी है तो भी उसके ऊपर तनकर मगरूर पत्थर गुराँना है दीघता नहीं ?

बोली—जी नहीं आप भूल न कीजिएगा । हम रुपए व जीव हैं दिल्ली हम खान है । सब कहीं स रुपया यहा खिचकर आता है । चतुर के लिए कौन जगह यहा से अच्छी हागी ? पर आप कहिए कि आपको दिल्ली नरक नहीं मालूम हाती है ?

पर तपोवन मरा सपना है भारतीय तपोवन । सपना क्या मुझे सपना रहेगा ? पर आप हैं तब मैं निराग क्यों हा जाऊ ? क्या दखते हैं ? नहीं आज मैं पागल नहीं हू । ठीक है कि मुझे दिल्ली मे ही मरना और गडना है पर आप क्यों यहा जमकर नहीं बठ सकत ? भारतीय तपोवन आप हो सन्ते हैं कोई विधा नही काई पद अधिकारी नही विभाजन नही । सब आप—सुनते हैं ? सज आप । मैं दस हजार तो कर लूगी जेवर हैं बच दूगी । दो बीभे हैं भुना लूगी । दम पूरे करके चक आपका दे दूगी । सुनते हैं ? या आप सुनते भी नहीं हैं ? चरु से आग सब आप जानें क्या है आपको ? क्या आप मेरी तरह हैं ? आप स्त्री हैं ? आप डाक्टर हैं ? आप पर किस्मन का गाप है ? क्या राक है आपको ? मैं ता मशीन हूँ कट-कट-कट-कट रुपया बनानी हूँ हर काम रुपया मागता है है न ? यह दुनिया का सच है तब मैं रुपया बनाऊगी लाऊगी मागूगी बनेरुगी और नाकर आप पर पटक दूगी । आप होंगे तो भारतीय तपो वन हो जाणगा । मैं आपका पा गर्द और भारतीय तपोवन को जनमा गई तो मरकर भी न मरूगी ।

वाली—सच कहिए मैं भी सच कहती हूँ कि अगर मुझपर शाप न होता तो मैं घन छाडकर तन और मन स आपके सपावन की ही हो जाती फिर भी जब होगा, लिल्ली से भागकर आपके इस वन म आ रहा करूगी यह मेरा बचन समझिए नहीं-नहीं डाक्टर नहीं आश्रमवासिनी बिल्कुन आश्रमवासिनी (पृ० १४१ से १४४)

प्रतीकाय

पत्थर के प्रतीक स राजधानी की जडता एव नीरसता को ही व्यक्त किया

गया है। पानी और घास की ठण्ड में भी राजधानी का यह पत्थर मगर मारुतुर्गाता है। महानगर का जीवन कितना यात्रिक एवं निष्प्राण होता है इसी का एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत पत्तियाँ में निहित है।

दिल्ली का आर्थिक जीवन चुबनीय आवरण रखता है कि मारा रूप्य धार सारे रूप्य वाले उसी का आर गिच चन आत ५ । इसमें दिल्ली की नारकीयता और घटनी ही है।

भारतीय तपावन का रूप में बर्याणी का असन्तुष्ट एवं अभिगप्त जीवन की एक आकाशा मात्र ही परिचित होती है। यह तपावन उमरा स्वप्न भी है और महत्वाकांक्षा भी। भारतीय तपावन की जो रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की गई है उसमें तपावित सस्याघ्रा का नियम और उपनियम का ही नकार गूज रहा है। स्वप्न को साधारण करने का निगम ही बल्याणी उमाप्रस्ता सी नजर आती है। कट-कट-कट-कट रूप्य धनानवाली मंगीन के रूप में दिल्ली का औद्योगिक जीवन का ही एक प्रतीक चित्र प्रस्तुत किया गया है। बल्याणी का उमाद और मनक इतनी बढ़ती है कि वह सनिपात ग्रस्त व्यक्ति के समान एक ऐसा उद्गार प्रकट करती है जिसमें उसकी अन्तरात्मा की अनुगूज है मैं आपका पा गई और भारतीय तपावन को जनमा गई ता मरकर भी न मरगी। इस महत्वाकांक्षा में बल्याणी का अचतन मन की ही अभिव्यक्ति है जिस भारतीय तपावन एक ऐसा भरहम हा, जो उसकी आत्मा का पावा को पलक मारते ही भर दे।

गाप का रूप में अपने ही अभिगप्त जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। उसका पति न उस धन कमान की मंगीन ही बना दिया और इस धन की माया में वह एसी गिरफ्त हुई है कि छाड़ना चाहने पर भी उस छोड़ नहीं पाती। धन इतना प्रबल हो उठता है कि फिर तन और मन भी पराये हो जाते हैं। आश्रम वासिनी का प्रतीक में बल्याणी का पवित्र और निष्पाप जीवन की ही कामना निहित है। जब भी वह असंगती का सत्रास सं छूटेगी तो इसी तपोवन में आकर वह चन की वासुरी बजाएगा। या तपावन बल्याणी का प्यासे जीवन के लिए एक सहर्ष मारता हुआ गीतल जल का सरोवर है जिसमें वह अपना युग युग की प्यास बुभा सवगी।

उप-यास मुखदा

१ प्रतीक

धरामद में खाट रिद्ध जाती है उस पर स देखती है कि सामन सिफ फला बट है, सिफ फलाबट न घर है न दुकान है न मनुष्य है न समाज है। बस कवल रिक्त सामन है जो दीखता है इसमें रूप्य बन उठा है। वही चिन बना

पला है। बीच में बाधा नहीं व्यवधान नहीं। कुछ ही दर पर धरती ढल गई है और ढलती हुई जाने वहा अथाह में पहुंच गई। पार मदान विद्या है माना प्रतीका में हा, वहा वही भूरी-सी मकाना की विदिया भी दीखती हैं वही हरियाली झकड़ी हुई है वही रंग मटमला है दूर दो एक पतली सफेद लकीरे भी दीखती हैं जा नलिया के निगान हैं पर दर हात हाते यह सब माना एक धुंधली रेखा में सिमित कर समाप्त हो जाता है वही हमारा क्षितिज ! (पृ० ४)

प्रतीकाय

अतीत की आर स सरकता दृग्ग जावन जब वतमान पर टिक जाता है ता लगता है जस यही जीवन का भित्तिज है। और जब मनुष्य उस आर दृष्टि उठाकर देपता है, ता सामन के अवस्थित वातावरण के विविध उपालन यक्ति के निजी जीवन की सफलताया असफलताया के प्रतीक बन जाते हैं। प्रस्तुत प्रतीक की सिफ फनाबट सुखदा के निजी जीवन की फनाबट है, जिसमें अब कुछ रह नहीं गया है और उस सब को पूरी तरह अनुभव करन में कोई बाधा नहीं है। मकाना की विदिया मुखला के निजी घर की वतमान स्थिति का चोन्नन कराती है और पतली सफेद लकीरें बताती हैं कि कभी उसके जीवन में भा सरसता थी पर अब वहा कुछ भी नहीं है। मय-कुद उसके जीवन की व्ययता और रिक्कता में सिमित गया है और यही सुखदा के जीवन का भित्तिज है।

२ प्रतीक

साचती हू कि मेरा भी कोई स्थान हागा, काली बूद की भा बाद जगह होगी ! वह बूद अपन आप में ता काली ही है फिर भी इस निरंतर वनत विगडते फिर भी मया वतमान चित्र पर बूद के कालेपन से क्या मतलब साधा है ? वह मतलब मेरी समझ में कुछ नहीं आता। हागा वह कुछ तो हागा पर आज तो मैं उम कालपन से बहल बस हू। (पृ० ५)

प्रतीकाय

सुखदा की दृष्टि में उसके अपना जीवन इस सृष्टि में एक काली बूद-सा है। काली बूद का कालापन विशेष है। इसमें सुखदा के जीवन का दृष्ण-मक्ष है उसकी अपनी दृष्टि में जिसके कारण अब वह एकाकी जावन वितान की बाध्य है वह मानती है कि उमका जीवन भल ही अभावात्मक रहा हो उसका अस्तित्व ता फिर भी है ही। अपने अस्तित्व का यह मान ही उम जीवित रहे हुए है—मय अपराधो और अभिमाया को साथ लेकर भी यही जीन के लिए

पाफी है और सुखना शायद इसी कारण जिये जा रही है।

३ प्रतीक

जान गई हूँ कि मैं धीरे धीरे किनारे लग रही हूँ। किनारे क' प्रागे क्या है पार क्या है? (पृ० ५)

प्रतीकाय

किनारे लगने का सामान्य आणव्य पार लगन गतव्य अथवा मजिल तक पहुँचने का है पर अपने अभिप्राय को बनाए हुए भी यहाँ किनारा मृत्यु का प्रतीक के रूप में आया है जिसकी ओर ध्यप्रस्ता सुखदा बत रही है। या किनारे लगना मुद्दाबरा भी अपनी साधकता लिये हुए है।

४ प्रतीक

पति का मुँह पर अडिग विश्वास कवच की भाँति मुँह सुरक्षित रख रहा है किनारा क' बीच में बधी जिन्दगी का प्रवाह किनारों के साथ थोड़ा थोड़ा रगड़ लेना हुआ और कभी मानो मीठावग उन किनारों के बाहर भी भाग लेता हुआ चला जा रहा था कि इतन में बाहर का एक भाग मुँह छू गया और वह ऐसा आया कि मुँह अवकाश भी नहीं मिला और मैं उसकी हो गई। (पृ० १३)

प्रतीकाय

प्रस्तुत प्रसंग में सुखना ने किनारों क' बीच में बधी जिन्दगी क' प्रवाह की बात कही है सो किनारे यहाँ गृहस्थ जीवन क' दायित्व और मर्यादाओं क' प्रतीक है जिनके अंतगत गृहस्थ स्त्री अथवा पुरुष अपना जीवन बिताते हैं। मीठावग किनारों क' बाहर भी भाग लेता हुआ सुखदा का जीवन इस बात का प्रतीक है कि अपनी सहज वृत्ति के कारण गृहस्थ और पारिवारिक जीवन की मर्यादाओं की अवहलना भी बट करती रही है। वहार का एक भोका सुखदा के बंधे बंधाय जीवन में सामाजिक जीवन और बाहर क' आवरण के प्रति सुखदा के मन को लुभा लन वाले अवसर या अवसरों का प्रतीक है, जिनके कारण सुखदा का मन गृहस्थ जीवन की ओर से हटकर बाहर ही बाहर विचरता रहा और फिर विखरता गया।

५ प्रतीक

हाथ आज कसा अचरज है कि मैं उन हरियाली घड़िया का टालती गई और किस मरीचिका के पीछे भागती हुई आज इस किनारे पर आ लगी हूँ।

प्रतीकाय

हरियाली भडिया सुखदा के अनीत जीवन के उन क्षणा की प्रतीक हैं जब सुखदा युवती थी। यदि उसने तनिक भी सोच विचारकर वे क्षण बिताये होते, तो उन क्षणा के सहारे उसके अपने जीवा में भी हरियाली आ पाती। वह जो निरन्तर रुखा और सूखा होता गया वह न हुआ होता। मरीचिका सुखदा की उद्दाम लालसा की प्रतीक है जिसके कारण वह पति और घर से दूर ही दूर हटती चनी गई और जब उसे हांग आया तो पाया कि वह दूसरे किनारे पर है जहा से लौटना असभव तो नहीं है पर एक या अनेक कारणों से वह साथक भी तो नहीं है।

६ प्रतीक

साईं न थी पर जगी हुई भी न थी। उस हालत में मैं अनुभव किया कि कोई हाथ मेरा तर्किया टटोल रहा है। मेरे मन में अनिश्चय न था। मैं और भी सोई बन गई यानी मैंने अपने को भी न जानने दिया कि मैं सोई नहीं हू। उस हाथ ने तर्किए के नीचे कुछ रखा सोई हुई मुझका जाने जिसने बताया कि वह पत्र है। फिर हाथ हट गया और कोई वहा से चला गया। वह कदम कदम चला। दरवाजे पर पहुंचा दरवाजे को आहिस्ता से छूकर उसे हटाया। मैं नींद में स एकाएक जोर में चीख उठी। चीख सपने में से आई थी और मैं सुध में न थी—नींद की बेसुधी ने ही बताया कि आदमी ठहर गया है ठिठका है, आ नहीं रहा है। (पृ० ४३)

प्रतीकाय

प्रस्तुत उदाहरण में सुखदा के अवचेतन की स्थिति का सटीक चित्रण है। प्रस्तुत स्वप्न और उसमें की घटना इस बात के प्रतीक हैं कि सुखदा के अवचेतन में यह धारणा घर कर चुकी है कि सुखदा को जैसा जीवन जीना का लालसा है उसमें पति बात का कोई स्थान नहीं है इसलिए इस पति नामक जीव को अव सुखदा के जीवन से हट जाना चाहिए पलायन कर जाना चाहिए ताकि सुखदा अपने प्रेमी लाल के साथ रगिनियां में जी सके।

यह स्वप्न सुखदा के काम्य चिंतन (विशुफल थिंकिंग) का ही प्रतिफल है।

७ प्रतीक

नेकिन जो नहीं होना था नहीं हुआ होना था नहीं हुआ, घर किनारे से गूँथ तक फले इस समुत्तर में बिड़डकर मैं हटती ही चली गई। यहा तक कि अब कहने को यह कहानी ही बनकर रह गई है। (पृ० १११)

प्रतीकाय

किनार म गूय तक फला ममुत्तर जीवन का प्रतीक है जिसके पारिवारिक और गृहस्थ जीवन रूपी एक किनार पर सुखता थी जो एक समय वहा म रिद्धिड गई और फिर सावजनिक जीवन के गूय क रूप म विस्तृत जीवन भर भटकती हुई वह कही की कही पत्रक गई । अत्र सुखदा क पास पहल का या किनार क सानिध्य का बुद्ध है ता वह अज्ञान की एक कथा मात्र है और कुछ भी नहीं ।

उपयाम विवत

१ प्रतीक

सच यह था कि इस नय परिच्छेद का माहिना अपना पुस्तक क अग्र रूप म नहीं दखता थी । वह प्रशिप्त है आक्स्मिक मयाग म हा गया है । (पृ० ५५)

प्रतीकाय

माहिना की जावन पुस्तक का यह नया प्रशिप्त परिच्छेद गृहस्थ भुवन मोहिनी क जीवन म जितन क आक्स्मिक रूप म पुन आ जान का प्रतीक है । जा एक वार हट गया था या कि हटा लिया गया था वह अग्र रूप हा ही नहा सकता अथवा वह हटता नहीं हटाया नहीं जाता । इम प्रशिप्त बहना इसलिए और भा मायक है कि उसका आगमन अप्रत्याग्नि और अनजान हो गया था जिसकी माहिनी न कल्पना भी न की थी ।

२ प्रतीक

जितन ऊपर दख रहा था, वहा छत न थी बुद्ध और था छत मिट गई थी जम खुन गई हा और जहा अनत आ घिरा हा । उम अनत अगाध गूय क पट पर ही माना कुछ उम दीग्व आया था । उम दखत दखत अनबूझ भाव से मुस्कराया जस वह जहा था वहां था ही नहीं । (पृ० ५८)

प्रतीकाय

छत की अवस्थिति का जान रह जाना इम वान का प्रतीक है कि जितन का कल्पना निर्बाध रूप स मत्रिय थी और मुक्त गगन म विचरण कर रहा थी । अपनी ही एवाकी चिंतना म लीन एकत्र आरमकद्रित जितन जम अपने कल्पना-लाव म एक नय मसार का निर्माण कर रहा है मृष्टि क असीमित विस्तार म वह जस अपन स्वप्न का साकार कर रहा हा । किन्तु जब ध्यान टूटा

तो उसने अपन आपको ऐसा बनाने की चेष्टा की, कि वह विचारो के स्थितिज में नहीं यही वही आसपास ही था, ताकि उसके कल्पना-श्लोक की सीमा में कोई और प्रविष्ट होने की धृष्टता न कर सके। यह अतीन्द्रिय लोक में विचरण का काल्पनिक चित्र है।

३ प्रतीक

नागफास में ही ता बोये ह तो मैं ही उह काट और भाग लूंगा तुम्हारा दामन उनसे पाक रहेगा। (पृ० ६७)

प्रतीकाथ

नागफास यहा जितने के उन कार्यों के प्रतीक है, जिनके परिणाम से बचने के लिए वह माहिनी के यहा आश्रय लिये है पर जिनके कारण माहिनी और उसके घर की प्रतिष्ठा को भी आच आ सकती है। जितने सभवत बोलला ना गया है तभी न अपनी आश्रयदात्री के प्रति इतनी उद्धतता और अविनय प्रकट कर रहा है।

४ प्रतीक

पलंग के किनारे तक कालीन पर कितने और खुली जगह पर कितने डग आते थे, यह वह गिन गया। उसने डग बार बार गिन। उस विस्मय था कि हर बार वे उतने ही रहते हैं। काफी देर तक वह इस तरह टहलता रहा। इस बीच उसके लिए मानो कमरा न था न उसमें चीजें थी, वह उतना नया नपाया रास्ता था जो वह डगा से नापे जा रहा था और नापे जा रहा था। (प० १०१)

प्रतीकाथ

जितने का यह व्यवहार एवं आचरण उसकी उस मन स्थिति का प्रतीक है, जिसमें परिचित और अपरिचित, बाह्य और आंतरिक जगत् के प्रति एक सहज कौतूहल एवं जिज्ञासा है और जो कुछ नया अनुभव करना चाहता है किन्तु निरंतर के अनुभव से वह इसी निष्कप पर पहुँचता है कि जो जहा है मो है। माहिनी के सदम में वह जिस आश्वानन को प्राप्त करने का आकांक्षी है वह उस नहीं ही मिल पाता।

५ प्रतीक

वाई पूछे कि बिजली एनाएक कहा से चमक जाती है। चारा धार अधरा

है एसा कि माना एक नरार व नीच मव दृग्ग मिट गया हा । तभी वहा स रौध घाना है एर जिजना का रग जा मव-बुद्ध का चीरता हुई एक साथ चमव उठनी है और उमका उठना है । एसा ही बुद्ध विपिन व साथ दृग्ग । दा गहन ताण ना अधवार मानो टकरकर एक तीम प्रकाण का जम द आए । (प० १२५)

प्रतीकाय

यहा जिम जिजनी व कौपन की बात कहा ग है वह विचारा की जिजना है । मन का बाना-बाना घाणका व अधवार म परिग्याप्त है तभी उम अध वार रा चीरती हुई विचारा का जिजला कौषता है और तत्र विपिन (जितन) अनिणय की म्यति म बटा निणय को प्रकाण-सा अनुभव करता है । एर प्रार मन व नानर की घाणका है ता ठूमरी घर माहिना व जवरानि ष्टा नान का उमका वृय है । साथ हा दनगर उत्तरायित्व व महज निवाह का राध भी कम नहीं है तत्र दन अधवार व पारम्परिक मधय म जिम तीम प्रकाण का जम हाना है वर निणय की म्यति तव पदुच पान का प्रकाण ही है ।

६ प्रतीक

साभ धार धार गहरी हा रहा थी तिन का बानाहन घमा लगता था । दूर पड दीखने य और मवान कही व्यक्त न था । मय प्रकृति ही था । जस वह उमक निण नई हा । व्यक्तिया म—अपन म अपना म और पराया म—वह इतना रूता आई था कि वह चारा घर खुरी फनी निर्व्यक्तित्वना उम नई और घनाया नग आई । यह है वह जिमम अपन का निदोष निया जा सकता है । कही दूर इक्की-दुक्का चीलें उय दीखी जा उड उतनी नहीं जिजना तिर रही थी । छाटी चिडिया बीच म पुर म हवा म फुटकती और टिप जाती । इस बानावरण म घरा म उठकर ऊपर मिमता दृग्ग घुग्ग भी माना आसमान की गो म यथास्थान नगना । उसकी कानिमा चित्र म रग मी नगती और दुखती नहा । वह इम एकाठ मूनपन व वाच बधी खटा रह ग । उम भला मालूम दृग्ग जम अपनेपन की जकट म खुल ग हा । (पृ० १४८ ४९)

प्रतीकाय

प्रमनु उदग्ग व पूर्वाद्धि म वातावरण की गम्भीरता दगायी गई है । वातावरण का निम्नघता माहिना व अतर की निम्नघता है । प्रकृति के माध्यकादान रग्य म वह अपन मन की निम्नघता और एकाकीपन का भूखने नगती है ।

इक्की दुक्की चीलो का तिरता हुआ दीखना, उसके हृदय में उठे भावों के धीरे धीरे उत्पन्न होने और अस्तित्व में आने का प्रतीक है। बिड़ियाएँ भी मन को अच्छे लगने वाले छोटे छोटे भाव ही हैं। धरों से उठकर ऊपर सिमटता हुआ धुआँ मोहिनी के मन की कुठाघ्रा और घुटन का धुआँ है जो पति की विशालता के आकाशीय विस्तार में सिमट और छुपकर अपनी नकारात्मकता को भी एक विशेषता के रूप में देखने लगता है। इसका श्रेय धुएँ को नहीं, आसमान को है जो धुएँ की कालिमा का उसकी नकारात्मकता को भी सुंदर बना देता है। ऐसी सुंदर कि चित्र में रंग सी लगती दीखती नहीं। उम विशालता का अनुभव करती मोहिनी आकाश के प्रति कृतज्ञता के भाव से भर उठती है और स्वयं को अधिक खुली अधिक उमुक्त अनुभव करती है।

७ प्रतीक

बादल गहरे हो रहे हैं विजली कड़ककर कभी भी टूट सकती है।
(प० १५७)

प्रतीकाय

बादल पुलिस की सरगर्मी सक्रियता और तथाकथित नातिकारियों को अपनी गिरफ्त में लेने के प्रयास के प्रतीक हैं और विजली का कड़ककर कभी टूट सकना नातिकारियों पर इसके कारण शीघ्र पर आकस्मिक रूप में आने वाला संकट का प्रतीक है। परिस्थिति जितनी गम्भीर है उसकी अभिव्यक्ति के लिए बादल और विजली का टूटना ही सटीक प्रतीक हो सकते हैं, जिनका कि यहाँ प्रयोग किया गया है।

८ प्रतीक

प्रखरता उसका मानो भीग आई थी वारुद सूखी ही हो सकती है। चित्त भीगा हाँ तो कुछ चल नहीं सकता, वारुद भीग में बकार होती है। (प० १७१)

प्रतीकाय

यहाँ प्रखरता का आगम्य नातिकारी जितने की उस तेजस्विता से है जिसमें अपने लक्ष्य के अतिरिक्त, गैर के प्रति कोई सरमता नहीं हो सकती थी, पर अपने प्रति तिन्नी के समर्पिता रूप और प्रणयानुभूति न उसमें जिस सरसता का संचार किया, उससे उसके नातिकारी जीवन का सुष्प पक्ष सूखा ही बना न रह सका। तब उसकी नातिकारी अरसिकता की वारुद का गीला होना

प्रतीकाय

यहा जितेन निणय की स्थिति पर पहुच चुका है कि उसे अब प्राति का रेतीला और जगली माग छाडकर समपण कर देना चाहिए और आत्मताप के रूप में पाव व नीचे की सरस धारा का अनुभव करना चाहिए अर्थात् जीवन को उसके सहज रूप में जीने की चपटा करनी चाहिए ।

११ प्रतीक

सब सुनसान था, रात हसती थी । तारे बहुत थ और बहुत घन थे और बहुत उजले थे । चांद था नहीं, पड सोय थ पानी भी साया लगता था, अगर्चे बह रहा था । बस डाड की छप छप की आवाज एक आवाज थी, या फिर किनारो स आती भितली की टेर जो मौन ही को तीखा करती थी ।



रेत ठडी थी शायद जरूरत से ज्यादा ठडी थी । रात ठडी थी और सरदी मामूली से अधिक थी, लकिन तब उसे सुहावना लगा और शीत का स्पश उसे सुखकर मालूम हुआ । वह अपने पूरे फलाव में लेटा रहा । (प० १११ १२)

प्रतीकाय

एक निश्चय लेकर जितेन अपने आप में प्रसन्नता का अनुभव करता है— आत्मिक प्रसन्नता का अनुभव । वह भी प्रकृति के अनेक उपादानों की तरह एकाकी सुख का अनुभव कर रहा था । प्रकृति के उपादान यहा जितेन की एकाकी साधना के मुख व प्रतीक है ।

हलकी सर्दी न मौसम को और भी सुहावना बना दिया था सुखमय बना दिया था । इस सुखद और सुहावने वातावरण में उसके अपने मन की प्रसन्नता यक्त होती सी लगती है इसलिए जितेन स और स निश्चित है जिस नय माग को अपनाकर वह और भी गौरवशाली एवं विस्तृत हो गया है ।

उप-यास व्यतीत

१ प्रतीक

हाथ जोड मैं होटल से बाहर आ गया । मेरी बापुरुपता ही थी । समय पर मैं आछा रह जाता हू । शायद भीतर की कविता जल्दी मुझे आदमी नहीं बनने देती । डेरे पर आकर अपने से कम प्रोध मैंने नहीं किया । और एक आहत अभिमान भी दश दे रहा था । नहीं जानता प्रेम क्या वस्तु है । पर मात्रुम हाता है अपने साथ वह एक युद्ध है । अपने ही किलो को एक एक कर उसमें

ताडना होगा है। जिन्हें स्वयं बड़ प्रयत्न में बाधा था, निमग्न होकर उन्हीं का गिरात जाना पड़ना है। इस तरह बड़ा एक निरन्तर आहुति है जिममें पल-पल जलना पड़ता है। (प० ८५ ८६)

प्रतीकाय

परिमितिया जयन में जिस व्यवहार की मांग कर रही थी वह उन्हें नहीं द पा रहा था। छाछा रह जान में यह भाव निहित है कि वह समयानुसार आचरण नहीं कर पाता। भीतर का क्विप्ता में तात्पर्य अनिश्चित सहृदयता और भावुकता में है इसी का अनिश्चित उम मानवीय घरातल पर नहीं रहन देता। अपने में कम श्राप करने में यही व्यक्तित्व जाना है कि उसका मन में एक प्रकार की दुविधा है और डर भी है। मस्तिष्क बुद्ध कहता है और हृदय किसी दूररी आर ही टलना है। दग में वृश्चिक-रूप का प्रतीक अन्तर्निहित है। अग्नि मान पर वृश्चिक का आराप है। किल बंधन का प्रतीक है जिन्हें ताडकर व्यक्ति खुला हवा में सास ले पाता है। इन बंधन का व्यक्ति न स्वयं ही अपने मन पर आरापित किया था अब वही बड़ निर्मोहीनन का साथ उह ताडन के लिए बाध्य है। निरन्तर आहुति में आत्म-बलिदान का यत्न की प्रक्रिया आभासित जाना है। इसमें निष्पत्ति यही निकलना है कि प्रेम में व्यक्ति का अपनी ही भावनाओं का हाम देना पड़ना है।

२ प्रतीक

कहते हैं विवाह करत हम हैं जाना भगवान का यहा है। यह भी सुनता है कि जन्म-जमान्तर तक विवाह की व्याप्ति है। दा एक-दूसरे में एक-दूसरे में ही नहा जाने पहले से चल आन हैं। इसमें यह काम कतव्यता में नहा जाता भविष्यता से हाता है। सचमुच ऐसा ही लगता है। कहते योग्य परिचय हमारे बाच में न था परिचय से आगत सामाजिक परिचय और विवाह सामाजिक है। हम जाना ने अच्छी तरह देना कि वह सामाजिक है। हम दा व्यक्ति रूप में ही मिल निपट और एकाका व्यक्ति। किन्तु काइ निपट नहा है और काइ एकाकी नही है। फिर भी परस्पर दो लेकर हम जाना एम ही हा आय। और इसी रूप में मिलकर साचा विवाह करेंगे, सामाजिक हंगे।

पर मोचत हम हैं रचता विधाता ही है तो उसकी रचनाओं का तक न जान का जाना है। पर हमारी भावनाओं के जन्मे जान का कारण हमारे लिए उसमें एक ऐसी विवगना जानी है कि रचना का हम अपनी भी कह पाते हैं। (प० ८८)

प्रतीकाय

भारतीय संस्कृति में विवाह की जन्म-जमान्तर का सबंध बनाया गया है।

इस प्रकार भौतिक सम्बन्ध पर आध्यात्मिकता का आरोप किया गया है और इसे अज्ञात नियम से जोड़ दिया गया है। व्यक्ति रूप में मिलने में यही भाव निहित है कि जयन्त और चट्टी अपने संबंधों में समाज को कोई स्थान नहीं देना चाहते, किन्तु किसी के ऐसा सोचने से क्या विवाह सस्था पर पड़े हुए आध्यात्मिकता के आवरण को दूर किया जा सकता है और उसकी सामाजिक महत्ता को कम किया जा सकता है ?

दूसरे अनुच्छेद की प्रथम पंक्ति में 'मैन प्रयोजेन एण्ड गाड डिस्पाजेज' की भाव मिलती है। विधाता की रचनाओं के तब को बुद्धि द्वारा नहीं ग्रहण किया जा सकता। इस प्रक्रिया में आश्चर्य की बात यही है कि व्यक्ति यही साच पाता है कि उसके किये ही सब कुछ हा रहा है जबकि वास्तविकता यह है कि कोई अज्ञात शक्ति संपूर्ण कार्यों का सूत्र-संचालन करती है। इतना हान पर भी व्यक्ति को अपना काय अपने द्वारा ही सम्पन्न किया हुआ प्रतीत होता है। प्रस्तुत पंक्तियों में वैयक्तिक मोह और अज्ञात सत्ता के सूत्र संचालन के द्वंद्व को स्पष्ट किया गया है।

३ प्रतीक

कमरा अकेला था। हम दो ही थे। मैं भी भीगा हा आया। चेष्टा करके बोला वह तो सदा के लिए गया। नहीं अब लौटकर इस मरु-जीवन में वह वस्तु तो कभी आनेवाली नहीं।

क्या कह रह रह हों, जयन्त। चुप हो जाया। मुझे मारा मत।

तभी कहता हूँ, अनिता, मुझसे ब्याह श्याह की बात मत करा।

करूंगी। नहीं तो मुझे पहले जहर क्या नहीं दे दने ?

मैं विपाद में हूँसा। कहा, ता मुझे जो जहर चाहिए उसका नाम विवाह है ? अच्छा दो। (प० ६४)

प्रतीकाय

जयन्त प्रेयसी के सान्निध्य में है। अतीत जीवन की स्मरण कर उसके हृदय में एक प्रकार की आद्रता उत्पन्न हो आई है। प्रेयसी के अभाव में वह अपने जीवन को मरु-जीवन समझता है। मरु-जीवन यहाँ नीरसता एक एक रागता का प्रतीक है। स्वाभाविक ही है कि जयन्त की इस वान से अनिता का हृदय टूक-टूक हो जाए। वह ऐसी स्थिति में अपने प्राण को मृत्यु के आनिगन में पाती है। जहर देने की बात में गहरी आरमव्यथा का पुट है और प्रणय की स्थिति में यह जहर का प्रतीक बहु प्रचलित है। जयन्त का विपाद में हूँसना वर्तमान

परिस्थिति पर क्रूर व्यग है। इसीलिए जहर और विवाह का एक कर दिया गया है जो ऊपर से ता विराधाभास-जसा प्रतीत होता है परन्तु उसमें प्रभाव की दृष्टि में साम्य है। जहर और विवाह दाना का प्रभाव अनन्य होता है।

४ प्रतीक

गरीर तो जड़ ही है इसी में मड़ जाता है गन जाता है। प्राण प्रवाही है उसी व बल पर गरीर भ्रजेय बनना है। लेकिन मैं यह क्या कहूँ चना ये पनालोस बप बिना चुकने पर हा ता मैं कहूँ हूँ जब व्ययता का बोध चारा धार स गिरा गिरा को बेष कर मुझे जजर किा जा रहा है। अपने को अपन म लिए चला गया कही पूरी तरह देकर खतम नहीं कर सका इसी से तो मात्र पाता हूँ कि मैं हूँ और अभी भी मृत्यु में कुछ अन्तर पर हूँ। लेकिन जान पड़ता है कि भीतर-बाहर सब और स निरी व्ययता का ही चिह्नित करने के लिए मैं अवगिष्ट रह गया हूँ। कहीं घब गप नहीं है। सिफ यह है कि इस मुझ निनात रोने अघहीन को लोग दखें और पायें। खेत म हूलावे खड किए जात हैं वम ही शायद मैं हूँ। एक ठूठ जिसस नाग आगाह हा कि राह यह नहीं है। (प० ६५)

प्रतीकाप

प्रस्तुत पत्किया म गरीर का जड़ता का प्रताक बताया गया है। इसी से उसमें सहन और गलन है। प्राण चेतना का प्रतीक है उसी व माध्यम से गरीर भ्रजेयता का गौरव प्राप्त करता है। व्ययता का बाध जीवन व अभाव और निरयकता का प्रतीक है। आत्मदान कर पान की विफलता ही व्ययता को और घनीभूत कर रही है। अब जीवन म जस काई सायकता नहीं रही है। यदि कोई सायकता कही जा सकती है ता वह यही है कि लाग जयन्त की निरयकता स कुछ नसीहत लें। खेत व हूलावे की तरह ही जयन्त अपन आपको निष्प्राण एव अघहीन समझता है। हूलावा' मनुष्य की जड़ता का प्रतीक है।

५ प्रतीक

यह नहीं कि मैं नहीं समझ सका। लेकिन बरफ म स आ रहा था। मानो भीतर भी साई बरफ हा और उस साई सिल पर काई अमानव बठा ही। वह अमानव कहा स आ गया था? बीन ता था नहीं किसम से यह फल आया था? याद कर सकता हूँ कि कुछ मुझ हँसी आ गई थी। कहा-मुना था विवाह से मुक्ति मिलती है। (प० ११०)

प्रतीकाय

जयन्त ने चद्री से विवाह तो कर लिया पर वह उसकी कामनाओं की पूर्ति न कर सका। जयन्त अभी अभी बरफ में से लौटा है उसे लगता है कि उसके मन के भीतर भी इसी तरह की बर्फ इस हद तक जमी हुई है कि काम नाए सिर नहीं उठा सकती। चद्री के प्रति जयन्त का व्यवहार मानवोचित नहीं है। यहाँ पर अमानव निषेध एव क्रूरता का प्रतीक है। स्वयं जयन्त का आश्चर्य है कि उसमें ऐसी प्रवृत्ति नहीं थी, फिर यह परिणाम कहा से आ गया? उस समय की चद्री की स्थिति को देखकर जयन्त के श्रोत्र पर व्यगपूण मुखरहट विरक गई थी। सुना था, विवाह से मुक्ति मिलती है—इस वाक्य के दा अर्थ हो सकते हैं एक तो यह कि सामान्यतः मोक्ष प्राप्ति के लिए विवाह को अनिवार्य माना गया है, दूसरे अर्थ में मुक्ति से छुटकारे का भी अर्थ लिया जा सकता है जो कि यहाँ व्यंग्याय ही होगा। जयन्त ने अनात रूप से व्यग्य किया और वह चद्री की चेतना में गहरा घँसता गया।

उपन्यास जयवधन

१ प्रतीक

कुछ यहाँ, अघेरा है और आदिम, जो चुनौती-सी देता है वह अतन्वय है। उसमें चमक नहीं, धार नहीं, मिट्टी के मानिद वह मद और मला है। (प० ६)

प्रतीकाय

भारत आदिम मृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ का जीवन और सञ्चालन रहस्य के आवरण में लिपटे हुए हैं। भारत की यही भिन्न प्रकृति एक विदग्गी को ललकारती है। तक के माध्यम से भारत को नहीं समझा जा सकता। भारत में ऊपरी चमक-दमक नहीं है यहाँ के व्यक्तियों में प्रखरता भी नहीं है। मिट्टी के समान ही उस कान्तिहीन और मलिन कहा जा सकता है। अघेरा और आदिम भारत की पुरातनता एव रहस्यमयता के प्रतीक हैं। चमक और धार कमरा वैभव एव प्रखरता के प्रतीक हैं। मिट्टी स्वाभाविकता की प्रतीक कही जा सकती है, जिसमें प्राकृतिकता तो है पर कान्ति और दप नहीं है।

२ प्रतीक

सब शात है, सागर की सिसकी भी कुछ शात मालूम होती है नहीं तो पछाहें उसकी बब खती हैं। (पृ० ११)

प्रतीकाय

सब शात का साम्राज्य फला हुआ है। इस शान्ति से हूस्टन अपना

तात्कालिक स्थापित कर लेता है। सागर की सिसकी उसकी उद्विग्नता की प्रतीक है और सागर की गति इस बात की प्रतीक है कि उद्विग्नता समाप्त हो गई है और उसका स्थान धीरता और स्थिरता ने ले लिया है।

३ प्रतीक

जयवधन को दया मिला था हुई। व्यक्ति नहीं, वह घटना है। वह दो, व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं, वही भीड़ में वह खा भी सगता है साधारण-स्वल्प पर हुआ वही तो विजली का जीता तार जस छू गया धक्के और अचम्भे से आत्मी भनभना आता है। धक्का और भी प्रबल शायद इसलिए होता हो कि तुम उसकी तनिक भी आगा नहा रखते। बढ़ते हो कि करुणा करोग पर कुछ आता है कि तुम स्तब्ध बंधे से रह जाते हो। तुच्छता समझ कर जहा हाथ डाला वहा ज्वाला दमक आए तो कसा लगे ? (प० १७)

प्रतीकाय

यहा घटना औसुख्य की प्रतीक है जिसके प्रति सभी का ध्यान आकृष्ट होता है क्योंकि वह बुद्ध अनोखी और विलक्षण होती है। जयवधन चाल-दाल से तो मामूली आदमी लगता है किंतु जब कोई उसके सम्पर्क में आता है तो वह उसमें विद्युत् जसी त्वरा और भनभनाहट पाता है। जयवधन पर जब कोई दया से द्रवित हा उसे उपवृत्त करने के लिए आगे बढ़ता है तो उसके आश्चर्य चकित रह जाने के सिवा और कुछ नहीं हो पाता। जिस राख को मामूली समझा था उसमें से ता चिनगारिया फूटने लगी। विजली का जीता तार त्वरा और स्पन्दनशीलता का प्रतीक है। स्तब्ध बंधे से रह जाना विस्मय विमुग्धता का प्रतीक है। ज्वाला दमक आता तीव्रता एवं प्रकाश का प्रतीक है, जो कि जयवधन के व्यक्तित्व में समाये हुए हैं।

४ प्रतीक

अभी तो इन दीवारों को मोटापा देने वाला राज्य का नियम रोमता है और मैं इसलिए रह आता हूँ कि मेरी सडाई दीवार से नहीं है हृदय से है। दीवार टालकर पीछे हटता है। उम हृदय तक बात जब भी पहुँचे। मुझे धीरज है, काल अनन्त है यहा जल्दी क्या है ! (प० ४३)

प्रतीकाय

प्रस्तुत अनुच्छेद में दीवारों का मोटापा बंधन का प्रतीक है। आचार्य

हृदय-परिवर्तन करना, चाहते हैं इसलिए दीवार को वे बाधा के रूप में नहीं पाते। उनका ध्येय अखण्ड है और वे किसी भी परिवर्तन के लिए प्रतीभा कर सकते हैं।

५ प्रतीक

हो सकता है काल को शिक्षा देने की मेरी महत्त्वाकांक्षा नहीं, फिर शक है कि लहरो में सागर की यथाथता है। उसका गाम्भीर्य शायद थाह में है, चलते काल में क्या हमें अचल नहीं रहना है ? (पृ० ४५)

प्रतीकाय

आचार्य काल प्रवाह को मोड़ देने की महत्त्वाकांक्षा नहीं डोना चाहते। उनकी दृष्टि में सागर की वास्तविकता लहरो की गतिशीलता में नहीं है अपितु उसका गाम्भीर्य जल में है। काल का दिशा देने में युग परिवर्तन का प्रतीक निहित है। सागर की गहराई में ही उसका मूल तत्त्व रेखांकित है। उसकी गतिशीलता तो एक ऊपरी चीज है। काल प्रवाह में जो संस्कृति अपने को जितना स्थिर रख सकेगी वह उतनी ही महान् है।

६ प्रतीक

मैं विस्मित भाव से आचार्य को सुनता और देखता रहा। मालूम हुआ कि वह पराङ्मुखी नहीं बल्कि पराक्रमी व्यक्ति है। किसी क्षितिज पर उसकी मनीषा चकना नहीं जानती। प्रयत्न उसमें थकता नहीं सदा पार की टोह में रहता है। सच एक है इससे अनन्त है। इधर आर नहीं है इसलिए उधर वहाँ कोई पार भी नहीं है। यह जानता है और यही ज्ञान उसमें श्रद्धा लाता है गायद भक्ति भी लाता है पर रुकाव नहीं लाता। प्रश्न को उसमें मद नहीं करता प्रश्न अपनी ओर मुड़कर केवल स्वस्थ होता है कम तीव्र नहीं होता। (पृ० ४८)

प्रतीकाय

। -

आचार्य जीवन के प्रति पलायनशील नहीं बल्कि प्रगतिशील है। उनकी बुद्धि एवं प्रतिभा कोई सीमा नहीं जानती। वे सदा मूल तत्त्व पाने के प्रयत्न में रहते हैं। उनका सत्य आर-पार की सीमा में वधा हुआ नहीं है। उनकी यह स्थिति किसी भी रूप में गतिहीन नहीं है। वे जिन प्रश्नों को सुलभमाना चाहते हैं उन्हें सुलभाकर ही दम लेंगे। वस्तुतः उनकी बौद्धिक चेतना विक

और काल की सीमा में आवद्ध नहीं है। भिन्न-भिन्न आर-पार—सब सीमा के प्रतीक हैं।

७ प्रतीक

अब लिख रहा हूँ और रात गहरा रही है वायु में भी अभिसन्धि की खुनक मालूम होनी है। बाहर गान्ति शक्ति हो तो बाहर शक्ति की ही आगका। (प० ६१ ६२)

प्रतीकाय

हूस्टन स्वामी को यहाँ से लौटते तो विचित्र सन्ध्रम में थे। रात काफी बीत चुकी थी पर वे अपनी अनुभूतियाँ और वास्तविकताओं को लिपिबद्ध करना चाहते थे। उन्हें अपने चारों ओर के परिवेश में एक पडयत्र की गंध प्रतीत हो रही थी। रात के गहरान में विचारों के गहरान की भी संगति है। अभिसन्धि की खुनक में पडयत्र के रहस्योद्घाटन का प्रतीक निहित है। या आदमी अपने मन की बात को ही प्रकृति पर आरोपित करता चलता है, क्योंकि यह जगत् अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति है। जहाँ हम हैं उसी रूप में हम दुनिया का दम्ते हैं।

८ प्रतीक

बाहर विस्फोट नहीं है पर गडगडाहट रह रहकर सुन जाती है। अश्वत्थार सुलग रहे हैं। ऐसा अवस्था में इला का मन समझ सकता है, लेकिन लगा कि तल की तरह अभी दूर है। (प० १०१)

प्रतीकाय :

विस्फोट विद्राह एव अव्यवस्था का प्रतीक है। गडगडाहट आगामा सतरे की सूचना है। अश्वत्थारा के सुलगने में जनता के सुलगने का भाव निहित है। एक उत्तेजना एव गर्मी का भाव जनता में दृष्ट रह रहा है। बूल मिलाकर ये सब दाने भावी आगति की प्रतीक कही जा सकती हैं।

९ प्रतीक

हा सिर्फ लकीर से बिलवर, क्या लकीर ही नहीं है जिससे स्वदेग और विष्णु बनते हैं और जिन पर युद्ध होते हैं? लकीर भी नका पर असल में क्या नहीं फिर भी आदमी अपना और दूसरा का लह उल्लस उल्लास के साथ

बहाते हैं—उसी की आन रखने के लिए। लकीर बड़ी चीज है, बिलवर मिटाते हो, पर वह बीच म से मिटती नहीं है। कुछ रे के लिए शोभल होती है तो भास-भास यहा-बहा फिर बनी खड़ी दिखाई देती है। (प० १११)

प्रतीकाय

प्रस्तुत पत्तियां म राष्ट्रा के भौगोलिक विभाजन पर व्यंग्य है—लकीर के माध्यम से। लकीरो से ही स्वदेश और विदेश के बीच विभाजक रेखाए खिचती हैं और इसी आधार पर बड़ी-बड़ी लड़ाइया लड़ी जाती हैं। इसी के निमित्त युद्धोत्सव के रूप मे रक्तपात भी हाता है। आश्चर्य की बात है कि एक स्थान पर लकीर को मिटाने का प्रयास होता है, ता वह दूसरे स्थान पर उभर आती है। यहा लकीर स्वाय और पराय के बीच प्रतीक रूप म उपस्थित की गई है। इसका आधार कुछ भौगोलिक, कुछ राजनीतिक और कुछ ऐतिहासिक होता है, पर यह कोई बुनियादी आधार नहीं है। मनुष्य की सुविधा का सरजाम ही यहा सर्वोपरि है। जय और इला के बर्वाहिक सदम म भी यह लकीर निर्णायक भूमिका अदा करती है।

१० प्रतीक

बादल घिरे हैं। कुछ अदरुनी तनाव है कुछ बाहरी। जय को नाजुक समय म से गुजरना पड रहा है। आदमी कहा स प्रवास पाता है तब जबकि राह हो नहीं और चारो और अंधेरा हो? धायद प्रनाग तब उस ओत से मिलता है, जिसे श्रद्धा कहते हैं। बुद्धि तो जरा मे खिच हो जाती है। तब कुछ निपट भीतर से जहा अघकार है और नितान्त रिक्त, बिजली-सा नौघता लहककर कुल जल आए, तभी उजाला मिल पाता है भयया आदमी क दूट रहने की आशका है। बुद्धिमानो ऐसे समय जवाब दे जाती है। अत स्फूर्ति म ही कुछ भीतर से दमक आए तो ठीक तब सनट ही सीढी बन जाता है, नहीं तो—(प० ११८)

प्रतीकाय

प्रस्तुत अनुच्छेद म बादल समस्याओ से आक्रान्त जय के मन के प्रतीक हैं। बादला के प्रतीक मे एक सभावना भी निहित है। बादला म स जसे बिजली दमक उठती है वसे ही मकटा के सांगात्वार म अत स्फूर्ति प्रदीप्त हा उठती है और भाग उजागर हा उठता है। यह अत स्फूर्ति का भावोक्त आस्था म से फूटता है। बुद्धि के माध्यम से हम कूठा को दूर नहीं कर सकते। अतश्चेतन

के कुहामे का चीरता हुआ स्वतः स्फूर्त भाव आस्था के ही सहारे अपना माग बना पाता है। यदि ऐसा न हो तो आदमी का बौद्धिक एवं शारीरिक सतुलन भंग होने की पूरी सम्भावना रहती है। सफट ही सीढ़ी बन जाता है में 'मुश्किलें इतनी आइ कि आसा ही गइ की अनुगूज है। कुल मिलाकर इन पक्तियों में परामानसिक स्थिति का ध्वनि-संकेत है।

११ प्रतीक

बहुत दिनों पहले की बात है बीस शायद बाईस बरस पहल की। सागर का तट था। मध्याह्नक चली थी। तट सूना था। लहरों पर लहरों लेकर सागर आना और पछाड़ खाकर पीछे लौट जाता। मैं बराबर में साथ न थी। दो टग पीछे खड़ी जय को देख रही थी। वह पास थे और पूरे दीख नहीं सकते थे। आख स जैसे परस ही पा रही थी—जैसे युग बीत गए सामने अपारता थी और आखें उनकी बहा बिर हो गई थी—उस सामने खड़े व्यक्ति को अक में लेकर समूचा भीतर दुबका लू एसा जी चाहा समय की अनन्तता मुझ पर स बीत गई (प० १२८)

प्रतीकाय

नहरा का रूप में सागर का उद्वेलन जय और इला की ही मानसिक स्थिति का प्रतीक है। जैसे मानस में अनन्त कामनाएँ लहराएँ और अपनी विफलता में पछाड़ खाकर पीछे लौट जाय। आख स जैसे परस ही पा रही थी में ऐंद्रियताजय मुखानुभूति है। अपारता में सागर की अनन्तता एवं विस्तीर्णता का भाव निहित है ठीक उसी प्रकार जय अनुभव कर रहे थे कि जीवन भी कितना विराट है और इस विराटता में ही उनकी चेतना अटक गई थी। समूचा भीतर दुबका लू में अभेद की स्थिति का यौन प्रतीक स्पष्ट ही है। इस प्रकार की मानसिक जडता में न जान कितना समय बीत गया। कुछ क्षण एस होने हैं जबकि आदमी दश और काल की सीमा स परे जा लगता है। यहाँ भी परामानसिक स्थिति का संकेत है।

१२ प्रतीक

आप नहीं है ता उनका पास फिर कुछ बाह्य ही नहीं है (मानना हागा कि वह चतुर और चालाक है) कहा तब खेल बच्चा का रह जाता है। बाल हठ पर स्वयं हठ ठानकर उमर हम महत्व ही देने हैं। (प० १६५)

प्रतीकाय

वास्तव विस्फोटक तत्व का प्रतीक है। इस विस्फोटक स्थिति का व्यक्त रूप ही नाथ है। यदि नाथ को विरोधी पक्ष से हटा दिया जाए तो उनका विरोध वाल ऋषि के समान अग्रगम्भीर एवं अग्रभावी रह जाएगा।

बालहठ विरोधी पक्ष की चञ्चल एवं तकहीन प्रवृत्ति का परिचायक है। यदि इसकी प्रतिक्रिया में कोई सत्ताधारी बग स्वयं हठ से चिपक जाए तो यह अप्रत्यक्ष रूप से बालऋषि-सदृश विरोधी पक्ष को स्वीकारन के समान ही होगा।

१३ प्रतीक

रात गहरा रही है। जय का ध्यान आता है, वह साथे हंगे या जगे भी हो सकते हैं। कितनी की कितनी भावनाओं के वह केन्द्र हैं। मुक्त-तुक्त के समान सामान्य हो सकता तो क्या दुभाग्य से बच न जाता? पर हाँ सकता है कि राज्य को ही उसने अपने लिए सूली माना और इसीलिए स्वीकारा हो। सचमुच क्या जीवन त्रास ही नहीं है? प्रभु ईसा को कीला से सलीब पर ठाका गया। इस आसन की कीलें सोने की हैं तो क्या वह इसीलिए सलीब से ज्यादा या उससे कम है? (पृ० १६६)

प्रतीकाय

बढ़ती हुई रात की गभीरता के साथ बिलवर की अनश्चेनना भी वाचाल हो जाती है। वह कल्पना करते हैं कि इस समय जय निद्रावस्था में हंगे या जाग्रतावस्था में। जो कुछ भी हो, राष्ट्र के विनाश जन-समुदाय की भावनाओं के वे प्रतीक हैं। उन्हीं के बून पर राष्ट्र गिरता है और ऊपर चढ़ता है। जय के लिए सत्ता का सिंहासन फूलों की सेज नहीं है बल्कि वह तो उनके लिए त्रासदायी सूनी सिद्ध हो रहा है। सूली यहाँ भयकर त्रास की प्रतीक है, जिसके सदृश में ईसा ममूर आदि की पीड़ा हमारे सामने उभर आती है। या इसमें एक प्रसंगमत्त्व (एत्युजिवनस) भी है। सत्ता का सिंहासन स्वर्ण निर्मित होने के कारण मोहक ता है पर जो व्यक्ति उस पर बैठता है उस ता वह काटा की शय्या ही प्रतीत होता है। निष्कप रूप में यही कहा जा सकता है कि सत्ता के सिंहासन पर जो भी बैठेगा, उसकी पीड़ा कम त्रासदायी न होगी (धन ईश्वरी लाइज दो हँड दट वीयस दी फाउन)।

१४ प्रतीक

सच ही आदमी पत्ते के गानिद है। हवा की हर हिलोर उस कँपा दती है और फिर प्रकाश की एक किरण उमे हुलसा भी आती है। (पृ० १७३)

प्रतीकाय

आदमी का मन पत्ते के समान चंचल है। जिस प्रकार हवा की एक लहर उस कपित करती है और प्रकाश की एक किरण उस चमका जाती है उसी प्रकार लिजा भी पद-नाभ के प्रतापन म और जय की वृषा-वार का पाने के उल्लास म बुद्ध-की बुद्ध हो गई। निष्कप यह निक्ला कि महत्वाकांक्षा की परिपूर्ति के प्रतापन म आदमी बुद्ध-का-बुद्ध हो जाता है, तब उसका सिद्धान्त पिघल जात है।

१५ प्रतीक

अब मैं वहा भवेला या। रात चाल्ना थी और आसमान तारा स ढका हुआ न था। कई मिनट हो गए जब जयवधन आए।

आत ही हाया म लकर मुझे तम्न पर बिठाया आप पास खीचकर कुर्सी पर बठ। बोन, इन तारो को जानते हो ?

राजनीतिक आप स उस होने हैं। वे जतान को हैं, जानने को नहीं बितने अनन्त जगत् हैं जो मैं उनम खो सकता। (पृ० १७७)

प्रतीकाय

जयवधन और बिलवर की मुलाकात तारा की छाया म हुई। दूधिया चादनी सबत्र फनी थी। इस समय आकाश म बुद्ध ही तारे दृष्टिगोचर हो रहे थे। वस्तुतः यहा आसमान मन के आकाश का प्रतिनिधित्व करता है तारो के ढका न होना यह सूचित करता है कि मन समस्याया स आकाश नहीं है बल्कि खुला है। स्वच्छ चादनी मन की उज्ज्वलता की प्रतीक है। हायो म लकर तम्न पर बिठाना बिलवर और जयवधन की आत्मीयता को प्रकट करता है। जय का प्रश्न 'इन तारो को जानते हो ?' इस बात का सूचक है कि वह प्रकृति के सौन्दर्य से अनभिन्न नहीं है बल्कि प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करके उसके मन को प्रसन्नता होती है। उसके विचार है कि राजनीतिक वास्तविकताया से इस कदर घिरे होते हैं कि वे प्रकृति की ओर ध्यान ही नहीं दे पाते जस वे सब समय बुद्ध जतलाने के लिए ही हो सृष्टि और प्रकृति को उहे जानना तो है ही नहीं। जय की कल्पना मे अनन्त जगत् आत हैं और वह उनम बढी साथ के साथ खो रहना चाहता है किन्तु क्या खो सका ?

१६ प्रतीक

आप उसके पास है सो अपनी अपनी हाडियाँ लकर पहुँचेंगे कि दाल अपनी गला सकें। (पृ० १८८)

प्रतीकाय

प्रस्तुत पक्ति म आचाय की गरिमा को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनका इतना नतिक महत्त्व है कि हर कोई उनका उपयोग करने के लिए ललचाता है। हाडियाँ स्वाय की प्रतीक हैं। भ्राम आचाय के नतिक महत्त्व की कृपा है। दाल का गला सकना अपन अपने स्वाय की परिपूर्ति है।

१७ प्रतीक

रात चादनी थी और गरमी उसमें से जा चुकी थी। छत खुली थी और इस समय हवा हलकी चल निकली थी, मानो प्रश्न डालकर मैंने प्रवाह को छेड़ दिया। (पृ० ११८)

प्रतीकाय

प्रस्तुत प्रसंग में चादनी के कारण गरमी का छूट जाना यह प्रकट करता है कि दिमाग की उष्णता जम चुक गई है और चादनी का प्रभाव जैसे उस पर क्रम बढना जा रहा है। छत का खुला होना मन के खुले होने को प्रकट करता है। हल्की हवा मन की स्वाभाविक स्फूर्ति की प्रतीक बूझी जा सकती है। इस समय जय का मन प्रशांत प्रवाह के समान स्वाभाविक गति से भ्राम बढ रहा है पर ईला के साथ हो जान के प्रबल ने उस प्रवाह को ध्वस्त कर दिया।

१८ प्रतीक

यह क्या है? भवर भवर, भवर! क्या यही है जो सच है? पर शायद यह सतह है सच गहरे में है और वह घोर है धिरता बहा स है यह ता छाया है। याद करू प्रणाम करू उसको, जो कूटस्थ है, अचल है ध्रुव है। (पृ० २१८)

प्रतीकाय

प्रस्तुत पक्तियाँ म भवर सतार की उलभन और मिथ्या तथ्य का प्रतीक है। गहर म ही सत्य का निवास है, उसी की छाया भवर के रूप में पानी की सतह पर फूट रही है। अन्तिम पक्ति म जय के प्रति बिलवर का थड़ा भाव ही प्रकट होता है क्योंकि जय उसे दृढ़ता और निश्चय के प्रतीक रूप में लिखाई देता है और समस्त स्रोत का आदि स्रोत वही है।

१९ प्रतीक

ग्रीठ वय पर जबकि जीवन का एक तरह डलान आया, तब जान पडेगा

आकाशा का हाथ पतवार दान से नाव या चलती तो रही है पर बही हो है, बड़ी नहीं है और ध्रुव भी मन्धार है जहाँ से किनारा नजर नहीं आता है निजा, त्रिय यहाँ सब-कुछ तो मिल नहीं सकता। इसमें चाह म ध्रुव का छानना से मन्त्र म दूना ही पढ़ता है—गो लो, नाथ म ताडन म जली न करना। (पृ० २५८)

प्रतीकाय

युवावस्था में व्यक्ति आकाशाभा के वन पर चलता है। आकाशा से महत्वाकांक्षा बन जाती है और वह जीवन के गाय पर पहुँच जाता है किन्तु जब प्रीतिवन्ध्या का धारम हाता है तो जीवन की गतिरूढ़ि दहन लगती है तब ही वाग्मविक्रम का बाध हाता है। तभी यह बात हाता है कि जीवन-नीचा कामना की पतवार में मन्त्राल ता रही है किन्तु एक लम्बे दायरे में मीमित हान के कारण वह भाग नहीं बन पाई है। यह भी बोध हाता है कि जीवन-नीचा मन्धार है जहाँ से किनारा नही सूझता। किनारा लय का प्रतीक है। जीवन नीचा का भाग न बन पाना इस बात का सूचक है कि कामनाभा की उपलब्धि संशय है। इस जीवन में आत्मी जो बुद्धि चाहता है वह तो मिल नहीं पाता परिणाम हाता है एक प्रवार का दूना। इसी आधार पर बिलवर निजा को सलाह देता है कि वह नाथ से सबध ताडने में भावना से काम न ल अपितु विवेक का परिचय दे। इस व्यथता और अनुपलब्धि की प्रतीक है। नाथ से ताडना ववाहिक विच्छेद का प्रतीक है।

२० प्रतीक

सच ही मैं हार रहा था। नशत्रा के साथ से एकाएक उतार जाकर स्पष्ट था कि अब वह यहाँ मरे साथ बहुत परिचित अनुभव नहा कर रहूँ। (पृ० ३०१)

प्रतीकाय

जय के मन में जो बात झटकी है उस निश्चयान में बिलवर कृतज्ञाय ग हा सका। प्रकृति के नशत्र-साक में जिनना तादात्म्य हम एक-दूसरे से रख पा रहे थे उतना अब संभव प्रतीत नहा हाता। नशत्र-साक प्रकृति-सौंदर्य का एक प्रतीक है। इससे साधने और विचारने की एक सहज स्फूर्ति प्राप्त हाता है।

२१ प्रतीक

अब वह विचित मुस्कराय जम हिमालय गया। (पृ० ३०६)

प्रतीकाय

जय और विलवर के बीच कभी-कभी औपचारिक मुलाकातें भी होती हैं। ऐसे समय जय समय का बहुत ध्यान रखते हैं और उनकी मुख मुद्रा हिमालय जसी जमी हुई हो जाती है। विलवर जब चलने लगे तो वे कुछ मुस्कराय, मानो हिमालय रूपी मानस की कुछ बर्फ गली हो। हिमालय का गलना जड़ता के द्रवित होना का प्रतीक है और इस प्रकार चेतना के उल्लाम को भी ध्वनित करता है।

२२ प्रतीक

लेकिन घटनाओं से से उस रेखा को पाने का मेरा व्यसन है, जो विधि रेखा समझी जाए। शतरज की बाजी की भाँति राजनीति के पट को मैं अपने समक्ष रखता हूँ। आपकी उपस्थिति उस बाजी के नक्शे को मेरे सामने गडबड में डाल देती है (पृ० ३५७)

प्रतीकाय

इंद्रमोहन का कूटनीतिक हेरफेर में भी बड़ा हाथ है। उस विलवर की भारत में उपस्थिति सह्य नहीं है। वह उसे यहाँ से प्रस्थान कराने का संकेत देता है। इंद्र एक विलक्षण एवं उद्भट व्यक्ति है जो कि घटनाओं के अन्तराल में से उनके मर्म बिंदु को पकड़ सकता है। विधि रेखा में भविष्यत् घटनाओं की निर्णायकता निहित है। जो दिलचस्पी किसी व्यक्ति की शतरज की बाजी में हो सकती है, वही आश्चर्य इंद्र को राजनीति में खींचता है और वह समझता है कि विलवर की उपस्थिति बाजी के नक्शे को गडबडा देती है। राजनीति का पट भी शतरज की बाजी की ही तरह जटिल एवं रहस्यमय है।

२३ प्रतीक

वहने के स्वर पर मैं व्यग्र हुआ, बोला, कृपया अपनी ओर से प्रश्न को न देखिए। आपके हटने से क्या स्थिति में एक शून्य न हो जाएगा? और फिर सब हल्के तत्वों के आ मुड़ने से जो एक आवत की सृष्टि होगी उसकी कल्पना आपको है? उसी अनिष्ट को आप निमंत्रण देने चले हैं। (पृ० ३७२)

प्रतीकाय

स्थिति राजनीतिक स्थिति का बोध कराती है। 'हल्के तत्व अगभीर एवं अनुत्तरदायी दलों तथा व्यक्तियों के लिए प्राया है। 'आ घुमडने' से तात्पर्य हावी होने में है। आवत अस्थायी एवं जटिल स्थिति का परिचायक है।

विलवर का मत है कि जय के राजनीतिक मंच से हटने का मतलब है अराजकता एवं अव्यवस्था। इसीलिए वह उस सावधान किया चाहता है।

२४ प्रतीक :

जय ने कहा, लेकिन यह सहज नहीं होने वाला है इला पर बहुत दबाव है और मैं नहीं जानता कि क्या होगा। नई शत्रुताएँ और नई मित्रताएँ उदय में आएंगी और कुछ देर इस नई गून्वता को भरन के लिए एक तुमुल भ्रमा वास आ पहरें, तो विस्मय नहीं है (पृ० ३८०)

प्रतीकाथ

जय सत्ता का परित्याग करना चाहता है, किंतु यह क्या चाहने मात्र से हो सकेगा। स्वाभाविक ही है कि ऐसी स्थिति में कुछ व्यक्ति विरोध करेंगे और कुछ समर्थन। जय के सत्ता-परित्याग से एक राजनीतिक शून्यता आएगी और सत्ता को अघिभूत करने के लिए विभिन्न दलों एवं व्यक्तियों के बीच एक अच्छी-खासी छीना भपटी चलेगी। इस प्रकार एक तुमुल भ्रमावात के ठहरने में जय के सत्ता-त्याग करने पर जो विषट परिस्थिति उत्पन्न होगा, उसका आभास दिया गया है।

२५ प्रतीक

अर्जुन ने पीछे मुड़ना चाहा था कृष्ण ने उसे समझ बढ़ाया यह काम आप पर है और जय निश्चय ही आपके लिए अर्जुन के समान है। देखता हूँ युद्ध समझ है, और गति श्मशान की भी हो सकती है लेकिन वह युद्ध से बहुततर चीज होगी। एक जगह पर कृष्ण ने समझौते की सभावना छोड़ दी और युद्ध मागा गया तो युद्ध का दान देने में योगी कृष्ण ने अपनी ओर से कृपणता नहीं लिखायी। (पृ० ३९९)

प्रतीकाथ

अर्जुन पलायनशीलता का प्रतीक है। कृष्ण गीता के उपदेशक के रूप में उसे कर्तव्य का ज्ञान कराते हैं। स्वामी चिदानन्द का विचार है कि जय की स्थिति अर्जुन के समान है। ऐसी स्थिति में आचार्य ही उसे कर्तव्य पथ पर खींच सकते हैं। कृष्ण ने भरसक युद्ध को टालने का प्रयत्न किया किंतु जब वह सिर पर ही आ पड़ा तो उन्होंने बड़ी तत्परता से प्रत्युत्तर भी दिया। उन्होंने अर्जुन को उपदेश दिया था कि यह अवसर दीनता और पलायन का नहीं है।

ऐसी ही सीख यदि आचार्य जय के प्रति उन्मुख करें, तो समय के तकाजे को पूरा किया जा सकेगा। स्वामी शम्भान को शान्ति को किसी भी रूप में स्वीकार करने को तयार नहीं हैं, वे भासन्न युद्ध का सामना पूरी तत्परता के साथ करना चाहते हैं।

२६ प्रतीक

सुनो, राज पर होकर जय विहग-से मुक्त न रहेंगे, प्राण उनमें उसी मुक्ति को छटपटाता है (प० ४१७)

प्रतीकाय

इला के विचार में जय के लिए राज्य से स्वाधीन होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि तभी उनका विचार विहग कल्पना के गगन में उन्मुक्त रूप से विचरण कर सकेगा। उनकी अतश्चेतना इसी सत्ता-मुक्ति के लिए प्रयत्नशील है। परिन्दे के लिए आजादी बहुत प्यारी है, उसे सोने का पिंजरा भारी पड़ता है।

२७ प्रतीक

जो हो, इस समय सब शांत है। घोर निस्तब्धता है इस स्तब्ध-अथाह के बीच घटनाएँ क्या हैं विचित्र लगता है किंतु उहीं में हम व्यस्त हैं। क्या उपलब्धि अपने भीतर इस अथाह और निस्तब्ध की अनुभूति ही है? महाशून्य में अपनी परम शून्यता की उपलब्धि? (प० ४१६)

प्रतीकाय

बिलवर को आश्चर्य हुआ कि इन्द्र के आने पर उसके कमरे में प्रकाश होते हुए भी उससे भेंट क्यों न हो पाई। सबत्र निस्तब्धता का राज्य है और बिलवर का मन इसी अथाह निस्तब्धता में डूबा हुआ कुछ विचार सूत्र पकड़ना चाहता है। बिलवर के मन में प्रश्न उठता है कि इस अथाह निस्तब्धता की अनुभूति ही क्या हमारे जीवन की चरम उपलब्धि है? स्वयं ही वह इस प्रश्न का उत्तर दे लेता है कि जगत् के इस विराट महाशून्य में व्यक्ति एक नगण्य बिंदु है और शून्यता की उपलब्धि के अतिरिक्त उसे कुछ प्राप्त हो भी नहीं सकता।

२८ प्रतीक

इन्द्र, साफ अभी मुग्ध भी नहीं है लगता है बीच में पड़ना और इस दल-दल को साफ करना होगा। (पृ० ४३१)

प्रतीकाय

जयवधन के सत्ता त्याग से राजनीतिक मंच पर घटनाएँ बड़ी तीव्रता से घटाने लगीं। बिलवर उनके सार तत्त्व को इन्द्र से ग्रहण करना चाहता है किन्तु इन्द्र स्वयं अपने निमाग में अधिक स्पष्ट नहीं है। वह चाहता था है कि इस स्थिति में वह हस्तक्षेप कर और जा कचरा मंच पर आ गया है उसे साफ कर दे। दल-लक्ष्य के रूप में सबदलीय सरकार की कल्पना है जिस इन्द्र 'चू-चू का मुरब्बा' समझता है।

उप-यास मुक्तिबोध

१ प्रतीक

बहुर बह सादर हम में ही चली गईं। मुस्कराती गईं थी और मैं उसका श्रय नहीं पा रहा था। नीला कुछ अलग ही है। माना उसके लिए कहीं टाक नहीं है। वह दबन में विश्वास नहीं करती दमन में भी नहीं करती। जीवन जैसे उसके लिए सहस्रता तत्त्व है। साथ वह भी सहस्रता रहना चाहती है। कुलीनता की उसमें कमी नहीं है न गिष्टाचार की। किन्तु उसके साथ यह सब कृत्रिम नहीं रहता अनायास हा जाता है। उसकी अकृत्रिमता का सामाजिक सद्व्यवहार ढक नहीं पाता। जीवन में तरती-सी चलनी है और कहीं उसे निषेध ज्ञान नहीं होना। मानो कृतव्यय उसके लिए वह है जो उससे होता है। किसी चाहिए का दबाव वह साथ नहीं लेती। माना जो है वही उस चाहिए। (पृ० ५८)

प्रतीकाय

नीलिमा स्वतंत्र व्यक्तित्व की नारी है उस सभी प्रकार के बंधन अश्रिय है। उसके काय और व्यवहार में गत्यात्मकता है। सहस्रता तत्त्व गतिशालता का प्रतीक है। जीवन और उसके व्यवहार में एक लय है। कुलीनता और गिष्टाचार भी स्वाभाविक रूप में ही उसमें उभरता है। अकृत्रिमता उसके स्वभाव का सर्वोपरि गुण है। नीलिमा के तरती-मी चरन में प्रवाहगोलना का प्रतीक निहित है। जो कुछ उससे हो जाय, वही उसका श्रेय और प्रेय है। आश की आरापित स्थिति उसका कतई स्वीकार नहीं। चाहिए आदम के आरापण का प्रतीक है।

२ प्रतीक

दवा, तीन बय बाद हम मिन रहे हैं। उस पर तुम चाहते हा बात धिरी

धीरे हो। मुझमें वह नहीं होगा। आप कीजिय विद्वाम नियम में और समय में मुझ आकाश पसंद है जो खुला है दिशाएँ पसंद हैं जो खुलाती हैं, चारों तरफ से किसी तरफ से टोकती नहीं। मैं नहीं रहना चाहती कमरा में, दड़वा में आदमी में। मैं अनन्त में रहना चाहती हूँ। पर छाड़िये गान और भाषा बड़ी ओछी पड़ती है—चल रहे हैं न ? (पृ० ५४ ६०)

प्रतीकाय

मुक्त आकाश के नीचे ही मुक्त व्यवहार संभव है। आकाश स्वाधीनता एक स्वच्छता का प्रतीक है जिसमें नियम और समय का लिंग बिनाप अवकाश नहीं है। दिशाओं में एक आवाहन है जो अप्रतिरोध्य है। कमरे मर्यादाओं में बाधते हैं। कमरे और दड़वा आदमी के बंधना के प्रतीक हैं। जिस अनन्त में बिहार करना हो उसके लिए ये नितान्त निरर्थक हैं। अनन्त आकाश की निस्सीमता और स्वच्छता का प्रतीक है। गान और भाषा का एक सीमा है, इनके द्वारा मन का सभी भावों की अभिव्यक्ति संभव नहीं। ऐसी स्थिति में भाषा की व्यवस्था बड़ी संकुचित प्रतीत होना लगती है और मन गूँथ में भटकने लगता है।

३ प्रतीक

मैं किस तरह धीरे धीरे परिवार के क्षेत्र के लिए प्रभावहीन बनना जा रहा हूँ यह अनुभव भरे भीतर बिघता जा रहा था। इस पर मानाँ मैं घर से खुलकर बाहर ही रहना चाहता अनुभव हुआ कि घर और बाहर सब ही दो हैं और पुरुष का क्षेत्र बाहर है। वही उसके लिए आवाहन है वही आवासन। जो घर में अपने को बंधन में पाता है, बाहर वही खुल जाता है। तब जम मुझ याद हुआ कि पारिवारिक भी कभी सामाजिक में बाधा रूप हो सकता है। जिसे सावजनीन बनना है उस घर-बाहर के सदस्य से सचमुच मुक्त ही होना होगा।

मैं क्या हूँ ? मालूम होता है वहाँ भी नहीं हूँ। अनिश्चय में हूँ और अधर में हूँ। पत्नी उठते हैं वृष्य जहाँ डालकर अपना एक जगह खड़े रहते हैं। आदमी घर बनाता है इधर-उधर भी चलता फिरता है। घोंसल की तरह उसका घर एक नहीं हो सकता। मालूम होना है कि उल्टा जीवन उतना ही गतिमय होगा। स्थितिनिष्ठ गायद उस जकड़ में जड़ पड़ना जाएगा। लगता है स्थिति को राजश्री के निणय पर छोड़ देना चाहिए और अपने लिए मुक्त गति का ही ध्यान रखना चाहिए। विचार की इस गति में मुझे फिर नीला

ना व्यान आया = और उसके स्वभाव व प्रति जस एक स्पृहा-सी मन में उत्पल
हु। माना बढ है जा अत्की नही है। मदा जीवत है और लहरानी है।
(पृ० ८०)

प्रतीकाथ

पारिवारिक व्यक्तिया म महाय अपना प्रभाव खान जा रह हं। इसस उनक
मन का पीटा हाती है। तव व बाहर व जीवन म अधिक रस देने लग। व
अनुभव करत हैं कि कुद्ध व्यक्ति घर व लिए बन हान हैं और कुद्ध का क्षेत्र
मामाजिक राष्टीय जावन हाना है। एम ही जीवन व प्रति व एक चुनौती अनु
भव करत हैं। एक व्यक्ति व लिए घर कल्पाना हाना है ता दूसर व लिए
ग्राह्य जीवन उमुक्त आवाग की निम्मीभता लिय हुए हाना है। एमी मन
स्थिति म महाय अनुभव करत ह कि परिवार सामाजिक रूप विकास म बाधा
रूप है। बाधन कल्पान का प्रतीक ह आवास चुनौती का प्रतीक है और
आइवामन मनस्नुष्टि का। जिम व्यक्ति का सावजनिक जीवन का अग बनना
है, उम घर बाहर की सीमा म अपन आपका मुक्त करना हागा। सावजनीन
मामाजिकता का प्रतीक है और घर-बाहर तग दायरा का।

महाय कल्पना व गगन म उड रह है पशिया की नाइ। उह विचार
हाता ह कि पक्षी कितन उमुक्त हैं इनकी चुनना म वृष कितने स्थिर और जड
हैं। पक्षी उमुक्त जीवन व प्रतीक हैं वृष जड जीवन के। आत्मो की स्थिति
इन दाना म भिन्न है। वह घर म भी रहना है और दघर उघर गतिगील भी।
धौमला जीवन व तग टायर का प्रतीक ह। मानवीय व्यक्तित्व के विकास व
लिए यह तग टायर अपर्याप्त ह। एमलिए वह कई घर बनान के लिए
आजात है। जा जितना गतिगीन हागा उतन ही उमके घर और पढाव हागे।
जिम व्यक्ति का जीवन एक ही स्थान पर टिका हुआ ह वह प्रगति नही कर
सकता। स्थितिनिष्ठता जडता की प्रतीक है। पारिवारिक जीवन व दायिव
का सहाय राजश्री व लिए छाड देने हैं और स्वय निरंतर गतिगील रहना
चाहन हैं। नीलिमा का जीवन गतिगीलता का पर्याय है यहा कारण है कि
गतिगीलता का ध्यान आन पर सहाय व मन मे नीलिमा का चित्र उभर आया।
उसके स्वभाव म जा अनिरद्ध गति है उसने लिए उनका मन भी ललक उठा।
नीलिमा वही रूक नही सकती। जीवन की ऊप्मा और ताजगी से वह इननी
भरपूर है कि उसके लिए लहरीलापन ही एक विणेपरण बन सकता है। लहरीला
पन जीवन की गतिगीलता का प्रतीक है और इसी मे नीलिमा अंतप्रान है।

४ प्रतीक

मैंने गहरी सास ली। जस काला बादल सिर स कुद हटा। नीलिमा पास आयी, बिना वाले उसने मेरे हाथ पर हाथ रखा और धीर धार उस सहलाती रही। दोनो के पास एक-दूसरे से पूछने को बहुत कुद था लेकिन जसे कुद पूछने की आवश्यकता न थी। तमारा न क्या उस याद रखन का कहा था ? कहा होगा कुद। मुझे कुवर ने एकान्त म क्या कहा था ? वा भी रहा हांगा कुद। बाहर होना हुआ सब कुद अदर एक दनाव या उभार छोड जाता है। वस वही फल रहता है, शप ता आता और वीन जाता है। वह बाहरी घट नाम्ना से प्राप्त हुई आतरिख निष्पत्ति सहानुभूति व तारा स अपने आप हा गहरी सबदना म उपलब्ध हा जाता है। गायद पूछने-वतान की आवश्यकता नही रहती।

ऐस हम दर तक बठ रह। नीलिमा की हथली मर हाथ का हील हील सहलाती रही और मैं साचता रहा कि नीलिमा मेरी काई नहा है मैं उसका काई नही हू। लेकिन यह हाथ का स्पग जान एक दूसर का कितनी सा त्वना, कितना आस्वासन पहुचा रहा है। बाहर का हाता जाता हुआ तथ्यात्मक या घटनात्मक सब-कुद अन्त म जस अलग ही छूट जाता है सार रूप म छाड जाता है कुद वह जा मनो वेदना का धुलाता और स्वय उसम धुलता रहता है। (प० १४३)

प्रतीकाय

सहाय अनुभव करत ह कि उनके जीवन पर स अमगल की छाया हट रही है। काला बादल अमगल का ही प्रतीक है। हाथ का सहलाना परस्पर प्रणय का विनिमय ह। इसम एक प्रकार की एड्रिक्ता है। प्रणय मूकता म से ही रम ग्रहण करता है। घटनाए आई गई हा जाती ह और उनक माध्यम स दा व्यक्ति एक-दूसरे के निकट आत हैं और सबदना के मूत्र म बध जाते है।

हाथ के हील हील सहलाने से सहाय तुरीयावस्था म पहुँच जात है एक प्रकार की आत्म विस्मृति उह घेर लेती है। फिर भी इसस उह गहरी आत्म तुष्टि अनुभव हानी है। घटनाएँ और तथ्य ऊपर ऊपर रह जात हैं पर उनस सार रूप म जो कुद मिलता है वह मनोवेदना का काटता है। हाथ का स्पश, सहानुभूति एक प्रणय का प्रतीक है। बहुत भी बातें एमी हाती है जा त्रिना कहे ही समझ ली जाती हैं। धुलाना एक प्रकार की रामायनिक प्रक्रिया ह जा मानस प्रदेश मे घटित होती है।

उपयास अनन्तर

१ मैं घबराया। यह मरान उसकी दुखना रग है और मर मन प रहा है कि सम्पत्ति खड़ी करना अपनी कबर चिन्ता है। चतय वधता नहीं मरान वाधना माना उम राध गाना है। पत्नी की मरग की वही टेर मुनकर मैंन मबल्यपूवक मान राध निया पला न भी गायद मन-ही मन गपय स्वायी कि पम म आग लग जा आग कभी मुह खाल। सुटाघा चाह गवाओ

नाह नहीं आर्त्। गायन उह भी नहीं आर्त्, और चाद मुस्कराता चला गया। जम्बर जीवन का वह टग ह जहा पम की हम्नी नहीं रहती, वह सच्चा =। पर पत्नी और परिवार हान हा पसा सब कुद्ध हा जाता हैं। इम वासठ क पार की उअ तर मुभम यह पम का ममना क्या नहीं है। कम कट सकता ३ मभ्यता और सफरता के ममार का सारा दारामन्तर जा एक उस पर है। मम मारा का सार गाम्त्र बन उठा है अथगाम्त्र इमी तरह की उघडबुन म जान कब मैं ममीशा स सहानुभूति पर आ गगा। वयानीम वरम हुए एक मुग्धा विगारी पत्नी क रूप म मुभम आ मिली थी। उस गग-सहारे मचमुच क्या व कापन-म नय त्ति स्वर्गोपम ही नहीं बन आय थ पर स्वग वह गन-गन फिर मटमली धरती बनता चला गया। मुग्धा दयस्का हाती गई और रामामा म उतरकर मैं स्वय निन निमित्त के काम काज म खपता गया। सब कम बमान क त्ति थ व। (प० १० १४)

प्रतीकाय

प्रमाद और रामदवरा का मनभ्रम मरान का लकर है। दुखती रग असह्य व्यथा का प्रतीक है। कबर चिन्ता समाप्ति या मृत्यु का प्रतीक है। चतय ग्राम तन्व का शातक है। गाना का मौन और अन्त म एकमत हाना दाम्पत्य का निवाह है।

चाद के मुस्करात रहन म पनि पत्नी क मतभ्रम पर व्यग्य है और एक आवाहन भी है। पत्नी परिवार की भरदण है और पमा मूलाधार। अथगाम्त्र का प्रामुख्य आज क युग की मवम बनी घटना है। ममीशा म सहानुभूति पर आ गगना चिन्तन म हासिकता पर आ खगना है। कापल म नय दिन म स्निग्धता भी है और नाशोय भी। अनाले का मधु चित्तन इसका पृष्ठाधार है। स्वग कयना की कमनीयता और मुग्धा का पज है उमी का मटमली धरती म परिगन हाना कयना म वास्तविकता क धरातल पर उतरना है। जीवन का म्यान प्रीतिवग्धा न नती ह और तब रामास की भूमि परा के नीध स विसकन लगती है। कयना के गगन म उडने वाला प्राणी वास्तविकता क

घरातल पर आ जाता है और धरती के काटो से लहलुहान हो जाता है ।

२ प्रतीक

लेकिन जिन्दगी का हिसाब मेरा साफ नहीं रहा । आग उसका व्यापार चलाने के लिए सोचता है कि एक बार बेलेन्स शीट बनाकर देख लेना चाहिए । नहीं तो दिवाला पिट जायगा । उसके लिए कुछ रोज़जीने का काम धाम स्थगित रह तो हज़ नही है । जीने के साथ ही सब स्पहाम्रा को छोड़कर सिफ़ रहा भर जाय । (प० ६०)

प्रतीकाय

जिन्दगी का हिसाब लाभ हानि की ओर सनेत करता है । बेलेन्स शीट इसी लाभ हानि का जायजा है । दिवाला नुकसान की चरम सीमा है और व्यापार का समाप्ति का द्योतक । स्पहाम्रा से तात्पर्य जीवन को कामनाओ से है जा कभी पीछा नही छोड़ती । प्रमान् इन्ही ने विरत होकर जिया चाहते हैं ।

३ प्रतीक

पैसा समाज के शरीर का प्रवाही रक्त है । वह है क्योंकि उस पर सरकारी मुहर है । माहर की बजह से कारा कागज भी कितनी कीमत का हो जाता है और सरकार वह जो प्रशासन के बल पर समाज को अनुशासन में रखती है । शासन की इस सस्था में समाज की स्थिति बनती है । मुझे लगता है कि इस सुविधा के लिए शासन का होना और उसके अधीन शामिल का होना अनिवाय है । जो ता ससद् है धारा-मभाएँ हैं छत्रतन को लोकतन्त्र की दिशा में उठाते जान के अर्थ यत्न है बीच-बीच में इसके लिए नान्तिया भी होती हैं और शासन द्वारा पक्तिबद्ध होकर मानव समूह रह रहकर आपस में युद्ध लड़ लिया करते हैं । नही तो बताइये लोगों की बेहतागा बन्नी फूलती मग्या कैसे कादू में आय ? शासन से इसकी व्यवस्था हा जाती है । बिना ऊपर सरकार हुए सोचिये कि प्रजा में स फौजें कस बनें ? फौजें हो भी ता लडाई कम छिड़ें ? नडाई की तैयारी न हा ता सुरक्षा कस सुरक्षित रह ? इस तरह सरकार बहुत ही सायक सस्था है । उस सहारे युद्ध बन और ठन पाते हैं । —सरकारा के अलग अलग सिक्का में ठडा युद्ध ता निरन्तर ही चलता रहता है । सिर धड उसमें सीधे वन्ते नही दीखते तो यह नही कि आर्थिक प्रतिस्पर्धा का यह जग कम विवट हाता है । अन्त्र युद्ध की ता अर्थधि भी है । यह अर्थ-युद्ध तो सतत आवश्यक है कारण उसमें पैसे के चलन में तेजी आती है । विविध राष्ट्र-क्षरीरो

का गन्त-प्रवाह तभी दृग्-अ दृग्तर होता है। यह दृग्ता है और पद्म का भी पूरा मान दोगा है—पर राष्ट्र-ममात्र का कभी यदि मानव-ममात्र बाना हुआ तो—? तो उमर तिर मुद्ग म पार पाता ही होगा। उम तिरर क तिर बुद्ग को घायन पगा बटारना सदादा होगा। दृग्-माधता म आयन यह उमर हा घायन-माधता। पर सगता है उमम भी बुद्ग सार है। (पृ० १०१ १००)

प्रतीकाय

दुनिया क मार काम घाम पद्म म हा मगता है। यने ममात्र म गति नीतता कायम रगता है। पगा दरघमन ममात्र का गता का प्रवाह है कदा रि वही तो कोर कागत्रा पर माह्य सगातर उन्हें पचना करता है और एम प्रकार उनकी बीमन बन घाता है। एम मार घादा प्रगति क तिर घायन और घायन का जाना एक घायनपर बटो है। मगद् घोर धागमभार्गे माक मत्ता की प्रतीक है इन्हीं के द्वारा मज्जन को सावतत्र का रूप दिया जा रहा है। इस प्रक्रिया म कभी-कभी क्रान्ति भी घायनपर हा उठता है। मग्वार द्वारा कभी-कभी मुद्ग म भाग लना घनिवाय हा उठता है तब यह बनि क बकर क रूप म घायनी का भाव दनी है। इसी म जन-मग्या पर नियंत्रण हा पाता है। मीनिव प्रजा म स ही घाने हैं और एहा क द्वारा लहार्द लही जानी है। यदि एसा न हा ता घलय घनय राष्ट्रा की मुरगा कम मग्यल हा ? इसम यही निष्पप निवसता है कि मरवार बगुन ही उपयोगा मग्या है। पद्म क जाण पर घनय राष्ट्रा क बीच घानमुद्ग ता निरन्तर घनता ही रहता है। यह टोक है कि इस शीत-मुद्ग म घायनी का मीन क घाट नहीं उतरना पडता पर घायिव प्रतिस्पर्द्धा ता घायनी का कभी भी घन नगी लन देनी। इस घय-मुद्ग क कारण ही राष्ट्रा क मध्य भाषिक विनिमय तीव्रता म सम्पन्न हाता है। राष्ट्रा क मकीण घरातन म ऊपर उठकर यदि मानव-ममात्र को एक हाना है ता एम नीत-मुद्ग स मुक्ति चाहनी होगी। जो पूजीपति है उन्हें घय-मप्र घायना हागा। इस सारे घय चक्र और परम्पर प्रतिस्पर्द्धा म मव निरथक हा हा ऐसा भी नहा है। हो सकता है कि मसार की प्रगति क तिर यह भी विगी रूप म घनिवाय हा।

उपर्युक्त उद्धरण म जनेत्र ने विश्व की मूनप्राही चनना का पकडन का चेष्टा की है और घनेक प्रतीका के सहारे घपनी बात को घयवत्ता प्रदान की है। ससद्, धारा-सभा, छत्रतत्र सावतत्र घादि सभी तो मानवीय सत्ता के प्रतीक हैं और इन्ही के माध्यम से विश्व प्रगति के पथ पर घप्रसर है।

४ प्रतीक

चाह घमपत्नी है और मैं पति पत्नी का बहुत ऊचा स्थान देती हूँ। द्रौपदी पाचा पाडवों की घमपत्नी हो चुकी है, वह और ऊची रही हागी। राधा पत्नी थी ही नहीं, कृष्ण की घमपत्निया के समुदाय से बाहर थी। पत्निया के लिए श्रीकृष्ण पुरुष रहे होंगे। राधा के लिए साक्षात् विराट परमेश्वर अनन्त लीलामय। इसलिए राधा द्रौपदी से भी ऊची हो जाती है। छोट्टिये, मैं क्या बक रही हूँ आप हँसते हांगे। लेकिन मेर लिए हँसने की बात नहीं है, तिन निल जलने की बात हो गई है। होटल के एक ही कमरे म आदित्य के साथ हूँ। वह मुझे चाहते हैं। ऐसी चाह मे कि जिसम काई अपन का निछावर कर आय, ईश्वर बसता है। मैं परम कृतज्ञता और मुक्ति से उस कामना के प्रति नमन करती हूँ लेकिन पत्नी से मैं घम की बन गई हूँ इसलिए पुरुष का दे सकूँ, ऐसा मेरे पास बचता ही क्या है?—नहीं जानती कब तक यह यन चलेगा—क्या कितना किमका उसमे स्वाहा होगा। लेकिन मुझे आशा है कि चाह का सौभाग्य सम्पूर्ण बनेगा और उसकी धरोहर उसे अक्षुण्ण प्राप्त हागी। (पृ० ११८-१९)

अपरा के मन म सती पत्नी के प्रति बहुत ही गौरव गरिमा का स्थान है। भारतीय इतिहास म द्रौपदी और राधा भिन्न व्यक्तित्व वाली नारिया रही हैं द्रौपदी ने पाचा पाण्डवा की घमपत्नी बनकर एक बिलक्षण आदश की स्थापना की थी। इस द्रौपदी के प्रति अपरा के मन म एक अजीब सभ्रम और ब्यग है। हमार घम ग्रयो म राधा का जिस प्रकार बलुन मिलता है उसके आधार पर उस पत्नीत्व की परिधि म नहीं लिया जा सकता वह प्रेमिका की प्रतीक बही जा सकती है। राधा के लिए कृष्ण साक्षात् विराट परमेश्वर थे जो अपनी अनन्त लीलामयो मे उस रिक्तान थे। यो राधा का दर्जा द्रौपदी से भी ऊचा ठहरता है। इन उदाहरणो से अपरा यही सिद्ध किया चाहती है कि सवुचित पत्नीत्व की परिधि से बाहर भी नारी का अपना स्थान हा सकता है। अपरा के मन मे आदित्य की चाह के लिए सम्मान की भावना है लेकिन चूकि उसने अपना मपूर्ण जीवन घम के प्रति समर्पित कर लिया है इसलिए पुरुष को दे सकन लायक उसक पास क्या बच रहा है? इस प्रकार अपरा का जीवन आत्माहुति का एक विराट यन है जिसमें उस अपना सब-कुछ स्वाहा करना हागा। उम पूण विदबास है कि आदित्य से उसका जा बुद्ध भी सम्बाध है उससे चारु के दाम्पत्य जीवन को कोई आच न आयगी। उसका पति अपने सम्पूर्ण रूप मे उसे पुन प्राप्त हागा।

द्रौपदी और राधा नारी-जीवन के नये साँच हैं। मीरा का उदाहरण भी

जनर ने इगी मम म गुनीता म उपग्यात त्रिया है । इनग व फनी गिद्व क्रिया चात्ने है कि परतीत्व ही मव-मुद्व गहा है, उमग पर भी नारी-जीवा की गरिमा और धन्तिरय हा सखन है । या द्रोगता राधा और मीग नारी जीवन क नय प्रतीक कट जा सखत है ।

५ प्रतीक

धाता, धावूजी दुनिया वनी तजी ग नई हा रही है । उमग नय मूख्य हागे । कमाई धमाई वहा कान नहा पूछगा । मैं ममभना चाहता हू कि गिग गिग मैं जी रहा है ? गरियार क जुग क ककरर क गिग ? हित्गनान म कुनवा एक कानू हाता है । सहरा उमग जुन और ककरता ग् । एग कगा फिर नई दुनिया सान क गिग कट बचा रह सखता है ? मैं इण्टर गाग्ग म त्रिया । धापन चाहा और धव एम० कौम० हू । पर मैं वहन विगान का ममभना चाहता हू—किर इगान और समाज क विगाना का भा । आगामी गतिगाम का सान म सगना चाहता हू ।

आगय कि मैं मुनता रहा । वहन का क्या था । मैं दग त्रिया नई दुनिया का इह सान दना है और स्वय धपन का चुपचाप पुराना वन गिमका बना है । (पृष्ठ १६४ ६५)

प्रतीकाय

प्रसाद पुरानी पीढ़ी क आर प्रकाग नई पीढ़ी का प्रनाक है । प्रकाग क मन म नई दुनिया के प्रति बढी सनव है । समाज क पुरान ढाच म पस का बडा मूल्य रहा है । इसीलिण कमाई का ही मानवीय गरिमा का मानण्ड समभा जाता रहा है । किन्तु नय समाज म इसका महत्व गौण हा जायगा यह निवि वाग है । कुनज ने आगमी की आजागी का छीन लिया है और व्यक्ति काल्ट क वन की तरह उसक ग् गिग ककरर काटन को विवग है । प्रकाग इम परम्परा के प्रति विद्रोह त्रिया चाहता है । वह नई दुनिया का सान क गिग विवस है । उसन विगान और वाणिग्य की गिगा प्राप्त की है । इम गिधा का वह नई दुनिया को सान म किरिथाय क्रिया चाहता है । यानि गिगा विश्य म परिवतन नहीं लायगी ता वह चुक जायगी । एमी स्थिति म पुरानी पीढ़ी के गिग ममभ दारी इसी म है कि वह इस परिवतन और हलचल क मच म धपन धापका विसवा ले और नई पीढ़ी जा कुछ करना चाहती है, उमका करन द । काल्ट परम्परा के अनुवतन का प्रतीक है । परिवार का जुदना व्यक्ति म्वातग्य के अपहरण का प्रतीक है ।

६ प्रतीक

१ पर कहीं हुई है छुट्टी ?—बचकर है जा चल रहा है। मैं उसके बीच हूँ और हैरान हूँ। सब अपने अपने में हैं। बया है और उसका धाम है। आदित्य है और इण्डस्ट्री है। गुरु है और लोक सेवा है। अपरा है और बस वह है। चारू है और उसकी गिरस्ती है। रामेश्वरी है, और समस्या के तौर पर मैं उसके लिए बहुतेरा हूँ। ऐसे चू-चू करता हुआ सब चल रहा है। और मैं बराबर में लेता हुआ हूँ। ग्यारह बज गया है। रामेश्वरी मो गई है मैं समझता हूँ। वह समझती है मैं सा गया हूँ। (पृ० १६६)

प्रतीकाय

प्रस्तुत अनुच्छेद में दुनिया को गोरम धध के प्रतीक रूप में प्रकट किया गया है। आदमी इस गोरम धध से छुट्टी चाहता है, पर क्या वह उस मिल सकी है? बया ने शान्तिधाम को अपनी जीवन सिद्धि का प्रतीक बनाया है। आदित्य उद्योग धधों में फलना फूलना चाहता है। गुरु का लोक सेवा में ही सिद्धि की प्रतीति होती है। अपरा के बारे में कुछ कहा नहीं गया है पर यह स्वयंसिद्ध है कि वह इन सबके बीच समायोजिका का कार्य कर रही है, और या सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन उठी है। चारू ने गृहस्थी की परिधि में ही अपनी जीवन सिद्धि का साक्षात्कार किया है। रामेश्वरी के लिए प्रमाद की समस्याओं का निवटाना ही जीवन सिद्धि का प्रतीक है। जगत् अपनी गति से आगे बढ़ता चला जा रहा है उसके आगे बढ़ने में गाड़ी की चू चू का प्रतीक समाहित है। यह जीवन का खड चित्र है और इसी खड चित्र का प्रतीक में संपूर्ण विश्व से साक्षात्कार किया जा सकता है। या बिंदु में सिद्धु समाया हुआ है।

निष्कर्ष

शब्द शक्तिपरक अनुसंधान और प्रतीकाय की विवेचना के उपरांत हमारा मामान्य निष्कर्ष इस प्रकार है।

- (१) अनेत्रजी के उपयोगों में वस्तु व्यजना का उपयोग सर्वाधिक हुआ है द्वितीय स्थान पर भाव-व्यजना तथा तृतीय स्थान पर प्रयोजनवती लक्षणा आती है। एक मूलग्राही दार्शनिक द्वारा वस्तु-व्यजना का ही सर्वाधिक उपयोग स्वाभाविक है मनोविलेपण के आधिक्य के कारण भाव व्यजना द्वितीय स्थान की अधिकारिणी बनी है। छायावादी परिप्रेक्ष्य के कारण प्रयोजनवती लक्षणा भी अपने उचित स्थान पर है।
- (२) कुछ ऐसे प्रयोग हैं जिन्हें किसी शब्द शक्ति की परिधि में तो नहीं लिया जा सकता पर जिनका विधान एक स्वरूप इतना वगिष्ठपूर्ण है कि

हमने उक्त विविष्ट पद रचना के रूप में अभिहित किया है। इनमें जनेद्र की वाक्य रचना एवं शब्द-व्ययन की विलक्षणता देखी जा सकती है। मुहाबरा का उपयोग एवं बालिया की व्यंजना स्पष्ट रूप में मार्मिक बन पाते हैं।

- (३) यह निर्विवाद है कि कोई भी रचनाकार शब्द-शक्तियाँ का दृष्टि में रख कर वाक्य विधान नहीं करता पर फिर भी उसकी अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता में, शब्द-शक्तियाँ स्वतः ही आ जाती हैं। प्रतीक विधान भी मृज्जन प्रक्रिया में अनायास ही आता है। इसमें अभिव्यक्ति में प्राजलना आती है और उसके सौम्य में वृद्धि होती है।
- (४) यह एक विचित्र ही स्थिति है कि रचनाकार न सभी शब्द-शक्तियाँ का अनुमान ही अनुाधिक रूप में उपयोग किया है। इसमें उसमें रचना-मसारा के बहिष्कार का स्पष्ट ही आभास मिलता है। मुहाबरा के घटल्ले से उपयोग के ही कारण रुद्धि-सम्भरण के भाँ अछे-खास दर्शन हाते हैं।
- (५) यह शब्द-शक्ति-निरूपण अन्तिम नहीं है और न ही इस विवाद से पर कहा जा सकता है। कुछ प्रयागों में दो या इससे भी अधिक भाँ के लक्षण हाते हैं। ऐसा स्थिति में जो शब्द-शक्ति सबप्रधान ममनी गयी है उसी का उल्लेख है। कुछ प्रयागों में जहाँ इस बात का निर्णय मभव न था एकाधिक शब्द-शक्तियाँ का निर्देश किया गया है।
- (६) प्रतीक विधान के तात्त्विक विवचन में जिन तीन प्रकार के प्रतीकों की चर्चा हुई है—१ मकतारमक २ अभिव्यजनात्मक और ३ आराप मूलक—उनमें से, मध्या दो और तीन का पुष्प-मात्रा में उपयोग किया गया है। ये प्रकारांतर से लक्षणों और व्यंजना के ही रूपान्तर हैं जैसा कि शब्द-शक्तियाँ और प्रतीक-व्यंजना के अतगत स्पष्ट किया गया है।
- (७) कल्पना शक्ति का बंभव इन प्रतीकों में द्रष्टव्य है यह छायावादी काव्य के ममानालर ही विकसित हुआ है। जब जनेद्र का पहला उपयोग परख' प्रकाशित हुआ (मन् १९२८) तो छायावादी भावपक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से अभिनव प्रयाग करने में तल्लीन था। इन प्रयागों की विकसित परिणति हम 'मुनीना और त्यागपत्र' के मध्य में देख सकते हैं। यही यह समय है जब प्रसाद की कामायनी पन्त का पल्लव और निराला की अनामिका प्रकाशित हुई। इनमें हम मुनीना त्यागपत्र और कल्याणी की कल्पना प्रवणता मूल्य अथवत्ता मार्मिक प्रतीक योजना एवं शब्द-नापवता की सहज ही तुलना कर सकते हैं।

(८) एक बात में इन कृतियों में छायावादी काव्य से पृथक्ता भी है और वह यह कि बोल-चाल की शब्दावली व भाषा के कारण तद्भव शब्दों का प्रयोग एक मुहावरों का आधिसय, एक विभाजक रेखा के समान स्पष्ट दिखायी देता है। छायावादी काव्य में इन दोनों तथ्यों के प्रति स्पष्ट ही अवहेलना का भाव है। यद्यपि पद्य के अर्थभाषा के प्रयोग और निराला की मुहावरदानी की प्रवृत्ति इनके किंचित् अर्थवाद कह जा सकते हैं।

(९) एक और बात में छायावादी काव्य से इसमें भिन्नता लक्षित होती है और वह यह है कि प्रकृति से रचनाकार का संबंध अलग ही हो गया है। आरम्भिक कृतियों में जहाँ कट्टों के घर की जामुन की गीतल छाव है वारमौर की प्रकृति नटी का रम्य चित्र है सुनीता और त्याग पत्र में आवश्यकतानुसार, नदी और समुद्र का (चाहे कल्पना में ही क्या न हो) आशिक बरण है वहाँ परवर्ती कृतियों में आवश्यक होने पर भी प्रकृति की एकान्त उपेक्षा की गयी है। अनन्तर के बहुत बड़े भाग की नियाएँ माउण्ट आबू के अचल में घटित होती हैं वहाँ परवर्ती उपेक्षाओं में प्रकृति और परिवेग की चरम उपेक्षा विस्मयकारी भी बनी जा सकती है। इसे उपेक्षामयार की बढ़ती हुई नागरता का ही परिणाम समझा जा सकता है। कसी अद्भुत बात है कि फोन पर बम्बई कलकत्ता दिल्ली और आबू का मेन तो हा सकता है पर मानवीय आत्मा का अर्थ चरणा में फली हुई प्रकृति से कोई तादात्म्य नहीं।

(१०) प्रतीक विधान में प्रकृति की उपेक्षा सम्भव नहीं है इसलिए अधिकांश प्रतीका का मूल स्रोत प्रकृति ही रही है। वही सागर के सिसकने, पत्त के मानिंद हिलने और भावना के सहराने की बात धायी है ता वही पशु-पक्षी जगत् से भी रचनाकार न प्रतीकों के उपकरण जुटाये हैं। या प्रकृति प्रतीक विधान की अक्षय निधि प्रमाणित हुई है। प्रतीक विधान के जो उदाहरण दिए गये हैं उनमें सकडा प्रकृति-संबंधी प्रतीक विद्यमान हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि रचनाकार साधारण रूप में प्रकृति बरण से विरत हो सकता है किन्तु प्रतीक विधान में वह अंतरग सहचरी की तरह उसकी कृति के रूप को सवारती भी है और आवश्यकता पडने पर बिगाड भी देती है।

(११) जैन-द्र के उपेक्षाओं में अर्थ उनकी सूक्तिप्रियता बढ़ती गयी है जा इस बात का प्रमाण है कि लेखक दाशनिक् मुद्रा की स्थिति में जीवन

२६८ जनेन्द्र व उपन्यासा का मनाविज्ञानपरक और शलातात्त्विक अध्ययन

और जगत् का पर्यालाचन करने लगा है। इसमें जहाँ उसकी रचना की जीवन्त उष्णता में कमी आयी है वही उसका दार्शनिक ठडापन बढ़ता गया है जिसके परिणामस्वरूप रूढ़ता एक एकरसता क्रमों पर पसरती गयी है। इस प्रकार उनके उपन्यास उनके निबंधों के अधिक निकट ध्यान लगें और उपन्यास-कला से दूर पड़त जा रहे हैं।

शोध-निरूपण

जनेन्द्र के उपयोगासा की शोध प्रक्रिया के सदृश म मनस्तत्त्व और शलीतत्व की अविच्छिन्नता सबप्रथम हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। वस्तुतः जनेन्द्र एक ऐसे शब्द शिल्पी हैं जो कम-से-कम शब्दों के सहारे अधिक-से अधिक अर्थ की व्यञ्जना करते हैं। इसका एक परिणाम हाता है यथातथ्य चित्रण और यह व्यञ्जना शली मुझे एक प्रदक्षिणी म देखी गयी बाच विनिर्मित 'उस नारी शरीर की याद दिलाती है, जिसे लगभग पाँच वष पूर्व मैंने जमन-गणेश्वर के दिल्ली स्थित मण्डप मे देखा था। उसका अंतरंग और बहिरंग दोनों मुखर थे—प्रत्येक भाड़ी-अन प्रत्यग शिराम्रा और धमनिया मे दौड़ता हुआ रक्त—सब वहा इतना मुखर था कि भ्रान्तरिक शरीर की पम्कल्पना स्पष्ट रूप म साकार हो जाती थी। ऐसी हा कुछ स्थिति जनेन्द्र के मनस्तत्त्व एव शली तत्व की है। मनस्तत्त्व व परिधान मे लेखक की मानसिक प्रक्रिया, स्वभाव और सस्कार अपने आपको व्यक्त करते हैं। इम प्रकार मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन से अभिप्राय यह हुआ कि हम किसी भी रचनाकार के शली-तत्व का जब अध्ययन करें, तो यह पता लगाने का प्रयत्न करें कि उसकी लेखन-शली म उसकी कौन सी मानसिक कुठाए, स्वभाव एव सस्कार अपने-आपको व्यक्त करते हैं। विचार और रूप एक-दूसरे स गहन रूप म सम्बन्धित हैं। विचार एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जो कि किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्पर्क मे आने पर प्रतिक्रियास्वरूप मन मे प्रकट होती है। जब किसी विचार को हम शब्द-बद्ध करने लगते हैं तो शैली का स्वरूप आकार ग्रहण करने लगता है।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि लेखक की अभिव्यक्ति में जो प्रचलित से भिन्न रूप होता है, वही शली का मूलाधार है।

मनोविज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन का आज का युग में बड़ा महत्त्व है, क्योंकि वचारिक प्रक्रिया का विभिन्न विज्ञान भाषा शास्त्र एवं सौंदर्य शास्त्र की जटिल प्रक्रियाएँ प्रभावित एवं नियंत्रित कर रही हैं। इस प्रभाव का क्षेत्र एवं और बहुत विस्तृत है तो दूसरी ओर अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहन भी है। जब हम किसी उपयासकार के शली तत्त्व का अध्ययन करते हैं, तो उसके मन के चेतन, अचेतन एवं अचेतन में जो भी मानसिक प्रभाव सन्निहित होते हैं, उनकी बुनावट को उधेड़कर देखने का प्रयत्न करते हैं। शलीतात्त्विक अध्ययन से नये-नये तथ्या की प्राप्ति होती है और हम सहज ही उपयासकार के मनोलाक में प्रविष्ट हो जाते हैं। उसकी रचना का जो भी रूप हम प्रत्यक्ष में दिखायी देता है उसके मूल में कुछ अन्त प्रेरणाएँ काय करती हैं। इन अन्त-प्रेरणाओं का सधान ही मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक अध्ययन का उद्दिष्ट है।

कथा-शली

इस अध्याय में अन्तर्गत हमने आरम्भ में प्रत्येक उपयास की कथा रेखाश्रा को संक्षेप में प्रस्तुत करत हुए उसके मनोवैज्ञानिक हेतु का अनुसंधान किया है और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'परख' से 'अन्तर' तक जनद्र की औपयासिक यात्रा में पाँच प्रयोग मुख्य रूप से दृष्टिगत हात हैं

१. सबसे प्रथम 'परख' और 'तपोभूमि' का कच्चा-मीठा प्रयोग है, जिसमें लेखक की औपयासिक सम्भावनाओं के बीज स्पष्टतः गाँवर होते हैं। परख की सबसे बड़ी उपलब्धि कटो-जैसी जीवन्त बलिदानमयी पत्नी का सृजन है। 'तपोभूमि' अपने विषय-वविषय एवं विस्तार के कारण जनद्र की औपयासिक सृष्टि में बेमेल-सी लगती है। (या व 'तपोभूमि' का अपनी रचना भी स्वीकार नहीं करते, उनका धन इसमें बहुत घून है।)

२. दूसरा प्रयोग 'सुनीता' और 'सुलदा' के रूप में हम मिलता है जहाँ दो सौन्दर्यमयी नारियाँ अज्ञात रूप में क्रान्तिवारियाँ व सम्मान में फँस जाती हैं और उनका बवाहिक जीवन पशु होते-होते बचता है। इन उपयासा की लेखन-शली पर ध्यावावादी गद्य की गरिमा एवं मादक का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

३. 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' के रूप में हम तीसरा औपयासिक प्रयोग पाते हैं, जिसमें कि मध्यवर्ग की दो विनिष्ट नारियों की यातना का लेखक न चित्रित किया है।

४ 'व्यतीत' और 'विवत' में चौथे श्रौप-यासिक प्रयोग के दशन होते हैं। 'व्यतीत' के सबध मे पहली महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह पुरुष प्रधान उप-यास है, जबकि अय उप-यासो म नारी-पात्रो की प्रधानता है। 'व्यतीत' तो 'विवत' का ही सहजात उत्पादन है।

५ 'जयवधन', 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' मे हम पाचवें श्रौप-यासिक प्रयोग क दशन करते है जहा कि पात्रों के जीवन पर राजनीतिक आवरण डाला गया है और समसामयिक सन्दर्भों को मुखर किया गया है। 'जयवधन' अपने विशाल कलेवर के कारण जनेद्र की श्रौप-यासिक सृष्टि मे एक विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचायक है। 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' मूलत रेडियो प्रसारण के लिए लिखे गये हैं। 'अनन्तर' मे सत्स्मरणात्मक स्वर मुखर है। मूल कथाशा के अनुसंधान की प्रक्रिया म लेखक की जीवनानुभूति अत्यंत ध्यक्तिक एव सीमित है। लगता है, जसे लेखक इक्के पुक्के कथानको के ढाचो को ही पुन-पुन नयी भूमिका मे प्रस्तुत कर रहा है।

जनेद्र के उप-यासो म मूल रूप से वरुणात्मक शैली और आत्मकथात्मक शैली अपनायी गई है। आत्मकथात्मक शैली लेखक के लिए अधिक मौजू है। जयवधन को छोडकर सभी उप-यास लघु उप-यासो की कोटि मे आते हैं। सभी उप-यासो के विश्लेषण के उपरान्त हम इस निष्कप पर पहुँचे हैं कि जनेद्र हिंदी मे न केवल लघु उप-यास के प्रथमक हैं, बल्कि आत्मकथात्मक शैली के 'मास्टर' भी हैं। दशन म हम जिसे आत्मसाक्षात्कार कहते हैं वही उप-यास म आत्मकथात्मक शैली का प्रेरणा विद् है। इन उप-यासो के सृजन की मनो भूमि का संधान करने पर हम पाते हैं कि वहा कुछ वकील हैं, कुछ रिटायड जज हैं और कुछ पीडित, सतप्त एव अभिशप्त नारिया हैं, जिनकी यातना को साकार करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। जनेद्र के नारी-पात्रो में क्रान्ति कारिया के प्रति सम्मोहन की बात पुन-पुन आयी है, जिससे यही सिद्ध होता है कि लेखक क्रान्तिकारियो को एक अजूबे के रूप मे प्रस्तुत करना चाहता है। जनेद्र के सभी पात्र व्यक्ति ही हैं। जनेद्र मे गांधी का प्रभाव उयला उयला-सा ही है, किन्तु विचारों के मौसम की दृष्टि से वे श्रुत रूप में प्रॉपड के अधिक निकट हैं, इसका अधीत रूप तो केवल 'कल्याणी' में ही मिलता है।

वरुण-शैली

वरुण-शैली की दृष्टि स जनेद्र के उप-यासो को चार श्रेणिया म विभा जित किया गया है। (१) सबप्रथम, विभिन्न पात्रो की मनस्थिति के वरुण म हम उधेडबुन, सकल्प विकल्प और भ्रममातिसूक्ष्म धचारिक प्रतिक्रियाओं के

दशन करते हैं। इनमें इतना विविध एव विस्तार है कि जनेद्र का विचार जगत् इन्ही के आधार पर टिका हुआ लगता है। (२) ऐसी ही प्रमत्ता के माध्यम से उपन्यासकार दार्शनिक विवेचन की सीमा तक पहुँच जाता है और अपने दशन की रेखाओं को उदरेहने लगता है। ऐसी विवरणा से उनकी औपन्यासिक सृष्टि आक्रान्त है। जीवन और जगत् के मूल तत्वों को यहाँ उन्होंने पकड़ने की चेष्टा की है और व इस दिशा में इस सीमा तक सफल हुए हैं कि उन्हें प्रायः दार्शनिक उपन्यासकार कहा जाता है। यह उनकी बहान गली की द्वितीय श्रेणी है। (३) तृतीय श्रेणी में पात्रों का अंतरण एवं बाह्य वातावरण आता है। बाह्य वातावरण में प्रकृति-बहान का जीवित रूप आरम्भिक उपन्यासों में ता मिलता है, किन्तु परवर्ती उपन्यासों में यह रूप क्षीण व क्षीणतर होना गया है। पूर्ववर्ती उपन्यासों का प्रकृति-बहान दृष्टावादी कविता के प्रकृति बहान से तुलनीय है। (४) परवर्ती उपन्यासों में समासमयिक राजनीति उनके मृजान पर इतनी हावी हो गई है कि वे प्रकृति के जीवित रूप का ता विस्मृत ही कर बैठे हैं और राजनीतिक क्लृपाह में इतने तल्लीन हो गए हैं कि नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का सघष, सत्ता का परिष्कार, नयी दुनिया के प्रति वचारिक आकुलता, उनके उपन्यासों में मुखर होने लगे हैं।

जनेद्र का भाषा गली सबकुछ एक से ही साधे में ढली हुई मिलती है। उसके दो रूप मुखर हैं (१) उसका प्रवृत्त रूप पात्रों की पारस्परिक वार्ता में मिलता है, जहाँ वे स्वाभाविक सहजे में मुहावरेदार गूढावली के द्वारा जीवन का उल्लेख-संस्पर्श देने हुए उन्हें बुलवाते हैं। (२) द्वितीयतः, उनकी भाषा गली मानसिक क्रियाओं के विश्लेषण में उपलब्ध होती है। यही हम रहस्यो-मुख प्रवृत्ति के भी दशन होते हैं। जनेद्र सहजता में जटिलता की ओर अप्रसर हुए हैं। 'परख' की भाषा गली में धीरे धीरे प्रवाह है, सुनीता में अलकृति और चटकीलापन है, 'त्यागपत्र' में वचारिक परिपक्वता है, 'कल्याणी' में अधीत मनोविज्ञान की अनुगूज है। 'ध्यतीत', 'विदित' और 'सुखदा' में वचारिक रूक्षता आ गई है। जयवधन तक आते आते उनकी भाषा गली में एक ठह राव आने लगता है। यहाँ उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त सश्लिष्ट एव अयगभत्य से परिपूर्ण है। 'मुक्तिबोध' और 'अनंतर' में ह्यास के लक्षण स्पष्ट दिखायी देने लगे हैं। यहाँ उनका आत्मकेन्द्रित एव सस्मरणात्मक रूप मुखर होता है और वे पुनरावृत्ति के भवर में फसत हुए-स प्रतीत होते हैं।

समावेश तथा सवाद

दो पात्रों की पारस्परिक वार्ता का हमने सवाद के अंतर्गत लिया है।

सभापण मे कोई विशिष्ट पात्र धाराप्रवाह रूप मे किसी विषय या प्रसंग-विशेष पर अपने विचार प्रकट करता है। दोनों ही स्थितियों मे श्रोता की अपेक्षा रहती है पर सवाद मे श्रोता एक सक्रिय अभिकर्ता भी होता है जबकि सभापण मे श्रोता निष्क्रिय होता है। सवादो एव सभापणा को कई वर्गों मे विभाजित किया गया है। वहीं इनके द्वारा मन स्थिति का निरूपण किया जाता है, तो वही वैयक्तिक जीवन के प्रसंग मुखर हो जाते हैं जिन्हे मूल मे कोई घटना विशेष होती है। इसका तीसरा वग तात्त्विक प्रसंगो स परिपूर्ण कहा जा सकता है, इनमे किसी तत्त्व विशेष का प्रतिपादन होता है और अपनी बात को दार्शनिक गहराई के साथ प्रकट किया जाता है। चतुर्थ श्रेणी मे राज नीतिक एव समसामयिक सद्दमों के सवाद एव सभापण परिगणित किए गए हैं। इस प्रकार के सवाद एव सभापण परवर्ती उपयासों मे प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। पंचम श्रेणी में हम प्रेयस प्रेयसी के मध्य सम्पन्न हुए सवादो एव सभापणों को ले सकते हैं। इस श्रेणी मे अंतरगता अपनी चरम सीमा को प्राप्त कर लेती है। जेनेद्र के सभी पात्र लेखक की ही शब्दावली मे बात करते हैं। वही व्यंग्य विनोद, तो वही कटुक्तिया के भी दर्शन होते हैं। पूर्ववर्ती उप न्यासों में जेनेद्र के सवादो एव सभापणों मे जिस स्वाभाविक ऊर्जा के दर्शन हुए थे, वह क्रमशः क्षीण होती गई है। परवर्ती उपयासों मे सवाद जीवन को ऊष्मा से सप्लावित प्रतीत नहीं होते। एके दार्शनिक की-सी जड़ता उनमे आती जा रही है। सवादो मे बात-चीत की सहज भंगिमा रहती है और स्थान स्थान पर मुहावरों के प्रयोग से एक तीखापन भी आ जाता है। मन के अतल गहन गह्वरों की प्रवृत्ति को उनकी शब्दावली मूत करने मे सक्षम है।

सवादो की तुलना मे सभापणो मे उपयासकार क पास इस बात का अधिक अवसर रहता है कि वह अपनी विचारधारा को पूर रूप मे प्रकट कर सके। सभापणो मे प्राय विशेष शली के दर्शन होते हैं। सभापणो मे गद्य काव्यात्मकता के लिए भी पर्याप्त अवसर रहता है ऐसे स्थला पर भावो का प्राजल प्रवाह एक समा बाध देता है। वहीं-कहीं सभापण आत्मकयात्मक सस्मरण का भी रूप ले लेते हैं विशेष रूप से उनके परवर्ती उपयासो मे यह प्रवृत्ति अत्यन्त मुखर है। सभापणों में दार्शनिक मन स्थिति के उद्घाटन के लिए विशेष अवसर रहता है। कोई भी पात्र, जीवन के किसी प्रसंग को लेकर उसे उसे अपने विचारों की बिमटो मे पकड़ लेता है और उसका अपनी अन्तर्दृष्टि से ऐसा 'स्क्रीनिंग' प्रस्तुत करता है कि चित्र का अंतरण एव बहिरण दोनों ही सभापणों की सीमा में आबद्ध हो जाते हैं। कभी-कभी किसी विशिष्ट पात्र के पत्र भी सभापण का रूप ले लेते हैं वहा उनकी गद्यकाव्यात्मक छटा

देखने ही बनती है। ये पत्र ये गद्य-काव्य और ये सभाषण उपयासकार व महत् उद्देश्य और उससे जीवन दान को प्रकट करने में एक उल्लेखनीय भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

गली के मनोवेगगत रूप तथा स्थिति

भारतीय साहित्य-शास्त्र में शली की पूवजा का रूप में रीति और वृत्ति का उल्लेख मिलता है। 'अनन्तर' इस लिखने के दृश्य के रूप में परिवर्तित किया गया और इसके तीन भेद बतलाए गए

(१) व्यास गली

(२) समास गली

(३) प्रलाप या विनोप गली ।

शली के गुणों के रूप में भोज, माधुर्य एवं प्रसाद की परिवर्तना की गई। पाश्चात्य साहित्य में शली के सबंध में अनेक मत प्रचलित हैं किन्तु यपन के मत गली ही व्यक्तित्व है जो अधिक मायता प्राप्त हुई। चस्टरफील्ड शली को विचारा का परिधान मानते हैं। प्लटो की मायता है जब विचार को तात्त्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो शली का उदय होता है। अस्तु की धारणा है कि 'गली से वाणी में वशिष्ट्य का समावेश होता है। इसके अतिरिक्त भी पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अनेक परिभाषाओं का उल्लेख मिलता है। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य परिभाषाओं का सबसे ममत्त रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है 'व्यक्ति, विषय भाषा एवं प्रयोजन के वशिष्ट्य के अनुसार अभिव्यजना-मदति में जो वशिष्ट्य आ जाता है वही गली है।

मनोवेग मन का वह धर्म है, जो किसी परिस्थिति विनोप में कारण विनोप में समुत्पन्न होते हैं। ये ही वापगति के मूल प्रेरक हैं और इन्हीं के तान-बान में किसी भी उपयास की कथा का पट बुना जाता है। मनोवेग से पात्रों के व्यक्तित्व की अभिव्यजना होती है ये मनोवेग गली को भी नियंत्रित एवं नियमित करते हैं। कोई उपयासकार जब आत्मक-प्रात्मक शली का अपनाता है तो उनका यही मतव्य होता है कि वह व्यक्ति के अह को उसके व्यक्तित्व के वशिष्ट्य को अधिक महत्त्व दे रहा है जब वह वरुणात्मक गली को अपनाता है, तो वह व्यष्टि से अधिक समष्टि के भावों की व्यजना करता है। स्वाभाविक ही है कि ऐसी स्थिति में वह 'आपबीती' के स्थान पर 'जगबीती' का अधिक दर्शाए।

भावों के तीन प्रकार बताए गए हैं

(१) हृन्मज्जित भाव

(२) प्रज्ञात्मक भाव, और

(३) गुणात्मक भाव ।

इन्हीं के अतर्गत हमने जनेद्र के विभिन्न उपयासों के पात्रों के मनोभावा का विश्लेषण एव सश्लेषण किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जनेद्र के उपयासों में वैसे तो सभी प्रकार की शक्तियों एव मनोवैशेषों के स्थान हाते हैं किन्तु ऐसे मनोवैशेषों की अभिव्यञ्जना में वे अधिक सक्षम हैं, जो नरान्यजय एव मरणधर्मा हैं । हृषीकेश या उत्साहजय जीवनधर्मा मनोवैशेषों का केवल प्रेमी युगलों के हास्यविनोद एव चुहल में ही किञ्चित् आश्रय मिलता है । अधिकांश पात्र गहरे चिन्तन का आवरण ओढ़े रहते हैं । फलतः जीवन की सूक्ष्म वृत्तियों का पर्याप्त विवेचन मिलता है । जनेद्र के सवादों में दिन-दिन जीवन का मुहावरा घड़ी कुशलता एव मासिकता से अभिव्यक्त हुआ है । प्रायः सभी उपन्यासों में शली-तत्त्व का आधार वास्तविकता न होकर कल्पना-तत्त्व रहा है । गहन दार्शनिक स्थिति के विश्लेषण में यही कल्पना-तत्त्व, बुद्धि-तत्त्व का आधार अपना लेता है । जीवनधर्मा प्रवृत्तियों के स्थान पर मरणधर्मा प्रवृत्तियों की प्रधानता का कारण इनकी गद्य शली में एक विशेष प्रकार के नरान्य की अतर्धारा सक्त्र प्रवाहित है । अतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जनेद्र की मनोवैशेषात्मक शली का एक विशिष्ट रूप है, जो हिन्दी उपन्यास-साहित्य में एक पृथक् स्थान और विशिष्ट व्यक्तित्व का अधिकारी है । वही से और किसी भी स्थिति में जनेद्र के किसी एक वाक्य को लेकर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि ऐसा वाक्य तो उनकी ही टक्काल में गढ़ा जा सकता है ।

शली का विचारगत रूप

मानव-जीवन में भाव-तत्त्व एल विचार तत्त्व का सहअस्तित्व है । भाव तत्त्व में हमारी सोच-चेतना प्रसुप्त रहती है तो विचार तत्त्व का जीवन का मरुण्ड कहा जा सकता है । शली-तत्त्व में विचार-तत्त्व का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि शली रूपी शरीर का यही मूलाधार है । उपन्यासकार के कथ्य में जो बातें बनी आई हैं उनके उपन्यासों में मन को मग्न डालने की जो सामर्थ्य है उसका आधार उनके मूलमानी विचार ही हैं । आधुनिकता तभी मृत होती है, जबकि हम युग के विचारों का सावधानी से दोहन करते हैं । जनेद्र के उपन्यासों में विचार एव भाव पारस्परिक रूप से इतने जुड़ हुए हैं कि उनका पथक्करण प्रायः सम्भव नहीं होता । वैचारिक परिधि में कहीं नर-नारी-सम्बन्धों का विवेचन मिलता है, तो कहीं पूजोवाद की असंगतियाँ सिर उठाती हुई प्रतीत होती हैं तो वही समाजवाद का स्वर अपने अविकसित रूप में भाँकने लगता है । ऐसा प्रतीत होता है कि 'परस', 'सुनीता' की भावुकता के उपरान्त त्यागपत्र

म उपयासकार चिन्तन की परिपक्वता के अधिक निकट आ गया है। कल्याणी' गव मुख्या म मनाविज्ञानपरक विचारा के दान होन हैं, ता विवन' एव व्यनीत म व व्यक्ति का केन्द्र बनाकर उसकी व्यथता का प्रकट करन लग जाते हैं। जयवधन की वैचारिक सपनना विम्मयकारी है। 'भुक्तिवाध और अनतर म उनका वैचारिक सम्पक समसामयिक समस्याया म हा जाता है। इन अतिम रचनाओं म जनद्र विचारा व गगन स सहज-सामाय भूमि पर आ जात हैं किन्तु फिर भी उनकी दानिकता कुठिन नहीं हानी। परवर्ती उपयासा म उनका विचार व्यग्यामक परिधान धारण कर लत हैं और व अयतत्र एव राज तत्र पर चुगीने व्यग्य करने लगते हैं।

जनद्र की विचारगत गली पर उनका व्यक्तित्व की अमिट छाप है। दाश निक ऊहापाह के कारण उनका चिन्तन सन्द एक उच्च धरातल पर रहा है। ज्या 'या उनकी औप्यासिक मृष्टि म विचारा का जजाल बन्ता गया है त्या ल्यों उनकी भावमय दृष्टि उपमिठ हानी गई है। यही कारण है कि उनक पर वर्ती उपयास, उपयास के चौमटे म भी पूरी तरह फिट नहीं हा पात। वैचारिक गहनता के कारण उनकी गली अस्पष्टता व तटों को छूने लगी है और उस पर एक रहस्यमय आवरण सा पडा नजर आ रहा है। जनद्र के पाम दुनिया को देने के लिए सन्देश तो है, पर वे उसे गहरावेष्टित नहीं कर पा रहे। फनन उनके परवर्ती उपयास हलक म एक कटु नित स्वान छाड जात हैं। जनद्र क उपयासा म मनाविज्ञानपरक गनी-नत्व सर्वाधिक मुखर है। व वम्नुन विद्वान् पाठका एव अनविज्ञेपण म रुचि रखन वाल जिना मुद्रा क उपयासकार है। उनकी विचारगत गली म परम्परागत मुद्रावरे ता आय हा है किन्तु भावयकतानुसार उहनि नय मुद्रावरा को भा गया है। प्रेरणा का जितना बाह्यीकरण होता गया है, उतनी ही उनकी औप्यासिक मृष्टि औपचारिक बनती गई है।

चेतन और अवचेतन की प्रक्रियागत स्थिति और माया-शली

मनुष्य का मनारचना अत्यन्त जटिल एव सरिलिप्त है। फॉयड न मावाय चेतना का तीन भागा म विभाजित किया है चेतन अवचेतन और अचेतन। मन क य तीन स्तर मनुष्य के चिन्तन और उसके प्रकटीकरण म जा भाया चीन्ती की स्थिति हाती है उसका बहुत दूर तक प्रभावित एव नियंत्रित करते हैं। इन्हों आधारों पर हमने जनद्र की औपन्यासिक मृष्टि म चेतन और अव चेतन की प्रक्रिया के माध्यम स मनोविज्ञानपरक गली-नत्व का मधान एव अनुगालन किया है। मनाविज्ञानपरक की प्रधानता हाने क कारण उनकी अव

चेतन की अभिव्यक्ति ही वही प्रतीक का रूप ले लेती है, तो वही गहरे दार्शनिक विवेचन में उतर जाती है। इस सन्दर्भ में फ्रायड और उनके सहयोगी जुग के विचारों को विशेष रूप से उद्धृत किया गया है। यह तो निर्विवाद ही है कि जनेद्र ने इन मनोविश्लेषवादियों का विधिवत् अध्ययन नहीं किया है। आरम्भ के उपयासों में श्रुत एवं अनुभूत आधार पर मनोवैज्ञानिक विवेचन है किन्तु 'कल्याणी' में अधीत मनोविज्ञान का रूप भी प्रस्फुटित हाता दिखाई देता है। गुसलखाने वाले प्रकरण में स्पष्ट रूप से सधर्म, आतक एवं आत्म प्रभेदण का प्रभाव परिलक्षित हाता है। फ्रायडीय मनोविश्लेषण की जो सीमाएँ रही हैं, उनके प्रति भी हम जागरूक रहे हैं और प्रतिपक्ष के दृष्टिकोण को भी आवश्यकतानुसार उद्धृत किया गया है।

विभिन्न उपयासों से व्यापक रूप में उद्धरण देते हुए और उनका पुनराख्यान करते हुए हम इन निष्कर्षों पर पहुँचे हैं कि इस दिशा में जनेद्र ने प्रवर्तनकारी भूमिका प्रस्तुत की है। प्रेमचन्द की शीघी सपाट भाषा शली एवं वरुणनात्मकता को उन्होंने मनोविश्लेषणात्मकता का घरातल प्रदान किया। नया पथ बनाते हुए उपयासकार को भाषा के घरातल पर तोड़ फाड़ करनी हाती है आवश्यकतानुसार खुदाई भी करनी पडती है और फिर उस नय रूप में ढालकर एक परिनिष्ठित रूप प्रदान करता हाता है। यदि हम कविता में मधिलीशरण गुप्त और कामायनीकार प्रसाद की भाषा शली तथा गद्य में प्रेमचन्द और जनेद्र की भाषा शली का तुलनात्मक अध्ययन करें, तो हमें इन दोनों में स्पष्ट अन्तर परिलक्षित हाता। जनेद्र की भाषा में अराजकता स्वेच्छाचारिता एवं अयवस्था तो है, पर यह नव निर्वाण की आवश्यक शक्त हाती है। किसी चीज को बनाने या उसे नया रूप देने में पुराने ढाँचे को मलबे का रूप देना पडता है, और तब उसी मलबे में से नई इमारत, नई साज सज्जा एवं नये गठन-सौन्दर्य को लेकर उठ खडी हाती है। आज हिन्दी-कथा-साहित्य में अनेक धमवीर भारती राजेन्द्र यादव, उषा प्रियम्बदा और शिवानी में हम भाषा का जो नया निखार देखते हैं उसका प्रारम्भ जनेद्र के ही उपयासों में हुआ था।

चेतन और अवचेतन की प्रक्रियागत स्थिति में लेखक द्वारा नियोजित बात चीत बडी सूक्ष्म एवं भावप्रबण हो जाती है। ऐसा प्रतीत हाता कि अवचेतन में प्रसुप्त मनोवैग एक के बाद एक अँगडोइयाँ लते हुए उठ रह हो। हृदय के सक्षिप्त उद्गारा में लेखक बहुत-बहुत अन्तकहा छोड देता है। ऐसी स्थिति में जनेद्र प्रायः दूय चिह्नों () का उपयोग करते हैं। इससे पाठक की कल्पना को एक भावोत्तेजना मिनती है और वह अधूरे चित्र को पूरा करने में सृजना

त्मक आनन्दानुभूति में लवलीन हो जाता है। ऐसी स्थिति में मौन ही वाचाल हो उठता है। ये मुखरित मनोवेग धारदर्शी भाषा शली के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

चेतन और अचेतन की प्रक्रियागत स्थिति में उपयासकार हाव भावों का चित्रण बड़ी बारीकी से करता है। उसके रंग चटकीले होते हैं और वह मन की चेतन अचेतन स्थितियों को छू भर देता है। पाठक की कल्पना के लिए वह पर्याप्त उपकरण जुटाता है। इस प्रकार के विवरणों में एक प्रकार की गतिशीलता रहती है किंतु उपयासकार का मूलग्राही दृष्टिकोण ऐसी स्थितियों को उपलक्ष्य मात्र ही बनाता है वह इनमें न स्वयं भटकता है और न पाठक को भटकने देता है।

एक सृजनात्मक साहित्यकार होने के कारण जनेद्र ने अचेतन की मधुरिमा में डुबाकर हिंदी हिंदुस्तानी को एक ऐसा रूप प्रदान किया है, जो सबके गले उतर सकता है। जनेद्र की दृढ़ मायता रही है कि हिंदी अपने अखिल भारतीय रूप में हिंदुस्तानी को आत्मसात् करके ही चल सकती है। इस मायता का प्रभाव उनके शली-तत्त्व में स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। जनेद्र ने अचेतन को अभिव्यक्त करने के लिए जहां परम्परागत शब्दों एवं मुहावरों का काम में लिया है वहीं उन्होंने कुछ नये शब्द एवं मुहावरे भी घड़ हैं। उनकी वाक्य रचना, शब्द चयन एवं पद विन्यास प्रचलित सभिन हैं और इसके मूल में उनका अचेतन बड़ा सक्रिय रहा है। अचेतन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से जनेद्र को अत्यन्त सक्षम उपयासकार भी कहा जा सकता है। उनकी ऐसी अभिव्यक्ति में आयामों की विविधता, बहुरूपता एवं जीवन्तता, उन्हें हिंदी कथा-साहित्य में एक विलक्षण गौरव प्रदान करती है। अज्ञेय जसा काव्यात्मक सौंदर्य उनके गद्य में भले ही न हा पर जीवन स्थितियों की विराट्ता एवं गहनता में, और परिणामस्वरूप दार्शनिक ऊहापोह में, वे अज्ञेय से आगे रहें हैं। यों कहिये कि अज्ञेय ने भाषा शली के सम्बन्ध में सर्वप्रथम प्रेरणा एवं दीक्षा जनेद्र की कृतियों से ही ली है।

परामानसिक स्थिति और भाषा शली ,

परामानसिक स्थिति से तात्पर्य उस इन्द्रियातीत स्थिति से है, जिसमें कि रचनाकार भौतिक जगत् से परे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करता है और जिसकी अनुभूति इन्द्रियगम्य नहीं होती। इसका परामनोविज्ञान से घनिष्ठ संबंध है। फ्रॉयड ने मन को तीन भागों में विभक्त किया है (१) चेतन (२) अचेतन और (३) अचेतन। जुग फ्रॉयड के अचेतन को तो स्वीकार करते हैं

पर उनकी दृष्टि में अचेतन के दो स्तर हैं (१) व्यक्तिगत अचेतन और (२) समाधिगत अचेतन । उसके अनुसार समष्टि-मन में निवास करने वाली भावनाएँ अस्पष्ट निराकार, अनियंत्रित और अनिवचनीय होती हैं पर ये मानव जाति में निसर्ग से प्राप्त हैं और युग-युग से मनुष्य में निवास करती आई हैं । सत्य की खोज अदृश्य शक्ति में विश्वास, देवत्व और ईश्वरत्व में आस्था, हमारी चेतना का अनादि काल से प्रभावित कर रहे हैं ।

जनेन्द्र के पात्रों में व्यक्तिगत अचेतन एवं समाधिगत अचेतन का द्वन्द्व चलता है तो कुछ पात्रों में इन दोनों का सामंजस्य इस रूप में प्रस्फुटित होता है कि उनके व्यक्तित्व को एक पूणता मिल जाती है । जनेन्द्र के उपन्यासों में प्रथम वर्ग के उदाहरण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं, जबकि द्वितीय वर्ग के उदाहरण अपेक्षाकृत यून हैं ।

परामानसिक स्थिति के सर्वेक्षण के उपरांत हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि जनेन्द्र का इस स्थिति के चित्रण में असाधारण सफलता मिली है । व्यक्तिगत अचेतन और समाधिगत अचेतन के द्वन्द्व को लेखक ने बड़ी ही सूक्ष्म एवं व्यञ्जनापूर्ण सदावली द्वारा उदेहा है । परामानसिक भावों के विविध प्रायाम कहीं सवेतात्मक रूप में, तो कहीं सध्या भाषा में प्रस्फुटित हुए हैं । परवर्ती उपन्यासों की तुलना में परवर्ती उपन्यासों में यह प्रवृत्ति अधिक परिष्कृत होती है । लेखक क्रमशः भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हुआ है । भौतिक स्तर पर उसकी शली में अधिक चटकीलापन है क्रमशः यह चटकीलापन क्षीण होता गया है और उपन्यासकार की जीवन्तता भी परवर्ती उपन्यासों में मद से मदतर पड़ती गई है ।

परामानसिक स्थिति के चित्रण में जनेन्द्र की भाषा शरीर एक नये निखार के साथ जावनगत असंगतियों का चित्रण करती है और अतदचेतना में जो भी आड़ी तिरछी रेखाएँ होती हैं उनका फोटोग्राफिक विवरण प्रस्तुत करने में उपन्यासकार की असाधारण क्षमता ही उसकी भाषा शली में प्रकट होती है । वे मन की सूक्ष्मातिभूषण तरंगों के अद्भुत शिल्पी हैं । परामानसिक स्थिति के चित्रण में अनेक स्थलों पर जनेन्द्र की भाषा-शली रहस्यात्मक कुहेलिका के आवरण में लिपटी रहती है । यदि हम उसे कई बार पढ़ें और उसका विश्लेषण करें तो उसका अतः सौंदर्य और अधिक निखार के साथ खिल उठता है । ऐसे स्थानों पर विचारों की गरिष्ठता तो रहती है किंतु इस गरिष्ठता के नीचे मूलग्राही चेतना का अन्तःप्रवाह भी प्रगात गति से आन्दोलित होता रहता है ।

अतः, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि परामानसिकता की द्विविधापूर्ण स्थिति का परवर्ती उपन्यासों में अत्यन्त सटीक विवरण है । समाधिगत अचेतन

में जम हुए सस्कार पात्रों का अबुद्ध रूप में मागदगन करते हैं और चेतन क्रिया-कलाप में अथवा धार्मिक अचेतन में इसमें विपरीत ही आचरण होता है। एस स्थला पर लेखक की अभिव्यजना प्रायः लक्ष्यवाने लगती है। मन की सूक्ष्म वायवी तरंगों को पकड़ने की स्थिति में ही उपन्यासकार की यह निपटि होती है। यहा उपन्यासकार घटना-परिधि को लापकर दार्शनिक परिधि में पच जाता है और प्रायः सध्या भाषा का प्रयोग करन लगता है।

गल्पशक्तिपरक अनुसंधान प्रतीक-योजना

सामान्यतः शक्तिशाली का विवेचन काव्य के सदन में ही मिलता है किन्तु हमने जनेन्द्र के उपन्यासों के सदन में गल्पशक्तियों के ४२८ उदाहरणों पर व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया है। इसके सन्दर्भ-मूल को आनन्दबधन से लगाकर नव्यतम साहित्यशास्त्रियाँ क विवेचन तक लाने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः गली-तरंग का मूलधार गल्पशक्तिशाली ही है। जब हम यह कहते हैं कि कथा-साहित्य में छायावादी गली का प्रवर्तन जनेन्द्र ने किया तो हमारा यही तात्पर्य होता है कि उन्होंने छायावादी की लक्षणिक गली का और व्यजना क विविध प्रकारों को अपने लेखन में अनजान ही समाहित किया है। साहित्यशास्त्र की दृष्टि से अभिधा का उतना मूल्य नहीं है जितना कि लक्षणा और व्यजना का है। हमारे गल्पशक्तिपरक अनुसंधान में लक्षणा के आठ उपभेदों का और व्यजना के छः उपभेदों का समाहार है। कुछ ऐसी अभिव्यक्तियाँ भी हैं जो कठोर रूप में शब्द-शक्तियों के अन्तर्गत तो नहीं आतीं किन्तु वे अनेक शब्द-शक्तियों का अम अवश्य उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार की उक्तियों की गणना हमने विविध पद रचना के अन्तर्गत की है।

छायावादी काव्य-शैली की ही तरह छायावादी गद्य-शैली में भी प्रतीका का विविध महत्व है। इन प्रतीकों का कोई-न-काई मनोवैज्ञानिक आधार होता है। इनमें अभिव्यक्ति में एक विशेष प्रकार की अथवता आ जाती है। भारतीय विद्वान् प्रतीका और शब्द-शक्तियों में धनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं। सङ्गतात्मक प्रतीका का व्यक्तिवाचक सनाधा में वाच्यता सूच्य होना है जबकि तथार्थिक अभिव्यजनात्मक प्रतीक विशेष प्रयोजन से प्रेरित होने के कारण लक्षणा की अभिव्यजना करते हैं। आरोपमूलक प्रतीकों में शब्दा पर नय अथ का आरोपण होता है तथा इनमें दो अर्थों—प्रस्तुत और अप्रस्तुत—की सहस्यति रहती है। अतः इनके मूल में व्यजना शक्ति की सत्ता स्वीकार की जा सकती है। वस्तुतः आरोपमूलक प्रतीक वाच्यता की व्यजना करते हैं। अस्तु प्रतीकों के तीनों प्रकार—सङ्गतात्मक अभिव्यजनात्मक एवं आरोपमूलक—कम-अभिधा लक्षणा

एव व्यजना शक्तिया पर आधारित हैं। जनेद्र ने अपने सभी उपयामों में प्रतीकों का पुष्पल मात्रा में उपयोग किया है। इनके माध्यम से जीवन की ललक, स्फूर्ति एवं व्ययता कही दर्शायी गई है, तो कही यौवन का दुर्दान्त रूप। नारी जीवन की मातना की बहुविध छवि या प्रतीकों के ही माध्यम से ही दर्शायी जा सकती थीं। मनोविज्ञानपरक शैली तत्त्व के निर्वाह में भी इन प्रतीकों से बड़ी सहायता मिली है। इन्हीं की सहायता से कल्पना का वैभव और अनुभूति की द्रावकता मूत हो उठी है। शब्द-तूलिका के माध्यम में उपन्यासकार जब चित्र का निर्माण करता है, तो प्रतीक उसकी सहायता को दौड़ घाते हैं। कविता के उपमान भले ही भले पड़ जायें पर प्रतीकों में इतनी विविधता एवं नवीनता है कि उनके भले पड़ने की सम्भावना सहज में नहीं की जा सकती।

जनेद्र के उपन्यासों में वस्तु व्यजना का उपयोग सर्वाधिक हुआ है। द्वितीय स्थान पर भाव-व्यजना तथा तृतीय स्थान पर प्रयोजनबन्ती लक्षणा आती है। एक मूलग्राही दार्शनिक द्वारा वस्तु व्यजना का सर्वाधिक उपयोग ही स्वाभाविक है। मनोविश्लेषण के आधिक्य के कारण भाव-व्यजना द्वितीय स्थान की अधि कारिणी बनी है, छायावादी परिवेश के कारण प्रयोजनबन्ती लक्षणा भी अपने उचित स्थान पर है। शब्द शक्तिया और प्रतीक विधान के कारण अभिव्यक्ति में प्राजलता आई है और उनकी गद्य-मुद्यमा में चार चाद लग गए हैं। यह एक विचित्र ही स्थिति है कि जनेद्र ने सभी शब्द शक्तिया का अनजाने ही यूनाधिक प्रयोग किया है। इससे उनके रचना-संसार के विविध्य का स्पष्ट ही आभास मिलता है। मुहावरों के घडल्ले से उपयोग के कारण ही रुढ़ि-लक्षणा के भी अच्छे-खास दर्शन होते हैं।

जनेद्र के प्रतीक विधान में कल्पना शक्ति का वैभव अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यह छायावादी काव्य के समानान्तर ही विकसित हुआ है। जब जनेद्र का पहला उपन्यास १९२६ में प्रकाशित हुआ तो छायावाद भाव पक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से अभिनव प्रयोग करने में तल्लीन था। इन प्रयोगों की विकसित परिणति हम 'सुनीता त्यागपत्र और कल्याणी' के गद्य में देख सकते हैं। यही वह समय है जब प्रसाद की कामायनी पन्त का परलव और निराला की अनामिका प्रकाशित हुई। इनसे हम 'सुनीता' 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' की कल्पना प्रवणता सूक्ष्म अथवत्ता मार्मिक प्रतीक-योजना एवं शब्द-लाघवता की सहज ही तुलना कर सकते हैं। एक बात में इन कृतियों में छायावादी काव्य से पद्यता भी है, और वह यह कि बोल चाल की शब्दावली के आग्रह के कारण तदभव शब्दों का प्रयोग एवं मुहावरों का आधिक्य एक विभाजक रेखा के समान स्पष्ट दिखाई देता है। छायावादी काव्य में इन दोनों तथ्यों के प्रति एकान्त

उपना है यद्यपि पत के ब्रजभाषा के प्रयोग और निराना की मुहाबरेरानी की प्रवृत्ति, इसके किंचित् अपवाद कह जा सकते हैं ।

आरम्भिक कृतियां म यहा बट्टो के घर की जामुन की शीतल छाह है काग मोर की प्रकृति-नटी का रम्य चित्र है सुनीता', 'त्यागपत्र और विवत म आवश्यकतानुसार नदी और सागर का चित्र प्रस्फुटित हुआ है, वहा परवर्ती कृतियां म प्रकृति की एकान्त उपेक्षा ही मिलती है । किन्तु ठीक इसके विपरीत प्रतीक विधान म सखक के द्वारा प्रकृति की उपेक्षा सभव न हो सकी, क्योंकि अधिकारा प्रतीका का मूल सात प्रकृति ही है । इससे यही प्रमाणित होना है कि रचनाकार साधारण रूप म प्रकृति-वर्णन से विरत हो सकता है किन्तु प्रतीक विधान म वह अतरंग सहजरी की तरह उसकी कृति के रूप को सवारती भी है और आवश्यकता पडने पर बिगाड भी देनी है ।

जनद्र के उपन्यासा मे क्रमण उनकी सूक्तिप्रियता बढती गई है जो इम बात का प्रमाण है कि लेखक दाशनिक मुद्रा की स्थिति म जीवन और जगत् का पर्यालाचन करने लगा है । इससे जहा उनकी रचना की जीवन्त उष्णता म कमी आई है वही उसका दाशनिक ठडापन बढता गया है जिसके परिणाम स्वल्प रुक्षता एव एकरसता क्रमण पर पसारती गई हैं । इस प्रकार उनके उपन्यास उनके निवृद्धो व अधिक निकट आने लगे हैं और उपन्यास-कला की रुचिरता से दूर पडते जा रहे हैं ।

आकार की दृष्टि से गल्प-शक्तिपरक अनुसंधान और प्रतीक-याजना का प्रकरण प्रवध म एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है । प्रवध का एक निहाई भाग इसी के द्वारा घेर लिया गया है । हम इसे प्रवध का मेरुण्ड समझते हैं । इममे क्या-साहित्य के सदम मे गोध की एक नई दिशा का उभोचन भी हाता है ।

सामान्य निष्कर्ष उपलब्धियां

गोध की परिष्कारिणी (रिफाइनरी) म जो अन्तिम निष्कर्ष मूलवर्ती उपलब्धियां के रूप म हमारे सामने आये हैं वे इस प्रकार हैं—

१ जनद्र के उपन्यासा म मनस्तरव और शली-तत्व की अविच्छिन्नता सबप्रथम हमारा ध्यान आकृष्ट करती है । लेखक की अभिव्यक्ति म जो प्रचलित स भिन्न रूप है, वही शली का मूलाधार है । इसी के माध्यम स हम रचनाकार के मनोलोक म प्रविष्ट हो पाते हैं और उसके स्वभाव सस्वार एव अन्त-प्रेरणायो की नब्ज को पकड पाते हैं । इसी के अन्तगत मन के चेतन अवचेतन एव अचेतन म जो भी मानसिक प्रभाव सन्निहित होते हैं उनकी बुनावट

को उधेड़कर देखने से नये-नये तथ्यों की प्राप्ति होती है ।

२ 'परख' से 'अनन्तर' तक जनेन्द्र की औप-यासिक यात्रा के पांच सापान हैं (१) 'परख' और 'तपाभूमि का कच्चा मीठा प्रयोग (२) 'सुनीता' और 'सुखदा' की लेखन शैली में छायावादी गद्य की गरिमा और मादक वा दशन (३) 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' में गहन यातना की सूक्ष्म कहानी (४) 'व्यतीत' और 'बिबत' में पुरुष प्रधान उप-यास की परिक्ल्पना एवं सहजात उत्पादन की प्रक्रिया तथा (५) जयबधन, 'भुक्तिबोध' और 'अनन्तर' में समसामयिक सन्दर्भों के मुखर एवं सस्मरणात्मक स्वर का आधिक्य दृष्टिगोचर होता है । जयबधन' बृहदाकार होने के कारण जनेन्द्र की औप-यासिक सृष्टि में एक निराले व्यक्तित्व का परिचायक सिद्ध हुआ है ।

उप-यासकार की जीवनानुभूति अत्यंत व्यक्तिक एवं सीमित प्रतीत होती है, लेखक इनके दुक्के कथानका के ढांचा को ही पुन पुन नई भूमिका में प्रस्तुत करता हुआ प्रतीत होता है । जनेन्द्र के उप-यासों में आरम्भ में वर्णनात्मक शैली और इसके कुछ ही अनन्तर—आद्यत—आत्म-कथात्मक शैली को ही अपनाया गया है । आकार की दृष्टि से जयबधन को छाड़कर सभी लघु उप-यास की) कोटि में परिगणनीय है । जनन्द्र में गांधीवाद का प्रभाव अत्यंत क्षीण एवं सतही पाया गया किन्तु विचारा के मौसम की दृष्टि से फ्रायडवाद का प्रभाव अधिक मुखर है, विशेष रूप से 'कल्याणी' में ।

३ वरुण शैली की दृष्टि से जनन्द्र के उपन्यासों को चार भागों में बाटा गया है (१) सूत्रात्मक सूक्ष्म वचारिक प्रक्रियाओं का वरण जो कि आगे चल कर (२) दार्शनिक विवेचन का रूप ले लेता है । (३) आरम्भिक उप-यासों में प्रकृति वरण का जीवन्त रूप मिलता है किन्तु परवर्ती उप-यासों में वह क्षीण से क्षीणतर पाया गया तथा (४) परवर्ती उप-यासों में समसामयिक राजनीति का मुखर प्रभाव अपने आपको अभिव्यक्त करता है ।

जनेन्द्र की भाषा शैली के दो रूप हैं (१) प्रकृत रूप, पात्रों की मुहावरेदार शब्दावली से युक्त एवं जीवन के उदण सस्पश से सप्लावित भाषा-शैली । (२) द्वितीयत मानसिक प्रक्रियों के विस्लेषण विवेचन में तल्लीन भाषा शैली । परख से अनन्तर तक क्रमशः धीरे धीरे प्रवाह अलंकरण एवं चटकीलापन, वचारिक-परिपक्वता अर्थात् मनाविज्ञान की अनुगूज वचारिक रूढ़ता सदृश अभिव्यक्ति का अयगभत्त्व और अन्तत ह्रास के लक्षण मुखरित होते हुए प्रतीत होते हैं । परवर्ती उप-यासों में उपन्यासकार आत्मके द्रीयता सस्मरणात्मकता एवं पुनरावृत्ति व भवर में आकण्ठ निमग्न दिखाई देता है ।

४ जनेन्द्र के सभी पात्र लेखक की ही शब्दावली में बात करते हैं । इनके

मवाग म व्यग्य विना और कटूकिया के प्राय दान हान है। पूववर्ती उप-याग म जनेन्द्र के मवाग एव मभापणा म त्रिम स्वाभाविक ऊत्रा के दान हान है यह क्रम धीए होती गई है। परवर्ती उप-याग म उनक मवाग, जीवन की ठग्मा म गप्नाविन प्रतीत नही हान। एक दानिक की-नी जहना उनम घानी जा रहा है फिर भी मन के धनन-गहन गदुरा की प्रवृत्ति को धून करन म उनकी सन्भावली मात्र भी मगम है। इन मभापणा म गद्यनाव्यात्मकता सम्मरणात्मकता एव भाषा का प्राजन प्रवाह स्पष्ट रूप म द्रष्टव्य है। कपावन्मु म प्राण हुए पत्र एव मभापण उप-यागकार के महत् उद्देश्य और उमक जीवन-ज्ञान का प्रकट करन म एक उल्लेखनीय भूमिका प्रस्तुत करत है।

५. पौर्वात्य एव पाश्चात्य परिभाषाया के सवमम्मत रूप म गना का रचना विधान इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है व्यक्ति विषय भाषा एव प्रयाजन के विगिष्टय के अनुसार अभिव्यजना-पद्धति म जा विगिष्टय आ जाता है यही गती है। जनेन्द्र के उप-यागों म भावा की त्रिविध स्थिति मिलती है (१) इन्द्रियजय भाव (२) प्रज्ञात्मक भाव और (३) गुणात्मक भाव। इन मनोभावों के विन्नेपण एव सन्नेपण के उपरांत हम इस निष्पत्त पर पहुच है कि जनेन्द्र के उप-याग म वसे तो सभा प्रकार की गनिया एव मनावगा के दान हान है किन्तु एम मनावगा का अभिव्यजना म व अधिक निपुण हैं जो नरादयजय एव मरणधर्मा हैं। हृषिकेय या उत्साहजय जीवनधर्मा मनावगा का प्रमी युगला के हास्य विनो एव चुहल म ही किंचित् आभाम मिलता है। अधिकांश पात्र गहरे चित्तन का आवरण धाड़ हुए हैं। जनेन्द्र के मवाग म दनन्तिन जीवन का मुहावरा बड़ी कुशलता एव मामिकता म अभिव्यक्त हुआ है। अन्तत हम इसी निष्पत्त पर पहुचन है कि जनेन्द्र की मनावेगात्मक 'गली' का एक विगिष्ट रूप है जा हिन्दी उपन्यास-साहित्य म एक पृथक म्यान और विगिष्ट व्यक्तित्व का अधिकारी है।

६. जनेन्द्र के कथ्य म जो बाराकी भाई है उनके उप-याग म मन का मय डालन की जा सामग्य है उमका आधार उनक मूलग्राहा विचार ही है। एसा प्रतीत होना है कि उन्होंने युग के विचारों का बड़ी सतकता स दाहन किया है। परन्तु से अन्तर तक क्रम भावुकता चिन्तन की परिपक्वता मनाविज्ञानपरकता माननीय जीवन की व्यथता वचारिक सधनता सम सामयिक समझाया का सस्पण अयतन एव राजतन पर चुगील व्यग्य—इन सभी रूप म उनकी वचारिक गहनता के विभिन्न आयाम प्रस्फुटित हात हैं। ज्यों-ज्या उनकी औप-यासिक सृष्टि मे विचारा का वात्सा चक्र बन्ता गया है

त्यो-त्या उनकी सुखिपूण सौन्दर्य चतना उपेक्षित होती गई है। जनेद्र के पास दुनिया को देने के लिए सदेश तो है, पर वे उसे शकरावेष्टित नहीं कर पा रहे, फलतः उनके परवर्ती उप-यास हलक में एक कटु तिकन स्वाद छौड जाते हैं। उनकी विचारगत शैली में परम्परागत मुहावरे तो आए ही हैं, किन्तु आवश्यकतानुसार उन्होंने सूक्तियों के रूप में नये मुहावरे भी घडे हैं। प्रेरणा का वाही करण उनके उप-यास में औपचारिकता को जन्म देता है।

७ मानव की सदिलष्ट मनोरचना के सदभ में जनेद्र की मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति अचेतन के उमाचन में विशेष रूप से सफल हुई है। अचेतन की अभिव्यक्ति कही प्रतीक का रूप लेती है, तो कही गहरे दार्शनिक विवेचन में उतर जाती है। आरम्भिक उप-यासों में श्रुत एवं स्वानुभूत आधार पर मनोवज्ञानिक विवेचन मिलता है किन्तु परवर्ती उप-यासों में अधीत मनोविज्ञान का रूप भी प्रस्फुटित हुआ है। इस दिशा में जनेद्र की प्रवृत्तनकारी भूमिका उल्लेखनीय है। हिंदी-उप-यास की सीधी-सपाट भाषा-शैली एवं वणनारमकता को उन्होंने मनोविश्लेषण के उच्चतम शिखरों तक पहुँचा दिया है। जनेद्र की भाषा में अराजकता, स्वेच्छाचारिता एवं अव्यवस्था तो है पर यह नव निर्माण की आवश्यक शक्त के रूप में ही है। नवलेखन के शिल्पगत वशिष्ट्य एवं नये सदभों की अवयवता के लिए हिन्दी कथा-साहित्य जनेद्र का ऋणी है। भावोत्तेजना के परिणामस्वरूप, पाठक को सृजनारमक ध्यान-दानुभूति होती है, इस दिशा में जनेद्र की उपलब्धियाँ विस्मयकारी हैं।

८ परामानसिक स्थिति के सदभ में जनेद्र ने वैयक्तिक अचेतन एवं समष्टिगत अचेतन इन दोनों ही तटों का सफलता के साथ सस्पण किया है और इनकी द्वैतात्मक व्यञ्जना को विस्मयकारी कुशलता के साथ उरेहा है। परामानसिक भाषा के विविध आयाम कही सकेतात्मक रूप में तो कही सध्या भाषा में प्रस्फुटित हुए हैं। भौतिक स्तर पर उनकी शैली में अधिव चटकीलापन रहा है और आध्यात्मिक स्तर पर वह मद पडता गया है। वे मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरंगों के अद्भुत शिल्पी हैं। परामानसिक स्थिति के चित्रण में अनेक स्थलों पर उप-यासकार की भाषा शैली रहस्यात्मक कुहलिका के आवरण में लिपटी हुई है। ऐसे स्थलों पर विचारों की शरिर्यता छी है किन्तु इस गरिष्ठता के नीचे मूलग्राही चेतना का अन्त-प्रवाह पाठक के मन को धालने लित करने में पूणत समय है।

९ शब्द-शक्तियों के ४२८ उगाहरणों पर विचार करने के उपरांत हम इस निष्पत्ति पर पहुँचे हैं कि एक मूलग्राही दार्शनिक होने के कारण उन्होंने वस्तु-व्यञ्जना का सर्वाधिक उपयोग किया है। मनोविश्लेषण के आधिक्य के

कारण भावव्यञ्जना द्वितीय स्थान की अधिनारिणी बनी है। छायावादी परि-
वेग के कारण प्रयोजनबनी लक्षणा तृतीय स्थान पर अधिष्ठित है। शब्द-
शक्तियोग और प्रतीक विधान के कारण उनकी अभिव्यक्ति में प्रागल्भ्यता आई है
और उनके प्रतीक अपनी विविधता एवं नवीनता में उपमाना की तरह मन
नहीं पढ़े हैं। शब्द-शक्ति के माध्यम से उपयासकार जब चित्र का निर्माण
करता है तो प्रतीक उसकी सहायता का दौड़ आते हैं। इस प्रकार उनमें प्रतीक
एवं शब्द-शक्ति का घुस-झाही सम्मिश्रण एक नयी अवस्था को जन्म देता है।

१० जयवधन को छोड़कर जनद्र के सभी उपयास लघु उपयास
की परिधि में आते हैं। कण्ठ-छेनी प्रतियोगिता के इस युग में, जब मनुष्य के
निवृत्त समयाभाव की शिकायत निरन्तर बढ़ती जा रही है तब लघु उपयास
की धारा में बाढ़ का आ जाना स्वभाव ही है। हिन्दी में लघु उपन्यास का
उदगम-स्थल जनद्र की प्रतिभा में ही सन्निहित है। उन्होंने अपने प्रयाग द्वारा
लघु उपयास के शिल्प को एक अद्भुत निखार प्रदान किया है। इस सभ में
'त्यागपत्र' को उनकी सर्वोच्च देन कहा जा सकता है। 'जयवधन' लिखकर
जनद्र ने यह प्रमाणित करना चाहा है कि वे महाकाव्यात्मक बृहद-कलेबरीय
उपयास भी लिख सकते हैं, किंतु इस प्रयास में उन्हें वांछित सफलता नहीं मिल
सकी क्योंकि उनकी मूल प्रवृत्ति एवं प्रतिभा तो लघु उपयास की लाघवता में
केन्द्रित है।

११ अतएव हम यही कहेंगे कि जनद्र के उपयासों का सर्वाधिक मुखर
सत्त्व है शली-व्यंग्य। उनके व्यक्तित्व का व्यंग्य प्रत्येक पंक्ति में मुखर
है। मनस्तत्व की चाशनी में पगे हुए उनके शब्द, उनके वाक्यांश एक निजी
व्यक्तित्व के अधिकारी हैं। उनके चिंतन और मनोवेगा की स्वाभाविक स्फुरण
नितान्त निजी है। ज्यो-ज्यों रचनाकार की प्रौढ़ता बढ़ती गयी है उसके लेखन
पर चिन्तन हावी होना गया है, पर शली का मूलभूत गुण आज भी सुरक्षित
है। इस मूलभूत गुण की परिधि में आते हैं—

- (१) रचनाकार की स्वाभाविकता
- (२) मनस्तत्व की चाशनी में पगे हुए वाक्यांश
- (३) सलापोचित शब्दावली का प्रामुख्य,
- (४) मुहावरों एवं लोकोक्तिओं का समुचित प्रयोग तथा आवश्यकता पड़ने
पर नये मुहावरों का निर्माण
- (५) आत्मा के रस में भीगी हुई शब्दावली
- (६) रचनाकार की निरीहता की अभिव्यक्ति जो प्रायः उनके प्रमुख पात्रों
के सिर पर आढ़ की तरह चढ़कर बालती है, एवं

(७) सटीक प्रतीक विधान और उसके माध्यम से दुरुहसम भाव-बुहेलिका की अभिव्यक्ति ।

इन सब आधारों पर जनेन्द्र के उप-यासा का मनोविज्ञानपरक शली तात्त्विक अध्ययन अकुरित, पल्लवित, पुष्पित एव फलित हुआ है, और उसन हिन्दी कथा-साहित्य की अभिव्यजना-शली को नयी अथवत्ता, नये सन्दभ एव जीवन के घात प्रतिपात के बहुविध आयाम प्रदान किए हैं ।

कारण भावव्यजना द्वितीय स्थान की अधिनारिणी बनी है। छायावादी परि-
वेग के कारण प्रयोजनवती लक्षणा तृतीय स्थान पर अधिष्ठित है। शब्द-
शक्तियों और प्रतीक विधान के कारण उनकी अभिव्यक्ति में प्राजलता आई है
और उनके प्रतीक अपनी विविधता एवं नवीनता में उपमानों की तरह मले
नहीं पड़े हैं। शब्द-तूलिका के माध्यम से उपयासकार जब चित्र का निर्माण
करता है, तो प्रतीक उसकी सहायता को दौड़ घाते हैं। इस प्रकार उनमें प्रतीक
एवं शब्द शक्ति का घुप छाही सम्मिश्रण एक नयी अवस्था को जन्म देता है।

१० 'जयवधन' की छोड़कर जनेद्र के सभी उपयास लघु उपयास
की परिधि में घाते हैं। कण्ठ छेनी प्रतियोगिता के इस युग में, जब मनुष्य के
निकट समयाभाव की गिकायत निरन्तर बढ़ती जा रही है तब लघु उपयास
की धारा में बाढ़ का आ जाना स्वभाव ही है। हिन्दी में लघु उपयास का
उदयम-स्थल जनेद्र की प्रतिभा में ही सन्निहित है। उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा
लघु उपयास के शिल्प को एक अद्भुत निलार प्रदान किया है। इस सद्म में
'त्यागपत्र' को उनकी सर्वोच्च देन कहा जा सकता है। जयवधन लिखकर
जनेद्र ने यह प्रमाणित करना चाहा है कि वे महाकाव्यात्मक बृहद-कालवरीय
उपयास भी लिख सकते हैं, किंतु इस प्रयास में उन्हें वाञ्छित सफलता नहीं मिल
सकी क्योंकि उनकी मूल प्रवृत्ति एवं प्रतिभा तो लघु उपयास की लाघवता में
केन्द्रित है।

११ अतः हम यही कहेंगे कि जनेद्र के उपयासों का सर्वाधिक मुखर
तत्त्व है शली बशिष्ठय। उनके व्यक्तित्व का बशिष्ठय प्रत्येक पंक्ति में मुखर
है। मनस्तत्त्व की चाशनी में पगे हुए उनके शब्द, उनके वाक्यांश, एक निजी
व्यक्तित्व के अधिकारी हैं। उनके चिंतन और मनोवेगा की स्वाभाविक स्फुरणा
नितान्त निजी है। ज्यो-ज्यों रचनाकार की प्रौढ़ता बढ़ती गयी है उसके लेखन
पर चिन्तन हावी होता गया है, पर शली का मूलभूत गुण आज भी सुरक्षित
है। इस मूलभूत गुण की परिधि में घाते हैं—

- (१) रचनाकार की स्वाभाविकता,
- (२) मनस्तत्त्व की चाशनी में पगे हुए वाक्यांश,
- (३) सलापोचित शब्दावली का प्रामुख्य,
- (४) मुहावरो एवं लोकोक्तियों का समुचित प्रयोग तथा आवश्यकता पड़ने
पर नये मुहावरो का निर्माण ।
- (५) आरमा के रस में भोगी हुई शब्दावली,
- (६) रचनाकार की निरीहता की अभिव्यक्ति जो प्रायः उनके प्रमुख पात्रों
के सिर पर जाड़ की तरह घड़कर बालती है, एवं

(७) सटीक प्रतीक विधान और उसके माध्यम से दुरूह्तम भाव-कृहेलिका की अभिव्यक्ति ।

इस सब आधारे पर जनेन्द्र के उप-यासा का मनोविज्ञानपरक शली तात्त्विक अध्ययन अकुरित, पल्लवित, पुष्पित एव फलित हुआ हे, और उसने हिन्दी कथा-साहित्य की अभिव्यजना शली को नयी अथवत्ता नये सादभ एव जीवन के घात प्रतिघात के बहुविध आयाम प्रदान किए हैं ।



सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची



(क) आधार-ग्रन्थ (उप-याप्त)

१ परस्मिन्, २ मुनीता, ३ तपोभूमि ४ त्यागपत्र ५ कृत्याणी, ६ सुखना
७ विवत ८ व्यतीत ९ जयवधन १० मुक्तिबोध और ११ अनन्तर ।

(ख) उप-यासेतर ग्रन्थ

कहानी

१ फाँसी २ वातायन ३ एक रात ४ नीलमन्त्र की राजकथा,
५ दो चिडियाँ, ६ पाजेब ७ ध्रुवयात्रा, ८ जयसन्धि, ९ जनेद्र की
कहानिया (नौ भाग) ।

प्रश्नोत्तर एवं निबन्ध

१ जनेद्र के विचार २ प्रस्तुत प्रश्न ३ जड की बात, ४ पूर्वोक्त
५ सोच विचार ६ साहित्य का श्रेय और प्रेय, ७ काम और परिवार,
८ मपन, ९ समय और हम १० इतस्तत ११ परिप्रेक्ष्य और
१२ राष्ट्र और राज्य ।

अनुवाद

१ मन्मालिनी २ प्रेम म भगवान ३ पाप और प्रकाश, और
४ यामा ।

सस्मरण

(१) ये और वे ।

भालोचना

१ कहानी अनुभव और शिल्प, २ प्रेमचंद एक कृती व्यक्तित्व ।

(ग) जनेद्र पर भालोचना एव शोध साहित्य

(१) जनेद्र और उनके उपन्यास रघुनाथसरन मालानी

(२) जनेद्र साहित्य और समीक्षा डा० रामरतन भटनागर

(३) जनेद्र व्यक्तित्व और कृतित्व स० सत्यप्रकाश मिश्र

(४) जनेद्र व्यक्ति, कथाकार और चिंतक स० बाकेबिहारी भटनागर

(५) जनेद्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन डा० देवराज उपाध्याय

(६) आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय

(७) कथा के तत्त्व डा० देवराज उपाध्याय

(८) साहित्य और मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय

(९) हिन्दी-उपन्यास शिवनारायण श्रीवास्तव

(१०) हिन्दी-उपन्यास और यथायवाद डा० त्रिभुवनसिंह

(११) हिन्दी के स्वच्छतावादी उपन्यास डा० कमला जौहरी

(१२) हिन्दी उपन्यास डा० सुपमा धवन

(१३) हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन डा० गणेश

(१४) हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास डा० रणवीर राणा

(१५) हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास डा० सुरेश सिन्हा

(१६) हिन्दी उपन्यास-साहित्य का उद्भव और विकास डा० लक्ष्मीकांत सिन्हा

(१७) हिन्दी उपन्यास में नायिका की परिकल्पना डा० सुरेश सिन्हा

(१८) हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा

(१९) आज का हिन्दी उपन्यास डा० इन्द्रनाथ मदान

(२०) मधुरे साक्षात्कार 'नेमिचंद्र जैन

(२१) हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास डा० प्रतापनारायण टण्डन

(२२) हिन्दी उपन्यास-कला डा० प्रतापनारायण टण्डन

(२३) हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास डा० शोभ

- (२४) हिंदी उपयास-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन डा० लक्ष्मीनारायण
अग्निहात्री
- (२५) विवेक के रंग डा० दवीशकर अवस्थी
- (२६) हिन्दी उपयास एक अतर्याया डा० रामदरश मिश्र

(घ) इतिहास प्राय

- (१) हिंदी साहित्य का इतिहास रामचंद्र गुप्त -
- (२) आधुनिक साहित्य नददुलारे वाजपेयी
- (३) हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी नददुलारे वाजपेयी
- (४) नया साहित्य नया प्रश्न नददुलारे वाजपेयी
- (५) हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष गिबदानसिंह चौहान
- (६) आधुनिक हिंदी साहित्य डा० लक्ष्मीमागर वाघ्येय
- (७) आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास डा० श्रीकृष्णलाल
- (८) आधुनिक हिंदी साहित्य डा० भोलानाथ
- (९) स्वातंत्र्यांतर हिंदी साहित्य डा० रामगोपालसिंह चौहान
- (१०) हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास ना० प्र० सभा, काशी
- (११) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डा० गणपतिचंद्र गुप्त

(ङ) उपयासालोचन के सदभ में अग्रजो पुस्तकें

- (१) स्टाइल इन द फ्रेंच नावल स्टीफन उत्मा
- (२) द टवेंटीएथ सचुरी नावलस जे० डब्ल्यू० बीच
- (३) माडन फिक्शन जे० मुलर
- (४) नावेल एण्ड द पीपल रल्फ फाक्स
- (५) हिस्ट्री आफ द इंग्लिश नावल (दस खंड) वेकर
- (६) आस्पेक्टस आफ द नावेल ई० एम० फोस्टर
- (७) स्टाइल एफ० एल० ल्यूक्स
- (८) लिटरेचर एण्ड साइकालोजी एफ० एल० ल्यूक्स
- (९) स्ट्रक्चर आफ नावेल एडविन क्यूर
- (१०) इंग्लिश नावलिस्टस डी वशचोडल द्वारा सम्पादित

(च) मनोविज्ञान की पुस्तकें (हिंदी अग्रजो)

- (१) मनोविज्ञान बुडवय और मार्क्स
- (२) दैनिक जीवन और मनोविज्ञान इनाचंद्र जोशी

- (३) अस्वामाय मनोविज्ञान हसरज भानिया
 - (४) नवीन मनोविज्ञान लालजीराम शुक्ल
 (५) मनोविज्ञान और शिक्षा डा० सुरयूप्रसाद चौबे ,
 (६) साइकालोजीकल रिफ्लेक्शन्स सी० जे० जुग ,
 (७) एन इण्ट्रोडक्शन टू जुग अ साइकालाजी फा० फोडहम
 (८) इण्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स अथन साइको एनेलेसिस फ्रायड
 (९) आउट लाइन्स आफ एन्नामल साइकालाजी डबल्यू० मेग्दुगल
 (१०) साइको-पथालाजी आफ एवरी-डे लाइफ एम० फ्रायड ;
 (११) साइकालोजी आफ वूमन हेलेन इयूटस
 (१२) अवर इनर कान्प्लेक्ट के० हनी
 (१३) मनोविज्ञानपण और मानसिक प्रक्रियाएँ डा० पद्मा अग्रवाल

(घ) विविध

- (१) आधुनिक समाक्षा डा० एन० के० देवराज
 (२) साहित्य चिन्ता डा० एन० के० देवराज
 (३) साहित्यालोचन डा० श्यामसुन्दर दास
 (४) काव्य के रूप डा० गुलाबराय
 (५) साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त
 (६) साहित्य का समस्याएँ शिवदानसिंह चौहान
 (७) आस्था के चरण डा० नगेन्द्र
 (८) काव्यशास्त्र की रूपरेखा डा० रामदत्त भारद्वाज
 (९) काव्य-व्यपण रामदत्त मिश्र
 (१०) शोध प्रक्रिया डा० सरनामसिंह शर्मा
 (११) अनुसंधान की प्रक्रिया स० डा० सावित्री सिन्हा एव डा० विजयद्र
 स्नातक
 (१२) अनुसंधान का स्वरूप डा० सावित्री सिन्हा
 (१३) वचारिकी शचीरानी गुट्टु
 (१४) डिक्शनरी आफ लिटरेरी टर्मस शिपल
 (१५) हिन्दी साहित्य-बोश स० डा० धीरेन्द्र वर्मा
 (१६) कामायनी पल्लव अनामिका और भान्या प्रसाद पन्त और निराला

(ज) पत्र-पत्रिकाएँ

- (१) आलोचना का इतिहास अक, शेषाक उपयास विश्लेषक, स्वतन्त्र-

२६२ जनद्र के उपयासों का मनोविज्ञानपरक और शैलीसात्विक अध्ययन

न्योत्तर हिंदी साहित्य विशेषांक (भार खण्), (२) साहित्य-संदेश का उपयास भ्रक और आधुनिक उपयास भ्रक, (३) माध्यम, (४) हिंदी अनुशीलन (५) कल्पना (६) ज्ञानादय, (७) मधुमती (८) वातायन (९) प्रतीक (१०) विकल्प, (११) समालोचक, (१२) साप्ताहिक हिंदुस्तान एव (१३) धमधुग ।

वार्षिक पत्रिकाएँ

(१) हिन्दी वार्षिकी, (२) गद्यदीप, (३) साहित्य-संदेश का प्रगति भ्रक एव (४) अनुशीलन एव अन्वेषण, (५) साहित्य-द्रष्टा ।

